"हाल के वर्षों में वाणिज्य बैंक परिसम्पत्तियों की संरचना मे आए परिवर्तन, कारण व परिणाम" एक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० की

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

निर्देशिका :

डॉ० श्रीमती अल्का अग्रवाल

व्याख्याता

अर्थशास्त्र विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्त्री :

कु० बीनू सिंह

अर्थशास्त्र विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

अर्थशास्त्र विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

1992

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कु0 बीनू सिंह, छात्रा शोध छात्रा अर्थशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद ने अपना शोध प्रबन्ध "हाल के वर्षों में वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों की संरचना में आए परिवर्तन कारण व परिणाम, एक अध्ययन" मेरे निर्देशन में सम्पन्न किया ।

21.10.92

डा0 श्रीमती अलका अग्रवाल
व्याख्याता
अर्थशास्त्र विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्राक्कथन

बैंको के राष्ट्रीयकरण के माध्यम से वाणिज्यिक बैंक के क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हो गयी है । परिणामस्वरूप बैंकिंग व्यवस्था का परिमाणात्मक और परिणामात्मक दोनों ही दृष्टिकोणों से विस्तार हुआ । नवीन बैंकिंग नीति से बैंकों ने अपने लक्ष्य की नयी उँचाईयों को छुआ है । इसके साथ ही हम इस बात से भी इन्कार नहीं कर सकते हैं कि इस नवीन बैंकिंग परम्परा के विकास के साथ ही बैंक अनेक समस्याओं और चुनौतियों का सामना कर रहे हैं ।

हाल के वर्षों में वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों का निम्न स्तर चिन्ता का कारण बनता जा रहा है । पूँजी कोषों के अनुपात में निरन्तर गिरावट से बैंक की पूँजीगत स्थिति निरन्तर बिगड़ती जा रही है । अतः बैंक अपनी परिसम्पत्तियों की संरचना में सुधार करके कुशलतम प्रबन्धन द्वारा ही लाभदायकता में वृद्धि कर सकते हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों की संरचना का राष्ट्रीयकरण से पूर्व तथा राष्ट्रीयकरण के पश्चात की प्रवृत्तियों का अध्ययन करना है। वाणिज्य बैंकों के आय-व्यय व परिसम्पत्तियों की संरचना का अध्ययन करके यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया है कि वास्तव में कौन से कारण बैंक की गिरती लाभदायकता के लिए उत्तरदायी है ।

अध्ययन से यह तथ्य ज्ञात हुआ कि सार्वजनिक क्षेत्र के वाणिज्य बैंको की गिरती लाभदायकता का मुख्य कारण वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों में लाभदायक परिसम्पत्तियों के भाग में निरन्तर कमी होना है । अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया कि वर्तमान समय में वाणिज्य बैंक की परिसम्पत्तियों की संरचना में परिवर्तन अत्यन्त आवश्यक हो गए हैं । इसमें आधारभूत परिवर्तन

द्वारा ही बैंक दीर्घकाल तक कुशलता व लाभदायकता पूर्वक कार्य कर पाएगें ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को छ: अध्यायों में बाँटा गया है, प्रथम अध्याय भूमिका में वाणिज्य बैंको की वर्तमान स्थिति का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है, द्वितीय अध्याय सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि में बैंकिंग परिसम्पत्तियों की संरचना व बैंक के कार्य करने के सिद्धान्त पर प्रकाश डाला गया है । तृतीय अध्याय में शोध कार्य से सम्बन्धित द्वितीयक आंकड़ो का एकत्रण रिजर्व बैंक द्वारा प्रकाशित विभिन्न मासिक व वार्षिक पत्र पत्रिकाओं, समाचार पत्रों व रिपोर्टों से किया गया है । चतुर्थ अध्याय में आंकड़ो का वर्णनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत कर वस्तुविक स्थिति को ज्ञात करने का प्रयास किया गया है । पंचम अध्याय में वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों में आए नवीन परिवर्तनों, वर्तमान नवोन्मेषीकरण विविधिकरण कार्यो का विवरण प्रस्तुत किया गया है । षष्ठम अध्याय में प्राप्त निष्कर्ष एवं कुछ सुझाव दिए है ।

सर्वप्रथम मैं अपनी निर्देशिका डॉ० (श्रीमती) अलका अग्रवाल व्याख्याता अर्थशास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति आभार प्रदर्शित करती हूँ । जिनमें रचनात्मक निर्देशन प्रोत्साहन एवं अमूल्य सुझावों से यह शोध कार्य पूर्ण हो सका है ।

मैं कृष्ण लाल रीडर अर्थशास्त्र विभाग की ऋणी हूँ जिन्होंने अपनी व्यस्तता के बावजूद सुधार सम्बन्धी आवश्यक सुझाव देकर मुझे उत्साहित किया ।

मैं अपने सहपाठी शोध छात्र श्री शिव बहादुर सिंह, कु० निशा त्रिपाठी कु० प्रीति पाण्डे की प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने कि शोध कार्य के दौरान सहयोग प्रदान किया ।

मैं मुख्य लाइब्रेरी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस, मुख्य लाइब्रेरी इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद पब्लिक लाइब्रेरी दिल्ली के स्टाफ की आभारी हूँ जिन्होने मुझे पुस्तके व पत्रिकाएँ उपलब्ध करवा कर सहायता प्रदान की । मै अपने विभागीय पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री नसीब एवं सिंह साहब को धन्यवाद देती हूँ, जिन्होने समय-समय पर पुस्तकें तथा पत्रिकाएँ आदि को उपलब्ध कराके मुझे काफी सहायता प्रदान की ।

मैं अपनी माँ श्रीमती मल्हना सिंह, पिता श्री हरिश्चन्द्र सिंह तथा भाई प्रदीप की हृदय से आभारी हूँ जिन्होने मुझे स्नेह, सहयोग एवं प्रोत्साहन प्रदान कर शोध कार्य को पूर्ण कराने में महान सहयोग प्रदान किया । मैं अपने मित्र श्री अशोक सिंह की अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होने मुझे लगातार शोध कार्य में लगे रहने के लिए प्रेरणा एवं प्रोत्साहन दिया ।

मैं स्टेट बैंक आफ इण्डिया, इकानामिक रिसर्च डिपार्टमेन्ट बम्बई के श्री डी0जे0 कन्विडे, स्टेट बैंक आफ इण्डिया इलाहाबाद के प्रबन्धक श्री गुप्तान के प्रति भी अपना आभार प्रदर्शित करती हूँ जिन्होने मुझे प्रकाशित व अप्रकाशित शोध पत्र उपलब्ध कराए व बहुमूल्य सुझाव दिये । इसके साथ ही शोध कर्ता देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव की आभारी है, जिन्होने परिश्रम करके इस शोध प्रबन्ध को टंकित किया ।

सितम्बर, 1992

अर्थशास्त्र विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

भवदीया
कु0 बीनू सिंह

- अनुक्रमणिका -

तालिकाओं की अनुक्रमणिका

रेखा चित्रों की अनुक्रमणिका

अध्याय-योजना

सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध को छः अध्याय में विभाजित किया गया है -

प्रथम अध्याय	-	भूमिका
द्वितीय अध्याय	-	सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि
तृतीय अध्याय	-	आंकड़ों का एकत्रण
चतुर्थ अध्याय	-	आंकड़ों का विश्लेषण
पंचम अध्याय	-	बैंकिंग परिसम्पत्तियों की क्रियाओं में आए नवीन परिवर्तन ।
षष्ठम अध्याय	-	निष्कर्ष व सुझाव ।

प्रथम अध्याय

भूमिका
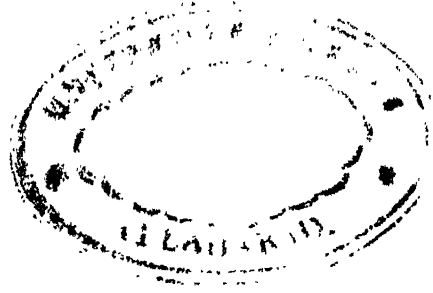
भूमिका

वाणिज्य बैंक हमारी वित्तीय व्यवस्था का हृदय होते हैं । वे करोड़ों व्यक्तियों, सरकारों और व्यापारिक संस्थाओं की जमाओं को एकत्र करते हैं, तथा अपने ऋणों और विनियोगों के द्वारा व्यक्तियों, वाणिज्य प्रतिष्ठानों, फर्मों और सरकारों को उधार के रूप में कोष उपलब्ध कराते हैं । ऐसा करके वे निर्माताओं द्वारा उपभोक्ताओं को वस्तुएं व सेवाएं और सरकारों के वित्तीय कार्यकलापों का प्रवाह बनाए रखते हैं । अत: हमारे अधिकांश विनिमय कार्यों में बैंक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । वाणिज्य बैंकिंग व्यवस्था द्वारा देश की मौद्रिक नीति भी प्रभावित होती हैं । ये तथ्य दर्शाते हैं कि वाणिज्य बैंकिंग व्यवस्था हमारे आर्थिक कार्यों का मूल हैं, अत: इसे आधुनिक विकसित मौद्रिक व्यवस्था की आधारशिला कह सकते हैं। इसके बिना अभाव में आधुनिक विकसित आर्थिक जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती । किसी भी देश के बैंकिंग विकास की संरचना को देखकर ज्ञात किया जा सकता है कि उस देश की आर्थिक उन्नति किस सीमा तक हुई है । अधिकांश एशियाई देशों में बैंकिंग का विकास इतना अधिक नहीं हुआ है, जितना कि यूरोपीय देशों का । इसे हम एशियाई देशों के आर्थिक रूप से पिछड़ेपन का द्योतक मान सकतेहैं । बैंक आर्थिक उन्नति का कारण और परिणाम दोनों होते हैं अत: इनका देश के आर्थिक विकास से गहरा सम्बन्ध होता है । वर्तमान समय में बैंक का महत्व इतना अधिक हो गया है कि वे देश में चलनमें विद्यमान कुल मुद्रा की मात्रा और सरकार की आर्थिक नीति को भी प्रभावित करते हैं । इसलिए सरकारें अपने देश की केन्द्रीय बैंक की सहायता से वाणिज्य बैंकिंग व्यवसाय को नियंत्रित

........2

करने का प्रयास करते हैं ।[1] अत: वर्तमान सन्दर्भ में वाणिज्य बैंक का महत्त्व इतना अधिक बढ़ गया है कि हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते हैं कि देश की उस समय क्या अवस्था होगी, जब वाणिज्य बैंक न होंगे, क्योंकि वर्तमान समय में सभी प्रकार के व्यापार प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से बैंक पर आश्रित हैं। विकसित देशों में जहां पर कि लोगों की अधिकांश क्रियाएं बैंक पर ही आधारित होती हैं । बैंक का बहुत अधिक महत्त्व हैं । बैंकिंग प्रणाली समाज की अतिरेक आय को एकत्र करके उसे उत्पादक कार्यों के लिए उपलब्ध कराती हैं, अत: बैंक की तुलना एक ऐसे तालाब से की जा सकती हैं, जिसके द्वारा उद्योग और व्यापार की वित्तीयआवश्यकताओं की पूर्ति होती है । बैंक अनुत्पादक धन को गतिशीलता प्रदान करके उसे उत्पादक पूंजी में परिवर्तित करते हैं, इसके अतिरिक्त बैंक अर्थ व्यवस्था में साख मुद्रा का निर्माण करके समाज में मुद्रा की पूर्ति को लोच प्रदान करते हैं । इस प्रकार बैंक अतिरेक धन को उत्पादक रूप प्रदान करने के अतिरिक्त विभिन्न उद्योगों के बीच पूंजी का वितरण इस प्रकार करते हैं कि समाज की उत्पादन शक्ति अधिकतम हो जाती है ।

वाणिज्य बैंकिंग व्यवस्था द्वारा आर्थिक लक्ष्यों को कुशलतापूर्वक प्राप्त कर लेने और बैंकिंग कार्यकलापों में समन्वय बड़े पैमाने पर कुशलतम प्रबन्ध पर निर्भर करता है । चाहे किसी भी प्रकार का संगठन हो जैसे व्यवसाय; सरकार , समाज, घर बैंक इन सबका प्रबन्धन कुशलता पूर्वक होना आवश्यक होता है । अत: वाणिज्य बैंक को

1- See" Commercial Banking " by Reed/Cotter/Gill/Smith, Page V, 1976, Published by Prentice wall Inc. Engle- wood Cliffs, New Jersey.

अपना प्रबन्धन कुशलतापूर्वक, सुरक्षा और लाभदायकता के दृष्टिकोण से करना चाहिए । अत: सफल बैंकिंग का रहस्य इस बात में निहित रहता है कि बैंक के वित्तीय साधनों को विभिन्न प्रकार की परिसम्पत्तियों में इस प्रकार से वितरित किया जाए कि तरलता और लाभदायकता के बीच एक स्वस्थ सन्तुलन स्थापित हो जाए । इसका परिणाम यह होगा कि एक ओर जमाकर्ताओं की मांग को सन्तुष्ट करने हेतु पर्याप्त नक्दी होगी और दूसरी ओर अपना व्यय पूरा करने हेतु बैंकको पर्याप्त आय प्राप्त होगी ।

आर्थिक विकास को तीव्र करने के लिए बैंकिंग की भूमिका पर विचार करने के लिए हम किसी विशेष बैंकिंग और आर्थिक विकास के अर्थव्यवस्था के अन्तर्सम्बन्धों के माडल का अनुसरण नहीं कर सकते हैं जो कि सभी देशों तथा विकास के सभी स्तरों पर उपयुक्त हो । अत: आर्थिक विचारों के इतिहासकार भी इस सन्दर्भ में कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं देते हैं । इंग्लैण्ड का औद्योगिक विकास बिना किसी प्रकार के बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं के दीर्घकालीन विनियोगों के कोषों के उपयोग से हुआ है, परन्तु इंग्लैण्ड के औद्योगिकरण मेंबैंकिंग व्यवस्था का समुचित योगदान है । इसी प्रकार से दूसरी तरफ जर्मनी के औद्योगिकरण में बैंकिंग व्यवस्था का समुचित योगदान है तथा इसके विकास को गति प्रदान करने के लिए बैंकिंग व्यवस्था ने एक सक्रिय उपकरण के रूप में कार्य किया।[1] यूरोप महाद्वीप में जो देश पिछड़े हुए हैं उनका विकास एवं औद्योगीकरण बैंकिंग योजनाओं के माध्यम से करके उसे अग्रसारित किया जा रहा है । पिछड़ेपन के स्तर की निर्भरता पर

1- Francais Crouget, Capital Formation in Industrial Revolution London - 1972. Page 51

विनियोग बैंक उसी दिशा में कार्यकरते हैं जिस पर नौकरशाही चाहती हैं, जैसा कि रूस में है ।[3]

आर्थिक विकास के क्षेत्र में बैंकिंग भूमिका [illegible] मूल्यांकन करते समय अर्थव्यवस्था के कार्यों में सामाजिक एवं राजनैतिक संरचना को [illegible] नहीं जा सकता है । केन्द्रीय नियोजित अर्थ व्यवस्था में बैंकिंग व्यवस्था आर्थिक प्राधिकरणों के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, उनके उत्तरदायित्वों की पूर्ति में विशेष भूमिका निभाती है । प्रत्येक आर्थिक संस्थान बैंकिंग व्यवस्था की विशेष इकाईयों से जुड़े होते है । अत: वे नियोजित सीमाओं के अन्तर्गत साख का व्यवसाय करते हैं । बैंक इन संस्थानों को योजना के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए उसकी वास्तविक आवश्यकता की बड़ी से बड़ी साख मुद्रा की पूर्ति से इन्कार नहीं कर सकते हैं । बैंकिंग व्यवस्था साख के नियोजित वितरण के लिए सरकार के बजाय उसके प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं । अत: वह जनता के ससांधनों के कुशलतम प्रयोग के लिए उत्तरदायी होते हैं ।अत: बैंकिंग व्यवस्था के वितरणएवं [illegible] के कार्य केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था के राष्ट्रीय आर्थिक प्रबन्धन की नीतियों एवं [illegible] का एक समन्वित भाग बन गया है । अत: आर्थिक नीति के लक्ष्यों की प्राप्ति में इनका [illegible] अनिवार्य हो गया है ।[4]

भारतीय सन्दर्भों में बैंकिंग व्यवस्था की भूमिका एक विस्तृत ऐतिहासिक एवं संस्थागत तथ्य है । इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम हमारा प्रयास राष्ट्रीयकरण से पूर्व बैंकिंग व्यवस्था के विकास का मूल्यांकन करना है । बैंकिंग नीतियों के अन्तर्गत हमें राष्ट्रीयकरण

---

3. Alexendar Gerschenkron Economic Backwardness in Historical perspective , Combridge, Mass, 1962m Chap.1 Page 11 to 30.

4. T.M. Poelolaski, Socialist Banking and Monetary Control, Cambridge, 1973. Page 37.

से पूर्व की सभी वित्तीय संस्थाओं के कार्यों का मूल्यांकन करना है । हमारा दृष्टिकोण बैंक के संरचनात्मक एवं कार्यात्मक विशेषता का अर्थव्यवस्था के विकास में योगदान को देखना है ।[5] बैंकिंग व्यवस्था की रचना सम्बन्धी विशेषताएं, नियम, अधिनियम एवं उनकी रीतियां उनकी व्यवहारिक संरचना का महत्वपूर्ण निर्धारक हैं ।

बैंक की भूमिका का निर्धारण करने में मुख्य मुद्दा बैंक से की जाने वाली आशाएं हैं । पिछले दो दशकों से भारतीय बैंकिंग प्रणाली का अनुभव सामाजिक आर्थिक विकास के लिए स्तरीय रूप से बैंकिंग की अत्यधिक सभाव्यता को सामने लाया है । इससे समाज के विभिन्न वर्गों में व्यापक आशाएं उत्पन्न हुई हैं । इन आशाओं से बैंकिंग तन्त्र की भूमिका के बारे में जटिलता का जन्म हुआ और इससे सम्बद्ध समूहों की अवधारणा में जटिलता आ गयी है । इसमें सरकार प्रयोक्ताओं (समाज) और संगठित उद्योग समूहों (व्यापार, उद्योग आदि) द्वारा की जाने वाली कुछ संघर्षकारी आशाएं भी हैं । विभिन्न समूहों की आशाओं से सम्बन्धित गम्भीर विरोध तथा पारस्परिक असंगतियों के कारण वाणिज्य बैंक वाद-विवाद का मुख्य विषय बन गये हैं ।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से बैंक व्यवस्था का वाणिज्य और पारम्परिक उद्योगों (अर्थात् सूती वस्त्र, पटसन इत्यादि) के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहा है । बहुत समय तक बैंक वित्त के नए क्षेत्र में प्रवेश करने से हिचकिचाते रहे। संयुक्त स्कन्ध बैंक का कार्यक्षेत्र बड़े और वाणिज्य क्षेत्र में संकेन्द्रित होने के कारण वाणिज्य भिन्न क्षेत्र उपेक्षित

5- Rondo Cameron (Ed) Banking and Economic Development, New York, 1972, Chapter 1- Introduction. Page 13.

रहें । इसका मुख्य कारण वाणिज्य बैंक द्वारा व्यापार एवं पारम्परिक उद्योगों को प्राथमिकता देना था । हाल ही के वर्षों में बैंक पारम्परिक सीमा बन्धनों से निकलकर नए क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं । बैंक व्यवस्था की धारणा जो कि केवल बैंक जमा स्वीकार करने और उसे उधार देने तक सीमित थी, का अब विस्तार हो रहा है, और बैंक व्यवस्था विकास प्रेरित बनती जा रही है । संयुक्त स्कन्ध बैंक अब औद्योगिक और कृषि क्षेत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर अधिकाधिक ध्यान दे रहे हैं । वर्तमान समयमें बैंक विकास कार्यों को दृष्टि में रखते हुए अल्पकालीन वित्त प्रबन्धन पर ध्यान दे रहे हैं । इस प्रकार देश के चर्तुमुखी विकास के लिए वाणिज्य बैंकिंग को विकास बैंकिंग में परिवर्तित किया जा रहा है । आज के विकास बैंक का मुख्य लक्ष्य केवल लाभ उपार्जित करना ही नहीं है । वाणिज्य बैंक अल्पकालीन ऋण प्रदान करने के साथ ही विकास बैंकिंग के कार्यों को पूरा करने के लिए मध्यकालीन और दीर्घकालीन ऋण भी प्रदान करने लगे है तथापि बैंक को इससे लाभ नहीं प्राप्त होता है । विकास बैंकिंग के कुशल संचालन का आधार परिसम्पत्तियों का संयोजन व सन्तुलन हैं । अत: विकास बैंकिंग अपनी परिसम्पत्तियों का सयोंजन व सन्तुलन इस प्रकार से करते हैं कि विकास की योजनाएं पूरी की जा सके तथा "प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र"[6] को समुचित मात्रा में ऋण उपलब्ध कराया जा सके । विकास बैंकिंग वाणिज्य बैंक की भाँति साख का निर्माण नहीं करते हैं । अत: विकास बैंकिंग में साख सृजन द्वारा परिसम्पत्तियों में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं होती । अत: प्राथमिकताओं

6• "कृषि पशुपालन, वानिकी (Forestry) मत्स्य पालन, कुटीर उद्योग आदि व्यवसाय सम्मिलित रूप से प्राथमिक उद्योग (Primary Industries) कहलाते हैं।" देखिऐं -"भारतीय अर्थव्यवस्था " द्वारा दत्त एवं सुन्दरम्" पेज - 73•

के बदलने के साथ ही बैंक के संस्थागत स्वरू परिवर्तन आ गया है ।

आधुनिक वाणिज्य बैंक की स्थापना व राष्ट्रीयकरण के सन्दर्भ में बैंकिंग अधिनियम के प्राक्कथन में कहा गया है – " अर्थव्यवस्था के उतार-चढ़ाव पर नियंत्रण रखना और राष्ट्रीय नीतियों और लक्ष्यों के अनुरूप अर्थव्यवस्था के विकास की आवश्यकताओं की अधिक अच्छे ढंग से पूर्ति करना, ऋण देने के लिए राष्ट्रीयकृत बैंक उधारकर्ता के स्वत्य व सामाजिक स्थिति पर विचार किए बिना उत्पादन सम्बन्धी विभिन्न प्रयत्नों विशेषत: कृषकों, लघु उद्योगों और स्वनियोजित व्यवसायिक वर्गों की आवश्यकताओं की अधिक मात्रा में पूर्ति करने के लिए प्रयत्नशील रहे । नए और प्रगतिशील उद्यमकर्ताओं की अभिवृद्धि को सक्रिय प्रोत्साहन देना और देश के पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए नए अवसर प्रदान करना भी राष्ट्रीयकृत बैंक का प्रमुख लक्ष्य होगा ।[7]

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के भूतपूर्व गर्वनर वी0 रामा ने वाणिज्य बैंक के कार्यों को संक्षेप में इस प्रकार परिभाषित किया, " वाणिज्य बैंक अल्पकालीन प्रवृत्ति की मौद्रिक परिसम्पत्तियों में व्यापार करने का केन्द्र है, यह उधार लेने वालों की अल्पकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं और ऋण देने वाले को तरलता एवं सुरक्षा प्रदान करते हैं ।"

किसी भी अर्थव्यवस्था का विकास विभिन्न योजनाओं के माध्यम से संसाधनों का समुचित प्रयोग करके किया जाता है । जिसमें बैंकिंग व्यवस्था की भूमिका

7- See " Regulation of Banking " by S.C.Panandikar and D.M. Mithani, Page - 18, 12th Edition, 1975, Orient Longman Ltd., Bombay.

बहुत महत्वपूर्ण होती है, इस सन्दर्भ में हम यह कह सकते हैं कि राष्ट्रीयकरण एवं स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में बैंकिंग का विकास पूर्णतः अपर्याप्त था । 1949 के बैंकिंग नियमन अधिनियम के अन्तर्गत मौद्रिक प्राधिकरणों को विस्तृत नियमन और नियंत्रण की शक्तियां प्रदान की गयी । वित्तीय [illegible] के रूप में बैंकिंग व्यवस्था ने विभिन्न योजनाकालों के दौरान बहुआयामी प्रगति की । विशुद्ध वित्तीय मध्यस्थ के रूप में घरेलू क्षेत्र में इसका आधिक्य पहली योजनावधि 1951-52 से 1955-56 तक 24 प्रतिशत हो गयी और तीसरी योजनावधि 1961-66 तक 59 प्रतिशत हो गयी । इसी प्रकार से व्यक्तिगत उत्पादक क्षेत्रों में इसी अवधि में इसके वित्तीयन की मात्रा 15 प्रतिशत से 52 प्रतिशत हो गयी ।[8]

अतः आज बैंक की भूमिका तथा उत्तरदायित्व केवल उनके संसाधनों की वृद्धि और पंचवर्षीय योजनाओं से ही सम्बन्धित नहीं रह गया है , बल्कि इनका अधिक प्रभावकारी प्रयोग किया जाने लगा है । इस विश्वास का कारण यह है कि बैंक संगठित उद्योगों की कार्यकारी पूंजी की वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगे हैं । बैंक के राष्ट्रीयकरण से पूर्व निजी क्षेत्र को पर्याप्त कोषों की व्यवस्था की समस्या थी । इन्हीं सब समस्याओं को ध्यान में रखते हुए रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने श्री ए०डी०श्रॉफ की अध्यक्षता में एक समिति का संगठन किया । इस समिति ने उद्योगों की दीर्घकालीन एवं मध्यमकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वित्त बाजार में सुधार करने की सिफारिश की । अतः 1953 से पूंजी बाजार में सरकारी और निजी क्षेत्र में कुशलतापूर्वक

8- " Financial Flows in the Indian Economy " R.B.I. Bulletin, March 1976 and July 1969. Page 154 & 67.

उधार दिया जाने लगा । इसी के परिणामस्वरूप औद्योगिक विकास एवं पुर्नवित्त निगम तथा उसको सहयोगी भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना हुई । बैंक के निजी उद्योगों एवं व्यापार क्षेत्र में प्रवेश करने के साथ ही बैंक के कार्य क्षेत्र में काफी वृद्धि हुई। अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण रिपोर्ट ने भी ग्रामीण क्षेत्र में साख की पूर्ति की सिफारिश की । इसके साथ ही एक महत्वपूर्ण कदम उठाया गया और ग्रामीण बैंकिंग जांच समिति की सिफारिशों को लागू कर दिया गया ।

राष्ट्रीयकरण से पूर्व बैंक के वित्तीय साधनों में गतिशीलता नहीं थी । गैर सरकारी वाणिज्य बैंक छोटे कस्बों और बड़े ग्रामों में अपनी शाखाएं खोलने में विफल रहे हैं । परिणामत: वे समाज की बचत और विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र छोटे कस्बों और निम्न आय वर्गों की बचत को गतिशील करने में असफल रहे । इसके अतिरिक्त इन्होंने कुछ राज्यों की बचतों को एकत्र कर इनका प्रयोग अन्य राज्यों में किया । अत: वे एक-तरफा क्षेत्रीय विकास करने के लिए उत्तरदायी हैं । और भी सामान्य जनता की बचत जो वाणिज्य बैंक द्वारा एकत्र की जाती हैं, सामान्य आर्थिक विकास के लिए प्रयुक्त नहीं होती बल्कि निदेशकों की व्यापारिक और औद्योगिक कम्पनियों की उन्नति के लिए प्रयोग होती थी । चूंकि इनका नियंत्रण और प्रबन्ध बड़े-बड़े पूंजीपतियों द्वारा किया जाता है इसलिए इन बैंकों द्वारा बड़े पैमाने की औद्योगिक एवं वाणिज्यिक फर्मों को लाभ उपलब्ध कराया जाता था । छोटे पैमाने के उधार लेने वाले तो बैंक से सम्पर्क स्थापित ही नहीं कर सकते थे । इस प्रकार की नीति सरकार द्वारा छोटे और मध्यम स्तर के उद्योगों को प्रोत्साहन देने की नीति के विरूद्ध थी ।

राष्ट्रीयकरण से पूर्व संस्थागत बचतों एवं मुद्रा प्रवाहों को विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत निर्धारित उद्देश्यों एवं प्राथमिकताओं के अनुसार वांछित दिशा नहीं प्रदान की जा सकती थी, जो कि हमारे विकास की गति एवं संरचना को प्रभावित कर सकें। यह ऊंची उत्पादकता वाले अपेक्षाकृत ऊंची सामाजिक आगमों को अप्रत्यक्ष वास्तविक संसाधन उपलब्ध करा सकता था। इस सन्दर्भ में यह कहा गया कि बैंकिंग व्यवस्था विकास कार्यक्रमों के अनुरूप होनी चाहिए जिससे बचत एवं विनियोग का प्रयोग सामाजिक प्रयोजन के अनुकूल हों।[8]

अत: वित्तीय प्रवाह की संरचना में आधारभूत परिवर्तन में बैंकिंग व्यवस्था की भूमिका बहुत अधिक महत्वपूर्ण हो गयी है। बैंकिंग कार्यक्रम में साख प्रसार का उत्तरदायित्व केवल उचित मात्रा में साख प्रसार करके देश की मुद्रा व्यवस्था को स्थिरता प्रदान करना ही नहीं है; बल्कि साख को उचित दिशा भी देना है। चयनित साख प्रसार के द्वारा बैंक व्यवस्थित ढंग से वास्तविक संसाधनों पर साख का बड़ी कुशलता पूर्वक प्रयोग करते हैं। छठवें दशक में यह बात भी प्रकाश में आयी कि वाणिज्य बैंकिंग व्यवस्था के कार्यों में सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों के अतिरिक्त विकास योजनाओं की प्राथमिकता का भी दबाव रहता है। अत: मौद्रिक प्राधिकरणों का यह उत्तरदायित्व होता है कि अर्थव्यवस्था के विकास में बैंकिंग की भूमिका सकारात्मक हो।

राष्ट्रीयकरण से पूर्व अर्थात् 1951 से लेकर 1969 तक वाणिज्य बैंक की प्रवृत्ति उद्योगों में अपनी परिसम्पत्तियों का अधिकांश भाग विनियोजित करने की

8- Government of India, Planning Commission, First Five Year Plan, P- 38.

रही, क्योंकि इस प्रकार के ऋणों में लाभदायकता बहुत अधिक मात्रा में रही । परन्तु सरकारी प्राधिकरणों द्वारा इस बात का दबाव हमेशा डाला जाता रहा कि बैंक के साख प्रवाह की दिशा परिवर्तित होनी चाहिए । इसका मुख्य कारण इस समय की बैंकिंग व्यवस्था औद्योगिक क्षेत्र के बहुत निकट आ गयी थी, अर्थात् सभी प्रकार के सरकारी और गैर सरकारी वित्तीय संस्थान बड़े औद्योगिक घरानों को ही अपना समर्थन दे रहे थे । अत: वाणिज्य बैंक के साख का प्रवाह पूर्णतया बड़े-बड़े औद्योगिक घरानों की तरफ था तथा वे मनमाने ढंग से संचालित किया करते थे । इस प्रकार की संगठित बैंकिंग एवं वित्तीय व्यवस्था को प्रश्रय देने के कारण देखा गया कि आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण बड़ी तीव्र गति से हो रहा था । अत: राष्ट्रीय नियोजन एवं प्राथमिकताओं की पूर्ति के लिए इस प्रकार के वित्तीय साख के प्रवाह की दिशा को परिवर्तित करने की आवश्यकता हुई।

कृषि देश का मूल उद्योग है । वाणिज्य बैंक द्वारा इसकी पूर्णतया अपेक्षा की गयी । इसके द्वारा कृषि क्रियाओं एवं भूमि विकास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया । वाणिज्य बैंक कृषि विकास में योगदान करने में असफल रहे हैं । गैर राष्ट्रीय-कृत वाणिज्य बैंक के माध्यम से अनिवार्य वस्तुओं की जमाखोरी एवं सट्टेबाजी सम्भव होती है । वाणिज्य बैंक भारतीय अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रों के लिए वित्तीय साधन उपलब्ध कराने में विफल रहे हैं । चार अर्थशास्त्रियों के द्वारा कांग्रेस सचिव को 1967 में दी गयी ' रिपोर्ट में उल्लेख किया गया कि, " वाणिज्य बैंक पंचवर्षीय योजनाओं के सकारात्मक सामाजिक उद्देश्यों को अपनाने में असफल रहें है । एक नियोजित अर्थव्यवस्था में वाणिज्य बैंक का गैर सरकारी नियंत्रण असामाजिक जान पड़ता है, क्योंकि

यह भारत की योजना उद्देश्यों की प्राप्ति में मुख्य रूकावट है ।

इसी श्रृंखला में 1965 में साख विनियोजन नीति घोषित की गयी, जिसका मुख्य उद्देश्य बड़े औद्योगि क घरानों को दिये जाने वाले ऋणों की जांच करना तथा यह ज्ञात करना कि कहीं वे राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के विपरीत दिशा में तो नहीं जा रहे हैं परन्तु इस प्रकार के साख प्रवाह को रोकने के लिए स्वैच्छिक दबाव के अतिरिक्त किसी भी प्रकार के भौतिक नियंत्रण नहीं [illegible] अत: प्राधिकारियों की इस नियमन नीति से कोई अर्थपूर्ण परिणाम नहीं निक[illegible] मुख्य कारण साख आवंटन समस्या के कार्यात्मक वैभिन्नीकरण के फलस्वरूप इन औ[illegible] क्षेत्र के अग्रिम पोर्ट फोलियों में अर्थ व्यवस्था की आवश्यक आवश यकताओं के अन्त[illegible] प्राप्त हो जाता है अत: साख नीति के पुर्नगठन की मांग के कारण कोषों के आवंटन के तरीकों में पुन: परिवर्तन किया गया । छठवें दशक के मध्य यह कृषि क्षेत्र के रूप में सक्रिय रूप से सामने आया । इसके पश्चात कृषि क्षेत्र को वाणिज्य बैंकिंग व्यवस्था के अर्न्तगत बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया जाने लगा । इस प्रकार कृषि क्षेत्र को 1956-57 के पश्चात से वाणिज्य बैंक आसान शर्तों पर ऋण उपलब्ध करवाने लगे । इस समय सरकार भी कृषि क्षेत्र में साख विनियोजन को प्रोत्साहित कर रही थी । परन्तु वाणिज्य बैंक द्वारा ऋणों के गलत ढंग से आबंटन के कारण इनके अग्रिमों के लेखा पत्रों में परि[illegible] सामाजिक दबाव पड़ने लगा । परन्तु इस पर पूर्णतया नियंत्रण लगाने से औद्योगिक क्षेत्र के विस्तार में रूकावट आ रही थी, अत: इन पर पूर्णतया नियंत्रण लगाने का [illegible] किया गया कि इससे उद्योग बाजार को किसी प्रकार का नुकसान न हो। विभिन्न प्राधिकारियों ने इस विषय पर अपने महत्वपू

सुझाव दिये ।[10]

1967-68 तक लगाए गये विभिन्न सामाजिक नियंत्रणों को देखते हुए साख प्रसार की संरचना का नियमन एवं नियंत्रण करने के लिए भारत सरकार ने 19 जुलाई 1969 को देश के 14 बड़े वाणिज्य बैंक का राष्ट्रीयकरण करके मुख्य बैंकिंग व्यवस्था को प्रत्यक्ष रूप से अपने नियंत्रण में ले लिया । राष्ट्रीयकरण का मुख्य उद्देश्य तीव्र विकास करना, ग्राहकों को अच्छी सेवा प्रदान करना और अर्थव्यवस्था का विकास राष्ट्रीय नीतियों एवं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए करने की आवश्यकता है ।[11] अत: वाणिज्य बैंक का राष्ट्रीयकरण भारत में बैंकिंग विकास के मार्ग में बहुत बड़ा कदम है । इसीप्रकार से 1980 में 6 और बैंक का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया जिससे कुल राष्ट्रीयकृत बैंक की संख्या बढ़ाकर 20 हो गयी ।

बैंक व्यवस्था की मुख्य इकाइयों के सरकार के हाथ में आ जाने के साथ ही बैंकिंग व्यवस्था की नीतियों को समन्वित करने की आवश्यकता हुई, जिसके लिए

---

10. In reply to debate on nationalisation of Banks in Lok Sabha. Finance Minister T.T. KRISHNAMACHARI, replied. " In so for as the banking system itself concerned, we are now comtemplating further amendment to banking companies act. Which are possible in order to check the control of banks for desireable purpose by particular groups of papers." Lok Sabha debates, 6th Sep. 1963, (page 4912.) Given in R.B.I. Bullentin, April 1963.

11. "Meet progressively and serve better, the needs of development of the economy in conformity with national policy and objec - tives" by Preamble to the banking companies (Acquisition and Transfer of Understanding Act 1969, Nationalization Act.)

विकास की नई रणनीति तैयार की गयी । इस रणनीति के समुचित कार्यान्वयन के लिए बजट और पंचवर्षीय योजनाओं के लिए भी साख की व्यवस्था की गयी तथा कुछ महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना करना पड़ा । राष्ट्रीय स्तर पर राज्य से लेकर क्षेत्रीय स्तर तक क्षेत्रीय साख आबंटन को लागू किया गया इसी प्रकार से बैंकिंग व्यवस्था की इकाइयों एवं स्तरीय साख संस्थाओं को प्राथमिकता क्षेत्र से परिचित करवाया गया । एवं विभिन्न क्षेत्रों में साख का कुशलतम् प्रयोग इसका मुख्य लक्ष्य रखा गया । बैंकिंग व्यवस्था का मौद्रिक प्रबंधन से जनता को सीधे जोड़ने का यह कार्य कोई सरल कार्य नहीं था । सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक शक्तियां बैंकिंग नीति के प्रमुख उद्देश्यों को प्रभावित कर रही थीं, इसमें उद्देश्यों एवं प्राथमिकताओं का निर्धारण करना, क्षेत्रीय संसाधनों के उपयोग के सन्दर्भ में कार्य की रणनीति इत्यादि । इसी प्रकार से कुछ शक्तियों की संस्थागत जड़े बहुत गहरी है जो कि हमारी मिश्रित अर्थव्यवस्था को आर्थिक शक्ति के सन्तुलन को ऊंचा उठाने में सहायक हो रही है ।

वर्तमान सशक्त राजनैतिक नेतृत्व, जीवन के सभी क्षेत्रों में अनुशासन की नयी चेतना, परिश्रम के लिए उत्साह की लहर और सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने के राष्ट्रीय दृढ़ निश्चय के कारण भविष्य के प्रति काफी आशा से देखने का विश्वास जाग उठा है । उनके विचारानुसार वर्तमान अर्थव्यवस्था में कृषि और उद्योग में उत्पादन की काफी अधिक क्षमता और आवश्यक मूलभूत सुविधाओं का निर्माण हुआ है । अर्थव्यवस्था में पर्याप्त विशाखन भी आया है । विशाखन के साथ-साथ इसी प्रकार की प्रगति वित्तीय संरचना के विकास में भी हुई है ।

आर०बी०आई० के गवर्नर पूरी के अनुसार " बैंकिंग संस्थाएं अब इस योग्य बना दी गयी हैं कि वे वित्तीय साधनों की उपलब्धि और उन साधनों के वितरण दोनों की दृष्टि से बेहतर निवेश और उत्पादन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकें उन्होंने बैंक को निर्देश दिया कि वे न केवल अपनी संगठन क्षमता को इस प्रकार सुविकसित करें कि अधिक मात्रा में जमा राशि जुटायी जा सके। बल्कि विशेष रूप से अधिक कठोरता पूर्वक ऋण आयोजन को व्यवस्थित करने का और ऋण का नियंत्रित वितरण करने का कार्यभी शुरू करें जिससे कि चल निधि सम्बन्धी संकटके बिना विभिन्न क्षेत्रों की मांगों की पूर्ति हो सके। उन्होंने आगे कहा कि विभिन्न सुविधाओं से छोटे ऋण कर्ताओं के वंचित होने की सम्भावनाओं को रोकने की बैंकरों की कुशलता के अनुसार ही प्रधानमंत्री के नये आर्थिक कार्यक्रम में निहित कई सामाजिक आर्थिक लक्ष्यों की पूर्ति हो पायेगी।

एक समय ऐसा भी था कि जब लाभदायकता बैंक से बहुत कम सम्बन्धित थी इसलिए नहीं कि बैक को लाभ में रुचि नहीं थी, बल्कि इसलिए क्योंकि लाभ की गारण्टी होती थी। ऋण पूर्णतया सुरक्षित थे और ऋणों पर भारी व्यय पर व्याज मिलता था। शाखाओं का कार्य बहुत सीमित था और जमाएं अत्यन्त निम्न थीं। ये सभी बैंक की लाभदायकता में अपना योगदान देते थे।

राष्ट्रीयकरण के तुरन्त बाद बैंक शाखाओं का तीव्रता से विस्तार हुआ और कृषि क्षेत्र में साख सुविधाओं में बहुत वृद्धि हुई। कोषों के प्रवाह बाजार प्रतियोगिता में जमा गतिशीलता पर रोक से प्रभावित हुआ और सरकार ने अपनी पूंजी पुनः लाभ-दायकता में वृद्धि लाने के लिए व्यवासायिक क्षेत्र में ही प्रवाहित की।

संरचना के दृष्टिकोण से 1969 के राष्ट्रीयकरण के पश्चात् वाणिज्य बैंक व्यवस्था में एक विशेष बल और समंजन प्राप्त हुआ । जुलाई 1969 में हुए बैंक राष्ट्रीयकरण के पांच वर्षों के अन्दर बैंक शाखाओं की संख्या में 155 प्रतिशत से भी अधिक की वृद्धि हुई । परन्तु सबसे अधिक असाधारण प्रगति ग्राम केन्द्रों के रूप में हुई । जिनकी संख्या जुलाई 1969 में 1858 से बढ़कर जून 1990 के अन्त तक 53858 हो गयी । प्रति बैंक दफ्तर द्वारा सुविधा उपलब्ध औसत जनसंख्या की मात्रा कम होती गयी हैं। 1969 में 69000 जनसंख्या के लिए एक बैंक दफ्तर था, 1973 में 36000 जनसंख्या के लिए 1990 में 12000 जनसंख्या के लिए एक बैंक दफ्तर कायम हो गया। बैंक दफ्तरों के बढ़ने के कारण अब बैंक क्षेत्र का बहुत विस्तार हुआ है। 83 प्रतिशत ग्रामों की जनसंख्या 1000 से कम हैं और इस कारण प्रत्येक ग्राम में बैंक खोलना सम्भव नहीं है । अत: एक ग्रामीण बैंक 16 किलोमीटर के घेरे के अन्दर सभी ग्रामों की सेवा उपलब्ध कराता है । शाखा विस्तार की यह प्रगति बहुत महत्वपूर्ण है परन्तु यह हमें राष्ट्रीयकृत बैंक की समस्या के आकार का बोध कराती हैं । आज भारत में 560,000 ग्रामों में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से केवल 20398 ग्रामों में ही बैंकिंग सुविधा उपलब्ध हैं । राष्ट्रीयकरण के पश्चात सरकारी क्षेत्र के बैंकों ने अपने पारम्परिक उद्देश्य "अपने लाभ को अधिकतम् करना" का परित्याग कर दिया और वे अपने आप को विकास प्रयास का मुख्य उपकरण समझने लगे हैं । इस नयी चेतना का सबसे महत्वपूर्ण पहलू "अग्रणी बैंक योजना " चालू करना है जिसके अधीन देश के सभी जिले किसी न किसी बैंक को सौंपे गये हैं । प्रत्येक अग्रणी बैंक अपने अधीन जिलों में विस्तृत आर्थिक सर्वेक्षण करवाता है, ताकि (1) सभी महत्वपूर्ण स्थानों पर शाखाएं खोली जा सके । (2) जिले में विकास के लिए

अधिकतम उधार सेवाएं उपलब्ध करायी जा सकें और §3§ जिले में उपलब्ध अतिरेक को गतिमान किया जा सके ।

राष्ट्रीयकरण से पूर्व वाणिज्य बैंक के विरूद्ध प्राय: यह आलोचना की जाती थी कि उन्होंने किसानों छोटे उद्योग पतियों, कारीगरों और निर्यातकों को वित्त उपलब्ध कराने की उपेक्षा की । राष्ट्रीयकरण के पश्चात बैंक ने इन प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को उधार उपलब्ध कराने की ओर काफी ध्यान दिया । कृषि और लघु उद्योगों कोउधार उपलब्ध कराने की प्रवृत्ति बैंक के सामाजिक नियंत्रण और रिजर्व बैंक के दबाव के चालू होने के पश्चात प्रारम्भ हुई । छोटे व्यापारियों एवं उद्यम कर्त्ताओं को ऋण देने के सम्बन्ध में बहुत प्रगति हो चुकी है, और बैंक ने निम्न वर्गों को उधार देने के लिए विशेष योजनाएं चालू की । प्राथमिकता क्षेत्र के बहुत से उधार लेने वाले इससे पूर्व महाजनों की दया पर निर्भर थे और अत्यधिक ब्याज देते थे जो कि 24 प्रतिशत या इससे भी अधिक होता था । वाणिज्य बैंकें अब उचित ब्याज दर § 8 से 10 प्रतिशत के बीच§ पर पर्याप्त मात्रा में और उचित समय पर यथा ऋण उपलब्ध कराते हैं ।

राष्ट्रीयकरण के पहले 18 मास के पश्चात सरकारी क्षेत्र के बैंक द्वारा प्राथमिकता क्षेत्र को दिया जाने वाला उधार दुगने से भी अधिक बढ़ गया है । सरकारी क्षेत्र के अधीन दिये गए कुल उधार में कृषि अग्रिमों का भाग जो जून 1969 में 5•5 प्रतिशत था, धीरे-धीरे बढ़ता हुआ मार्च 1982 में 16 प्रतिशत तथा मार्च 1988 में 18 प्रतिशत हो गया । प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में कुल ऋणों का अनुपात 1951 में मात्र 2 प्रतिशत था जो 1969 में 15 प्रतिशत से बढ़कर मार्च 1982 में लगभग 37 प्रतिशत तथा मार्च 1988 तक बढ़कर 40 प्रतिशत हो गया । यह प्रगति मर्यादित ही कही जा सकती है ।

राष्ट्रीयकरण के फौरन बाद इसमें तीव्र प्रगति हुई । परन्तु बाद में यह धीमी पड़ गयी। ऋणों की इस अवरूद्धता का मुख्य कारण यह है कि बैंक के अफसर ऊपर से लेकर नीचे तक बैंक व्यवस्था के नए उद्देश्यों से पूर्णतया सजग और अभिप्रेरित नहीं है । इसी कारण तो कृषि उधार से 20 वर्षों में 5•8 प्रतिशत से 1982 में 15•8 प्रतिशत तथा 1985 में 16 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई । इसी प्रकार अन्य सभी क्षेत्रों में जिसमें सड़क परिवहन के चालक,फुटकर व्यापारी और छोटे धन्धें वाले पेशेवर तथा स्वनियुक्त व्यक्ति सम्मिलित हैं, को दिये ऋणों की मात्रा जो 1969 में लगभग 1 प्रतिशत थी, बढ़कर 1982 में 6•7 प्रतिशत हो गयी । लघु स्तरीय उद्योगों के ऋण जो कि 1969 में 8•5 प्रतिशत थे, 1985 में बढ़कर 13•8 प्रतिशत हो गया ।

बैंक के उधार में सबसे अधिक चिन्ताजनक पहलू बड़ी लापरवाही से बैंक उधार का विस्तार करना है और सम्भवत: यह सरकार के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष निर्देशों के अधीन किया जा रहा है । आमतौर पर बैंक उधार का विस्तार बैंक जमा के विस्तार के साथ -साथ होता है । परन्तु बैंक राष्ट्रीयकरण के पश्चात बैंक उधार का विस्तार 24 प्रतिशत की दर से हुआ जबकि बैंक जमा में लगभग 17 प्रतिशत की वृद्धि हुई । अत: राष्ट्रीयकरण के बावजूद बैंक उधार सम्बन्धी पुरानी बुराइयां अभी दूर नहीं हुई थीं ।

बैंक राष्ट्रीयकरण से एक प्रत्याशा यह थी कि इसके पश्चात राष्ट्रीयकृत बैंक देश की योजनाओं के लिए वित्त उपलब्ध करायेंगे । वास्तव में योजना आयोग को चौथी योजना के लिए वित्त जुटाने के सम्बन्ध में सरकारी बैंक से बड़ी आशाएं थी परन्तु चौथी योजना के प्रथम वर्ष (1969-70) के दौरान इन बैंक का योजना वित्त में योगदान नकारात्मक था । 1970-71 के दौरान बैंक द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों में

में विनियोग बहुत कम था । अत: स्पष्ट है कि बैंक ने राष्ट्रीयकरण के पश्चात कुछ क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कार्य किया है, किन्तु अन्त में वे इतने सफल नहीं रहे । एक सामान्य धारणा बलवती होती जा रही है कि बैंक द्वारा सामाजिक उद्देश्यों को अपनाने के पश्चात पूंजी पर प्रत्याय -दर कम ही रहेगी । प्रो0 वी0एन0 बदारकार, रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के भूतपूर्व गवर्नर ने इस सम्बन्ध में साफ-साफ कहा," यह सोचना कि चूंकि बैंक अपने सामाजिक उद्देश्यों का पालन करने लगे हैं , इसलिए उनकी पूंजी पर उचित प्रत्याय दर प्राप्त नहीं हो सकती, गलत है । राष्ट्रीयकरण के पश्चात भी विनियोग पर प्रत्याय की दर बैंक के कार्य प्रगति को मापने की एक महत्वपूर्ण कसौटी रहेगा ।"

स्टेट बैंक आफ इण्डिया और राष्ट्रीय-कृत बैंक के लाभ की मात्रा में 1973 की तुलना में 1981 में वृद्धि तो हुई है परन्तु अन्य अनुसूचित बैंक और विदेशी बैंक का लाभ कहीं अधिक मात्रा में बढ़ा है । अत: राष्ट्रीयकृत बैंक को अपनी आय को और अधिक बढ़ाने और व्यय करने की ओर ध्यान देना चाहिए ताकि बैंक से प्राप्त लाभ राष्ट्रीय विकास में इस्तेमाल किया जा सके । चूंकि राष्ट्रीयकृत बैंक द्वारा कुल लाभ 1981 में केवल 64 करोड़ रुपये था । यह कुल आय का केवल 1•2 प्रतिशत था ।

भारत में नियोजनाकारों ने कृषि एवं ग्रामीण विकास को उच्च प्राथमिकता दी है, क्योंकि भारत की जनसंख्या का एक बड़ा भाग ग्रामीणक्षेत्र में रहता है, तथा कृषि और उससे सम्बन्धित कार्यों में लगा हुआ है । भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र के महत्व के बावजूद जून 1969 में अनुसूचित वाणिज्य बैंक को उस क्षेत्र को केवल 188 करोड़ रुपये ऋण दिये गये ।

अन्य बातों के साथ-2 समानता और सामाजिक न्याय हमारी पंचवर्षीय योजना के मार्गदर्शी सिद्धान्तों में से एक है , और ग्रामीण विकास पर अधिक बल देकर तथा समाज के कमजोर वर्गों को सहायता प्रदान करके उन्हें बढ़ावा देने का प्रयत्न किया गया । बैंक (1) 20 सूत्रीय कार्यक्रम, (2) एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम व (3) शिक्षित बेरोजगार युवकों के लिए स्वनियोजन की योजना का समर्थन करके कृषि और ग्रामीण विकास में अपना शक्ति भर योगदान कर रहे हैं ।

नकदी साख अनुपात में विस्तृत उतार-चढ़ाव देखने में आए लेकिन पिछले 13 वर्षों से अर्थात 1977 से 1990 के दौरान रिजर्व बैंक आफ इण्डिया द्वारा निर्धारित वैधानिक तरलता अनुपात में वृद्धि के कारण इसमें विचारणीय वृद्धि की प्रवृत्ति दिखायी पड़ी । लगभग इसी प्रकार की प्रवृत्ति कार्यकारी रिजर्व नकदी अनुपात में भी रही । कुछ बैंकों ने अधिक कार्यात्मक कुशलता के लिए अपने नकदी अनुपात में वृद्धि की है ।

बैंक के आकार का उसकी लाभदायकता से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता है । हमारे अध्ययन के दौरान यह तथ्य उभरकर सामने आया कि छोटी बैंक की लाभदायकता (प्राप्त की गयी -चुकायी गयी ब्याज) अपेक्षाकृत रूप से अधिक रही । ऐसा इसलिए सम्भव हुआ क्योंकि छोटी बैंक के स्थापना व्यय कम होते हैं, जबकि मजदूरी उत्पादकता ऊंची होती है ।

बैंकिंग उपलब्धियों के मूल्यांकन के मापक "राष्ट्रीय प्राथमिकता एवं कार्यात्मक कुशलता"तथ्य है । सामान्य रूप से बैंक की संयुक्त कुशलता, कुशलतम कार्यात्मक कुशलता,मजदूरी उत्पादकता एवं लाभदायकता में महत्वपूर्ण सह-सम्बन्ध होता है । राष्ट्रीयकरण के पश्चात से अभी तक बैंकों की कार्यात्मक कुशलता के अन्तर्गत नकदी

प्रबन्धन और साख जमा प्रबन्धन की उपलब्धियां काफी खराब रही । अतः सामान्यरूप से बैंक को अपनी कार्यक्षमता में वृद्धि करनी होगी । बैंक को अपने नकदी प्रबन्धन के प्रवाह को बनाए रखना होगा और अतिरेक नकदी का पूरा-पूरा उपयोग करना होगा जिससे कि वे अपने आदर्श लाभदायकता अनुपात को बनाए रख सकें ।

1986 के अन्त में अनुसूचित वाणिज्य बैंक की 53364 शाखाएं थी जिनमें से 12184 हानि दिखा रही थी । ये हानि उत्पन्न करने वाली शाखाएं जो कि 5 वर्ष या इससे अधिक समय से हानि दिखा रही थी, इनमें सुधार हुआ और ये 3 वर्षों के पश्चात तक लगभग 6228 हो गयी । 1986 में कुल हानि उठानेवाली शाखाओं को लगभग 267 करोड़ रूपये की सहायता प्रदान की गयी । इसके साथ ही 6228 शाखाओं द्वारा अपनी हानि कोछिपाके रखा गया, जो बाद में 175 करोड़ रूपये हो गयी ।

वैधानिक तरलता अनुपात और रिजर्व नकदी अनुपात के बढ़ने से कुल साख में संकुचन होता है । इससे प्राथमिकता क्षेत्र के कोष को अनिवार्य रूप से कम करना होता है तथा विविभिन्न स्वरोजगार योजनाओं में बैंक की सक्रिय भागीदारी के कारण उन्हें अपनी लाभदायकता को बनाए रखने में कठिनाई हो रही है । बैंक के ग्रामीण शाखाओं में अंधाधुंध वृद्धि से जो जिनमें कि ऋण कम से कम 6 से 10 वर्षों के बीच ही लाभ प्रदत्ता प्रदान करने में समर्थ हो पाती हैं, इससे भी बैंक की लाभ प्रदता में बहुत कमी आयी है । परन्तु इससे बैंक जमाओं की स्थिति में काफी सुधार हुआ है ।

साख से उत्पन्न आय में कमी होने के साथ ही बैंक के लिए आय उत्पन्न करने वाले क्षेत्र केवल विदेशी विनिमय और विभिन्न व्यवसायिक क्रिया-कलाप से ही ऐसे हैं जिनसे बैंक की आय में वृद्धि होती है । उक्त प्रकार के व्यवसायों से प्रेषण तथा एकत्रण की सुविधाएं आती है। अभी हाल में ही भारतीय बैंक का विदेशी बैंक की अपेक्षा

सेवा शुल्क बहुत नीचा था तथा बहुत से मामलों में बैंके अपने ग्राहकों से वास्तविक सेवा मूल्य से भी कम कमीशन चार्ज लेती थी । ऋणों का दुरूपयोग भी उनकी आय में रिसाव पैदा करता है । रिजर्व बैंक आफ इण्डिया द्वारा निर्देशित निश्चित सेवा शुल्क और मुख्य कार्यालयों द्वारा कड़े कदम उठाने से ही उनकी आय में कुछ सुधार हो सकता है । लेकिन तेजी से बढ़ते हुए आवेर ड्यू ﴾ बिना भुगतान किए हुए ऋण ﴿ और बहुत बड़ी संख्या में अदालतीमामलों ने जो कि ऋणों की क्षतिपूर्ति के लिए थे और इकाइयों द्वारा अपने कोषों का अलग रख-रखाव से बैंक के ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा ।

वाणिज्य बैंक का राष्ट्रीयकरण करने के लिए दिये गये सभी तथ्यों का तात्पर्य पूर्णरूप से यह था कि वाणिज्य बैंकिंग व्यवस्था में कृषि तथा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को भी स्थान मिले तथा साख का एक निश्चित भाग इन क्षेत्रों पर व्यय करना आवश्यक है । औद्योगिक क्षेत्र के बड़े और मध्यम उधार प्राप्त कर्ताओं के लिए उनकी आवश्यकता के अनुरूप एक नीति तैयार की गयी जिनके अन्तर्गत उन्हें ऋण प्रदान किया जाता है । अत: यह निश्चित किया गया कि औद्योगिक क्षेत्र को ऋण प्रदान किये जाते समय ऋणों की अब इतनी अधिक अच्छी प्रकार से जांच पड़ताल करके दिया जायेगा कि उन ऋणों का किसी अन्य क्षेत्र में दुरूपयोग न हो सके । अत: वाणिज्य बैंक का राष्ट्रीयकरण बैंक की परिसम्पत्तियों के आवंटन में एक महत्वपूर्ण सुधार लाने के लिए किया गया । यद्यपि कृषि तथा प्राथमिक क्षेत्र में ऋणों का विनियोजन लम्बी अवधि के लिए तथा कम ब्याज दर पर होता है । जिससे कि बैंक की लाभदायकता एक ओर तो कम हो रही है और साथ ही दूसरी ओर लम्बी परिपक्वता अवधि के कारण तरलता में भी कमी हो रही है । अत: बड़े उद्योगों के क्षेत्र में बैंक ऋणों

का विनियोजन अधिक पसन्द करते हैं , परन्तु राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए एक बैंक के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह अपने ऋणों का एक निश्चित भाग कृषि, उधोग तथा विनिर्माण के क्षेत्र में विनियोजित करें । इससे बैंकिंग नीति के आधारभूत सिद्वान्त सामाजिक न्याय का निर्वाह होता है । अत: बैंकिंग का मुख्य लक्ष्य प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र में आसान शर्तों पर ऋण उपलब्ध करवाना है ।

इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए आज बैंके अनेक योजनाएं भी चला रहे हैं । अपनी परिसम्पत्तियों का विनियोजन करते समय बैंक को इसका कुछ भाग सुरक्षित प्रतिभूतियों में विनियोजित करना आवश्यक होता है । बैंके अपनी लाभदायकता को बनाए रखने के लिए कुल अग्रिमों का ए क भाग लाभदायक प्रतिभूतियों में विनियोजित करते हैं । परन्तु ग्राहकों के मांग करने पर उनकी मांग की तुरन्त पूर्ति के लिए बैंक को अपनी तरलता को भी बनाए रखना आवश्यक होता है, अत: भारतीय वाणिज्य बैंक अपनी प्रतिभूतियों का कुछ भागतरल परिसम्पत्तियों में विनियोजित करते हैं । इस प्रकार से राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए आज राष्ट्रीयकृत बैंक के लिए यह दिनों दिन बहुत अधिक कठिन होता जा रहा है कि वे बैंकिंग के आधार भूत सिद्वान्त तरलता,लाभदायकता एवं सुरक्षा में किस प्रकार समन्वय बनाए रख पाएगें ।

लाभप्रदता दबाव सम्बन्धी नीतियों कोउदार बनाकर,लागतों को सीमित रखकर, बैंक की पूंजी को मजबूत बनाकर और उन्हें बैंक प्रभारों के सम्बन्ध में लचीलापन प्रदान करके वित्तीय सक्षमता पर बल । जहां इन सुधारों से बैंकिंग प्रणाली में पर्याप्त सहायता मिली हैं, वहीं बैंक की लेनदारियों की वसूली में अनुकूल वातावरण न होने से बढ़ती हुई औधोगिक रूग्णता और अदालतों में दावों को लागू करने में लगने वाले लम्बे समय के कारण बैंक की लाभप्रदता पर निरन्तर दबाव बना हुआ है । उत्पादकता और

दक्षता बढ़ाने के अपने प्रयासों में बैंक को दृढ़ बने रहना होगा, साथ ही प्रणाली और वातावरण सम्बन्धी दबावों को कम करने के उपायों पर भी जोर दिया जा रहा है ।

सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बैंकिंग तन्त्र पर पड़े भारी बोझ तथा कुछ बैंकों की लाभ प्रदता पर पड़े दबाव के बावजूद भारतीय वित्तीय प्रणाली समग्रत: सुदृढ़ और व्यवस्थित रही हैं । यह भी उल्लेखनीय है कि पिछले बीस वर्षों में कोई बैंक फेल नहीं हुआ है । हालांकि कुछ कमजोर बैंकों को कुछ सुदृढ़ बैंकों के साथ समामेलित करना पड़ा है, परन्तु ये कार्य निक्षेप बीमा निगम और प्रत्यय गारण्टी निगम की योजनाओं की सुरक्षा में सुचारु ढंग से हो गए हैं । हाल ही में समेकीकरण पर बल दिया जा रहा है जिससे बैंकिंग तन्त्र की वित्तीय सुदृढ़ता को बनाएं रखने में सहायता मिल रही है ।

वाणिज्य बैंक ने अपनी सहयोगी कम्पनियों के माध्यम से वाणिज्य बैंकिंग, उपस्कर पट्टे पर देना, आवास वित्त, उद्यम पूंजी, म्यच्यूअल फण्ड आदि जैसे नए क्षेत्र में अपनी गतिविधियों का विविधिकरण जारी रखा है । बैंकिंग विनियमन अधिनियम 1949 के अर्न्तगत भारत सरकार द्वारा जारी अधिसूचना के फलस्वरूप आढ़तिया कार्य-कलाप भी व्यापार का एक अनुमत रूप से हो गया है, जिसमें बैंक स्वयं को लगा सकते हैं । बैंक को सूचित किया गया कि वे इसे अपने विभागों के माध्यम से न करें बल्कि अपनी सहायक कम्पनियों[12] के माध्यम से करें ।

12- "मई 1990 तक वाणिज्य बैंक की सहायक कम्पनियों की संख्या 8(आठ) हो गयी, जिसे सरकारी क्षेत्र के 7 बैंकों तथा गैर सरकारी क्षेत्र के एक बैंक द्वारा स्थापित किया गया ।"-रिजर्व बैंक आफ इण्डिया बुलेटिन जून, 1990(परिशिष्ट) पेज 158•

बैंक पर सामाजिक नियंत्रण और बाद में प्रमुख बैंक के राष्ट्रीयकरण के उद्देश्यों में से एक उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि ऋण अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रीय आयोजना की प्राथमिकताओं के अनुसार ही पहुंचाया जाता है । अन्य बातों के साथ-साथ इसका तात्पर्य उन क्षेत्रों तक ऋण पहुंचाना था जो अब तक उपेक्षित थे । इस आवश्यकता को पहली बार तब स्वीकार किया गया जब " प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को उधार " विषय पर गठित कार्यकारी दल ने यह कहा था, "यह सुनिश्चित करना जरूरी है, कि प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के अर्न्तगत बैंक अग्रिम अपेक्षाकृत कमजोर और अल्पसुविधा प्राप्त वर्ग को दिये जाते हैं ।" प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र में कमजोर वर्ग का तात्पर्य समाज का अल्प सुविधा प्राप्त वर्ग होगा । उनकी कमजोरी वित्तीय हो सकती है अथवा सामाजिक जैसे -कि अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां समाज के सामाजिक रूप से कमजोर ये वर्ग वित्तीय रूप से भी कमजोर वर्ग है, और इसके अलावा इनमें अपने कष्ट के निवारण के लिए उन्हें अपनी बात मनवाने और खुलकर रखने की भी शक्ति की कमी है । अत: बैंक सुविधा रहित क्षेत्रों, विशेषकर ग्रामीण और अर्द्धशहरी जनसंख्या वाले क्षेत्र में बैंकिंग सुविधा का व्यापक प्रसार हुआ है तथा बैंक ऋण का प्रवाह प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के लिए हुआ है ।[13]

श्री पी0एन0 जोशी जो कि बैंक आफ इण्डिया के वरिष्ठ अभियन्ता रह चुके हैं ने " सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक की लाभदायकता को बढ़ाने के लिए मुख्य मुद्दे " विषय के अर्थशास्त्रियों के सेमिनार में कुछ तथ्य प्रस्तुत किए । उनमें से कुछ निम्नलिखित महत्वपूर्ण तथ्य हैं :-

---

13- प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को उधार और 20 सूत्रीय कार्यक्रम - बैंक की भूमिका पर कार्यकारी दल की रिपोर्ट । अध्यक्ष डा0के0एस0 कृष्ण स्वामी ।

1- बैंकिंग कम्पनीज एक्ट 1949 के सेक्सन 24 के अन्तर्गत वैधानिक तरलता अनुपात जो कि बैंक की सुरक्षा की द्वितीयपंक्ति माना जाता है, बैंक की लाभदायकता में अत्यन्त महत्वपूर्ण ढंग से वृद्धि कर ‾‾ता है । आज इस यन्त्र का प्रयोग केवल सरकार के कोष की व्यवस्था करने का एक उपकरण मात्र बन गया है और ये संस्थाएं इनका प्रयोग बहुत घटिया तरीके से करते हैं। इस प्रकार बैंकिंग परिसम्पत्तियों के 37 प्रतिशत भाग पर केवल कुल आय का 7 प्रतिशत प्राप्त होता है । दिसम्बर 1991 में प्रकाशित नरसिंहम् कमेटी की संस्तुतियों में इसे कम करके 20 प्रतिशत तक लाने को कहा गया है ।

2- भारतीय वाणिज्य बैंके बहुत ही दुविधापूर्ण स्थिति में ऋण प्रदान करते हैं अर्थात् वे दीर्घकालीन ऋणों पर बहुत ऊंची ब्याज दर वसूल की जाती है । लेकिन यह अवधि इतनी अधिक होती है कि जब वे वापस किए जाते हैं तो इनकी वास्तविक कीमत बहुत कम रह जाती है ।

इसी प्रकार से सामाजिक बैंकिंग के लक्ष्य निश्चित कर दिये जाते हैं, जिससे कि परिसम्पत्तियों की गतिशीलता पर अवरोध लग जाता है, ये लक्ष्य है :-

1- बैंक की कुल साख का 40 प्रतिशत प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को देना चाहिए तथा इसमें से 25 प्रतिशत समाज के कमजोर वर्गों जैसे छोटे और सीमान्त कृषकों, भूमिहीन श्रमिकों, सब्जी उगाने वाले आदि को दिया जाना चाहिए । छोटे कलाकारों तथा ग्रामीण व कुटीर उद्योगों में लगे समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम एवं वैभिन्नित ब्याज दर योजना के अन्तर्गत लाभान्वितों को 4 प्रतिशत की निम्नतम् ब्याज दर पर ऋण प्रदान करना ।

2- कुल बैंक साख का 15 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में प्रत्यक्ष वित्तीयन के लिए प्रदान किया गया, जो कि मार्च 1986 तक 16 प्रतिशत, मार्च 1987 तक 17 प्रतिशत तथा मार्च 1989

तक 17•5 प्रतिशत हो गया ।

3- कुल बैंक साख का । प्रतिशत वैभिन्नित ब्याज दर योजना के अन्तर्गत 1972 से प्रदान किया जाने लगा ।

शाखाओं की लाभदायकता को बढ़ाने के लिए दो क्षेत्रों पर विशेष जोर दिया गया - बैंकिंग व्यवसाय में वृद्धि तथा खर्चों में कमी करना । वास्तव में आज लाभदायकता शाखा बजटिंग के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपकरण बन गया है । लाभ बजट के साथ ही व्यापार बजट भी सम्मिलित रहता है ।

छोटे कस्बों की शाखाएं विदेशी विनिमय व्यापार के लिए पूर्णतया बेकार होती है। अत: शाखाओं की आयमें वृद्धि के लिए विविध प्रकार के व्यवसायों में धन को विनि-योजित करना होता है । अभी हाल में प्रारम्भ किए गये यात्री चैंकों की भी विनिमय दर बहुत नीची है । इन सुविधाओं की दरें आज मांग जमाओं की भांति बन गए हैं। अत: इन क्षेत्रों से बैंक के आय साध नों में वृद्धि होनी चाहिए ।

अभी हाल ही में उपभोक्ताओं की विश्वसनीयता को बनाए रखने के लिए बैंक ने ऋण सुविधाओं में वृद्धि की । ये योजनाएं मुख्यतया सरकारी क्षेत्र के सेवायोजकों/ सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत प्रतिष्ठित निजी उद्यमियों के लिए है ।

इस योजना का क्षेत्र बहुतअधिक विस्तृत है । इसमें ऋण का विस्तार क्षेत्र उत्पादित वस्तु के अनुसार एक हजार रूपये से एक लाख रूपये तक है । इसका अग्रिम सुरक्षित रहेगा तथा भुगतान की अनिश्चितता के कारण अधिक सेवा मूल्य की आवश्यकता नही होती । सेवायोजकों से यह आशा की जाती है कि वे चेक गारण्टी की व्यवस्था करेंगे तथा वेतन और प्रतिलाभ में से ऋण किस्तों में चुका देंगे । यह एक अच्छी योजना है जिससे कि बैंक अपने ऋण को सामान्य सेवा में लगा सकते हैं । इससे सेवायोजक के वेतन के साथ बैंक की

लाभदायकता एक कड़ी के रूप में जुड़ जायेगी ।

वाणिज्य बैंक के पास कुछ जमाएं अवधि जमाएं व कुछ चालू जमाएं होती हैं । वहां चालू बचत खातों के लिए बैंक को तरलता बनाए रखनी पड़ती है और इससे कम आय प्राप्त होती है , वही अवधि जमाओं में लाभदायकता का अंश तो अधिक होता है, लेकिन तरलता का अभाव होता है । अत: इन दोनों में उचित तालमेल होना चाहिए । चालू खाते में सन्तुलन बैंक के बहुत ऊंचे आय के स्रोत से ही होता है, अत: बैंक को अपनी जमाएं मिश्रित रूप में ही रखनी होती है ।

इस प्रकार से बैंक के खर्चों में कमी केवल इन क्षेत्रों में हो सकती है जहां पर कि बैंके अपने सेवायोजकों तथा स्टाफ को यात्रा भत्ता देते हैं । स्टेशनरी तथा बैंकिंग कार्यालयों के फर्नीचरों में ही कमी की जा सकती है। यात्रा भत्ता व्यय पर नियंत्रण का एक मात्र उपाय यह है कि बैंकिंग स्टाफ विभिन्न क्षेत्रों में अपना भ्रमण कार्य संगठित ढंग करें । स्टेशनरी बैंक के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती है । यह देखा गया है कि बैंक के विभिन्न कार्यालयों में केवल आवश्यकता के अनुसार ही स्टेशनरी उपलब्ध है, परन्तु बहुत सी शाखाओं में स्टेशनरी का कमरा विभिन्न प्रकार की स्टेशनरी बहुत अधिक मात्रा में है जबकि इन बैंक शाखाओं को इनकी कोई जरूरत नहीं होती ।

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने अभी हाल ही में बैंक की आय उत्पन्न करने की क्षमता में वृद्धि करने के लिए बहुत से कदम उठाएं हैं । उनमें से मुख्य हैं :-

1- खाद्य ऋणों पर व्याज की दर को 12•5 प्रतिशत से बढ़ाकर 14 प्रतिशत कर दिया गया है , जो कि पहली अक्टूबर से प्रभावी है ।

2- सरकार ने निर्णय लिया कि वह शेयर पूंजी के लिए राष्ट्रीयकृत बैंक को 400 करोड़ रूपये का योगदान देगा । अतः बैंक को अपनी विशेष सुरक्षा के लिए रिजर्व बैंक के पास 7•75 प्रतिशत रिजर्व नकदी रखने को कहा गया ।

3- केन्द्र सरकार की कूपन दर बढ़ाकर 11•5 प्रतिशत कर दी गयी और केन्द्र सरकार की प्रतिभूतियों बाण्डों और डिबेंचर की ब्याजदर पर ऋण देने वाले संस्थान की दरें बढ़ाकर 11 प्रतिशत कर दी गयी ।

4- रिजर्व बैंक ने रिजर्व नकदी अनुपात की ब्याज दर को बैंक दर में सन्तुलन बनाए रखने के लिए बढ़ाया ।

5- 1985 में प्रस्तुत की गयी सुखमय चक्रवर्ती कमेटी की रिपोर्ट में भी ब्याज दर और स्वतन्त्र करने के लिए संस्तुति की गयी तथा 1991 में प्रस्तुत की गयी नरसिंहम् कमेटी की रिपोर्ट में भी सरकारी प्रतिभूतियों की दर को बढ़ाकर उस जमाओं पर प्राप्त होने वाले औसत जमा दर के बराबर करके और ब्याज दर संरचना को स्वतन्त्र करने की संस्तुति की ।

ये कदम निश्चित रूप से बैंक के आय के स्रोत में वृद्धि करेंगे तथा उनके लाभ में वृद्धि करने में सहायक होंगे । लेकिन इन सहयोगी साधनों की अपेक्षा बैंक अपने पारम्परिक आय के साधनों पर अधिक निर्भर रहेंगें । इस सन्दर्भ में सबसे अधिक गम्भीर ध्यान देने योग्य तथ्य है कि वाणिज्य क्षेत्र में साख की उपलब्धता में वृद्धि करनी होगी ।

ऋण परिसम्पत्तियां बैंक के आय के आधारक स्रोत के रूप में सबसे महत्वपूर्ण है । इस सन्दर्भ में बढ़ते हुए आवेरड्यू की क्षतिपूर्ति के लिए और बिना तैयारी के ऋणों के बढ़ते हुए औसत से ऋण परिसम्पत्तियों पर छायें संकट से छुटकारा पाने के लिए बैंक

के पोर्टफोलियो को ठीक ढंग से व्यवस्थित करना होगा । इस सन्दर्भ में नरसिंहम् कमेटी ने अपनी संस्तुतियों में बुरे एवं खराब ऋणों में सुधार के लिए परिसम्पत्ति पुर्नसंरचना कोष स्थापित करने की संस्तुति की ।

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक की स्थिति रिजर्वबैंक आफ इण्डिया के निर्देशों के अनुसार पिछले कुछ वर्षों से इसमें बहुत अवसाद जनक मोड़ आ रहे हैं । ओवरड्यू में अग्रिमों का प्रतिशत निरन्तर बढ़ता जा रहा है जिसका औसत 1983 में 14•6 प्रतिशत था ; जो 1986 में बढ़कर 15•7 प्रतिशत हो गया तथा पुन: जून 1987 के अन्त में यह 16•8 प्रतिशत हो गया ।

प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र में जून 1987 के अन्त तक 5802 करोड़ रूपये से अधिक का विनियोजन किया जा चुका है जो कि 22•8 प्रतिशत प्राथमिक क्षेत्र का अग्रिम होता है जबकि 2613 करोड़ रूपये का अग्रिम मध्यम तथा बड़े उद्योगों तथा 1316 करोड़ रूपये का दूसरे क्षेत्र के लिए जिसमें 15•1 प्रतिशत बड़े तथा माध्यम उद्योगों तथा 8•7 प्रतिशत अन्य क्षेत्र के लिए विनियोजित किया गया ।

भारत में नौ राष्ट्रीयकृत बैंक को अन्य बैंक को रूग्ण बैंक माना गया जिनके नाम है [14] न्यू बैंक आफ इण्डिया, पंजाब एण्ड सिन्ध बैंक, यूको बैंक, विजया बैंक, सिंडीकेट बैंक, बैंक आफ महाराष्ट्र , बैंक आफ इण्डिया, यूनाइटेड बैंक आफ इण्डिया तथा इलाहाबाद बैंक ।

14– स्रोत : "आज " दैनिक समाचार पत्र के 30 दिसम्बर 1990, पेज–5 पर प्रकाशित लेख " बैंकों में बढ़ती रूग्णता, निदान के प्रति उपेक्षात्मक रूख " ।

न्यू बैंक आफ इण्डिया को तथा यूको बैंक को छोड़कर शेषसातों बैंक ने मात्र छः महीनें पहले कुल 500 करोड़ रुपये से कुछ कम का लाभ कमाया है । अधिकांश भारतीय बैंकनेअपने रूग्ण होने की बात से इन्कार किया है । लेकिन यह तथ्य निर्विवाद रूप से सत्य है कि भारतीय बैंक सन्तोष जनक स्थिति में नहीं है । रिजर्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार प्रबन्ध, लक्ष्य उधारी तथा राजनैतिक हस्तक्षेप जैसी कमियां भविष्य के लिए चिन्ता का कारण है। नरसिंहम् पैनल की संस्तुतियों में भी वाणिज्य बैंक के कार्यों में राजनैतिक हस्तक्षेप को शीघ्र ही बन्द करने के लिए कहा गया है ।

विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार " भारतीय बैंक अपवाद स्वरूप लाभ कमाने की स्थिति में है । क्योंकि वे अपनी राशि का बहुत थोड़ा हिस्सा ही लाभदायक मद में लगा सकते हैं । इस तरह उन्हें ऊंची लागत की भरपायी करनी होती है।" रिपोर्ट के अनुसार भारतीय बैंक को प्रत्येक 100 रुपये की जमा राशि पर 53•5 रुपये वैधानिक प्रारक्षित कोषके रूप में भारतीय रिजर्व बैंक को देने होते हैं । 18•6 रुपये प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को उधार देने होते हैं । इस पर सिर्फ 4 प्रतिशत से 12 प्रतिशत तक व्याज प्राप्त होता है । मात्र 27•90 रुपये केवल वाणिज्यिक उधारी के लिए होते हैं । बैंक आफ महाराष्ट्र के अध्यक्ष के और प्रबन्ध निर्देशक टी0के0 के0 भागवत के अनुसार इस प्रकार बैंक को प्रत्येक 100 रुपये पर औसतन 10•50 रुपये का ही लाभ प्राप्त हो पाता है। श्री भागवत का कहना है कि ऋणों पर प्राप्त होने वाला लाभ जोखिम की तुलना में कहीं कम होता है ।

लागत एवं अन्य खर्चे भी बैंक के नियंत्रण से बाहर हो रहे हैं । इसमें सबसे गम्भीर समस्या है अग्रिमों तथा ऋणों की माफी । दुर्भाग्य जनक बात यह है कि इस समस्या से केवल सरकार एवं रिजर्व बैंक ही परिचित है। लेकिन इस पर वे सिर्फ आश्वासन ही दे

रहे हैं । इस दिशा में आज प्रभावी व कठोर कदम उठाये जाने की आवश्यकता है ।

इसी बीच घाटा देने वाले न्यू बैंक इण्डिया तथा यूको बैंक के विलय के लिए भी एक प्रस्ताव लाया गया । न्यू बैंक का अन्य बैंक में विलय करने का प्रस्ताव तैयार है । यूको बैंक के लिए हाल में एक पैकेज बना है, अब उसकी पूंजी इक्विटी 250 करोड़ रूपये से बढ़ायी जायेगी ।

बैंक की गिरती लाभदायकता एवं कमजोर होती स्थिति का एक नमूना भारतीय स्टेट बैंक भी है । पिछले दो दशकों में पहली बार इस बैंक को गम्भीर नकदी की समस्या का सामना करना पड़ रहा है । इस बैंक को अक्टूबर महीने में मुद्रा बाजार से औसतन 30-40 प्रतिशत की दर पर उधार लेना पड़ा । विभिन्न पत्र पत्रिकाओं, समाचार पत्रों के लेखों के विश्लेषण से पता चला कि भारतीय स्टेट बैंक ने बिना मुख्यालय की अनुमति लिए ही कारपोरेट क्षेत्र को दी जाने वाली नयी उधारी पर प्रतिबन्ध लगा दिया है । हो सकता है कि भारतीय स्टेट बैंक के लिए यह एक अस्थायी परेशानी का दौर हो लेकिन एक बैंकर के शब्दों में " यह सम्पूर्ण बैंकिंग तन्त्र में नकदी संकट का संकेत हैं ।

इतना ही नहीं 20 में से सिर्फ छह बैंक ने ही अपने पूंजी खातों में लाभ प्राप्त किया है । यानि की बढ़ते कारोबार की जोखिम भरपायी के लिए उसके पास अतिरिक्त संसाधनों का अभाव है । इसी सन्दर्भ में 1990 में बैंक की कुल पूंजी लगभग 1700 करोड़ रूपये हैं, जबकि उनकी औद्योगिक उधारी 70 हजार करोड़ रूपये से अधिक है । जिस पर उधारी वसूलने की प्रक्रिया धीमी बनी हुई है । मजबूरी में बैंक उधारी विस्तार के लिए पिछले दो वर्षों से ये बैंक अपने जमा आधार की जांच कर रहे हैं ।

बैंक की पतली हालत के लिए कई कारण जिम्मेदार है, उनमें प्रमुख है - मानक खाता

पद्वति का अभाव, जिनके चलते कोई बैंक हर वर्ष भिन्न-भिन्न रंग दे सकता है । अगर बैंक सर्वमान्य पद्वति का प्रयोग करें तो लुका-छिपी की सम्भावना कम हो जायेगी । बैंक के तुलनपत्र में सुधार के लिए नरसिंहम् कमेटी ने भी अपनी संस्तुतियों दी हैं और कहा है कि इससे बैंक के तुलन पत्र को देखकर सामान्य व्यक्ति को भी बैंक की वास्तविक स्थिति की जानकारी तुरन्त हो जायेगी ।

बैंकिंग क्षेत्र की सबसे जटिल समस्या बैंकिंग संरचना का पुर्नगठन करना, इसके अतिरिक्त बैंक के बीच प्रतिस्पर्धा की भावना को विकसित करना । इस समस्या को हल करने के लिए नरसिंहम् कमेटी ने बैंकिंग प्रणाली को चार भागों में विभाजित करने की सिफारिश की, प्रथम श्रेणी की बैंके अर्न्तराष्ट्रीय स्वभाव वाली बैंके होगी । दूसरी श्रेणी की बैंके राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करेंगी । तृतीय श्रेणी की बैंके क्षेत्रीय स्तर पर क्षेत्रीय समस्याओं के लिए कार्य करेंगी तथा चतुर्थ श्रेणी की बैंके क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक होगी जिनसे कि किसी प्रकार के लाभ की प्रत्याशा नहीं है, यह पूर्णतया ग्रामीण विकास कार्यो पर अपने संसाधनों का विनियोजन करेंगे तथा इन्हें समय पर सहायिक्यों केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रदान की जायेगी । इससे बैंकिंग संरचना सुद्वढ़ होगी ।

बैंकिंग प्रणाली ने बचत राशियों को जुटाने और अधिक व्यापक क्षेत्र के लिए अधिक संख्या में और ऋण कर्ताओं की विविध श्रेणियों के लिए ऋणउपलब्ध कराने में उल्लेखनीय प्रगति की है, फिर भी बैंक शाखाओं में तीव्र गति से विस्तार, बैंकिंग लेन-देन प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के लिए रियायती ब्याजदरों पर फुटकर ऋण देने और नियमन और नियंत्रण के क्षेत्र को बढ़ाने में उत्पन्न हुई अनेक समस्याओं के कारण बैंक की अपनी आन्तरिक व्यवस्था, ग्राहक सेवा और उसकी लाभप्रदता पर दबाव पड़ा है। इस बैंकिंग नीति में समेकन की प्रक्रिया पर बल दिया गया है । समेकन के कुछ महत्वपूर्ण पहलू है -

1- शाखा खोलने की लाभांश देने की नीति में ग्रामीण क्षेत्र में स्थान सम्बन्धी अन्तराल [दूरी] को पाटने पर जोर देने के साथ-साथ यह प्राविधान भी किया गया है कि अन्य क्षेत्र में शाखाएं तभी खोली जाएं जबकि वहां इसकी आवश्यकता और सक्षमता दिखायी देती हो।

2- प्रत्येक बैंक द्वारा अपने संगठन और विन्यास, प्रशिक्षण, आन्तरिक व्यवस्था, ग्राहक सेवा, ऋण प्रबन्ध, बैंक लेनदारियों की वसूली, उत्पादकता और लाभदायकता में सुधार लाने के लिए तैयार की गयी व्यापक कार्य योजनाओं का अनुपालन।

3- कम्प्यूटरीकरण और दूर संचार के क्षेत्र में नयी तकनीकी का चरण बद्ध रूप से शुरूआत, तथा

4- लाभप्रदता सम्बन्धी कुछ नीतियों को उदार बनाकर, लागतों को सीमित रखकर, बैंक की पूंजी को मजबूत बनाकर और उन्हें बैंक प्रभारी के सम्बन्ध में लचीलापन प्रदान करके वित्तीय सहायता पर बल। जहां इन सुधारों से बैंकिंग प्रणाली में पर्याप्त सहायता मिली है, वहीं बैंक की लेनदारियों में पर्याप्त वसूली में अनुकूल वातावरण न होने, बढ़ती हुई औद्योगिक रूग्णता तथा अदालतों के दावों को लागू कराने में लगने वाले लम्बे समय के कारण बैंक की लाभप्रदता पर निरन्तर दबाव बना हुआ है। उत्पादकता एवं दक्षता को बढ़ाने के अपने प्रयासों में बैंक में दृढ़ता लानी होगी। साथ ही बैंकिंग प्रणाली एवं अनुकूल वातावरण सम्बन्धी दबावों को कम करने के उपायों पर भी जोर दिया जा रहा है।

ग्रामीण क्षेत्र के कार्य क्षेत्र में ऋण प्रदान करने की प्रणाली में एक प्रमुख परिवर्तन चल रहा है। अनेक क्षेत्रगत अध्ययनों और व्यापक विचार विमर्श के बाद ग्रामीण क्षेत्र में

उधार देने,जमा संग्रहण और बैंक की देय राशि की वसूली में सुधार लाने के लिए सेवा क्षेत्र दृष्टिकोण अपनाया गया । जिसके अन्तर्गत निर्धारित गांव ग्रामीण और अर्द्धशहरी बैंक की प्रत्येक शाखा को आबंटित किये गये । इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत देश के सभी गांवों को जिनकी संख्या लगभग 6 लाख है , क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की 13000 शाखाओं सहित ग्रामीण और अर्द्धशहरी बैंक की लगभग 42000 शाखाओं के बीच आवंटित किए गयेहैं । सेवा क्षेत्र दृष्टिकोण शाखा और जिस पर वे अपनी ऋण योजनाओं को आधारित कर सकें । इस नए दृष्टिकोण से ग्रामीण ऋण की उत्पादकता एवं लाभदायकता में यथा सम्भव उल्लेखनीय सुधार होगा । अतः बैंक की वित्तीय कार्यक्षमता में सुधार लाने पर अधिक बल दिया जा रहा है एवं इससे आन्तरिक व्यवस्था, ग्राहक सेवा तथा सुरक्षित प्रशिक्षण में सुधार परिलक्षित हुए ।

बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा प्रारम्भ किए गये नवोन्मेषीकरण और उत्पाद एवं सेवाओं का विशाखीकरण, जिससे विनिमय विषयक संरचना को लागू करने के सम्बन्ध में रिजर्व बैंक द्वारा अपनाएं गये उदार दृष्टिकोण को प्रोत्साहन मिला वाणिज्य बैंकिंग उपकरण पट्टे पर देना जोखिम पूंजी, म्युच्युअल फण्ड, आवास वित्त जैसे अन्य विविध वित्तीय सेवाओं जैसी सेवा प्रदान करने के लिए अनेक वाणिज्य बैंक को सहायक शाखाएं खोलने की अनुमति दी गयी । जमा के लिए लोगों को प्रोत्साहित करके और ग्राहक ऋण,क्रेडिट कार्ड, और आवास वित्त से सम्बन्धित ग्राहक सेवाओं में सुधार के लिए बैंक ने अनेक नवोन्मेषीकृत योजनाएं प्रारम्भ की है । बैंक की नयी सहायक शाखाएं, सुसम्बद्ध और अधिकारी उन्मुख समूह के रूप में संगठित और कम्प्यूटर आधार से लेस है ।

राष्ट्रीयकरण के बीस वर्षों के अनुभव से सामाजिक आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप बैंकिंग प्रणाली के विकास की नीति की त्रुटियों के कारण बैंकिंग व्यवस्था पर दबाव पड़ने लगा है । राष्ट्रीयकरण के पहले दशक में मुख्य रूप से बैंक की नयी शाखाएं खोलने पर ध्यान दिया गया ताकि ग्रामीण क्षेत्र में भी बैंकिंग सुविधाओं का प्रसार हो । परन्तु नयी शाखाओं को खोलने का सिलसिला बिना किसी प्रकार की जांच पड़ताल एवं बुनियादी सुविधाओं के चालू रहा । इसका परिणाम यह हुआ कि कई ऐसी शाखाएं खुल गयीं जो आर्थिक दृष्टि से मजबूत नहीं थी । इससे बैंक की लाभदायकता एवं सुदृढ़ता पर गम्भीर प्रभाव पड़ा ।

क्षेत्रीय असन्तुलन को समाप्त करने के लिए बैंकिंग शाखाओं का विस्तार इतनी तीव्र गति से हुआ कि बैंक की लाभदायकता एवं सुदृढ़ता दोनों बहुत प्रभावित हुई । बैंकिंग व्यवसाय में ऐसे कर्मचारी नियुक्त किए गये जो कि सही तरह से प्रशिक्षित नहीं थे । ग्रामीण क्षेत्रों के बारे में यह बात और भी सटीक है कि बैंक अपने चालू खर्चों को एवं ऋण भुगतान के लिए आय उपार्जन करने में असमर्थ सिद्ध हो रहे हैं और इनकी स्थिति अच्छी नहीं है । गांवों में बैंकिंग व्यवस्था शहरी क्षेत्र से काफी भिन्न है । ग्रामीण क्षेत्र में ऐसे कर्मचारी नियुक्त किये जाने चाहिए - जिन्हें कि कृषि से सम्बन्धित सभी पहलुओं और ग्रामीण समस्याओं की जानकारी हो । इसके अतिरिक्त बैंक को कृषि विस्तार एजेंसियों के साथ गहरे तालमेल से कार्य करना चाहिए, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि कर्जदारों को दिये गए ऋण का प्रयोग आय उत्पादक कार्यों में हो । उस प्रकार से गांवों में बैंकिंग प्रणाली के विकास के सभी पहलुओं पर ध्यान देना होगा, परन्तु गांव में बैंकिंग प्रणाली के विकास के लिए बैंकिंग परिसम्पत्तियों के आवंटन के दृष्टिकोण में सुधार करना होगा । ग्रामीण क्षेत्र के बैंक के अधिकांश कर्मचारी शहरी

होते हैं, जिन्हें कृषि सम्बन्धी गतिविधियों एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं की जानकारी नहीं होती है ।

बैंकिंग गतिविधियों में इस प्रकार के विस्तार से ऋण के आवेदन पत्र की जांच ऋणों की स्वीकृति एवं भुगतान, स्वीकृति के पश्चात की कार्यवाही, ऋणों की जांच तथा वापसी आदि के मामलों में बैंकिंग कार्य क्षमता के स्तर में गिरावट आयी है । भारत में स्वीकृत ऋणों के मूल्यांकन की समस्या बहुत गम्भीर है। इस कारण से ओवेर ड्यू की समस्या गम्भीर रूप लेती जा रही है । इससे बैंक की सुदृढ़ता एवं लाभदायकता पर विपरीत प्रभाव पड़ा है । कृषि तथा अन्य प्राथमिकता क्षेत्र को दिये गए ऋणों में से लगभग 50 प्रतिशत राशि ही बैंक को वापस मिल पाती है । विभिन्न प्रकार के समाजार्थिक लक्ष्यों को पूरा करने की धुन के कारण बैंक की हालत दिन पर दिन और खराब होती जा रही है । पूर्व निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करने की धुन के कारण बैंकिंग व्यवसाय के कुछ बुनियादी सिद्धान्तों की अवहेलना की जाती है । परिणामस्वरूप ऋण की वापसी सन्तोषजनक ढंग से नहीं हो पाती है । अधिकांश वाणिज्य बैंक के लाभ पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । बैंक शाखाओं के तेजी से विस्तार का परिणाम यह भी हुआ कि शहरी और ग्रामीण दोनो क्षेत्रों में ग्राहकों को दी जाने वाली सेवाओं का स्तर गिर गया है । इसका एक कारण तो काम के बोझ में वृद्धि औरदूसरा कर्मचारियों के लिए प्रेरणा व प्रोत्साहन का अभाव । इस समस्या को हल करने की ओर कोई गम्भीर प्रयास नहीं किए गये हैं । पिछले कुछ वर्षों से वाणिज्य बैंकिंग प्रणाली की इन कमियों के प्रति जागरूकता बढ़ी है । इसलिए तेजी से विस्तार के बजाए मौजूदा स्थिति को मजबूत करने पर जोर दिया जा रहा है । रिजर्व बैंक की निगरानी में बैंक की वित्तीय स्थिति तथा लाभ को सुनिश्चित करने की दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं ।

वाणिज्य बैंके अपनी पूंजी में अधिक गुणवत्ता बढ़ाने तथा अपनी परिसम्पत्तियों के विस्तार करने रूपी दो धारी तलवार के बीच फंस गयी है । कुछ बैंके द्वितीयक बाजारों में अपने ऋण की समस्या को हल करने के लिए इसकी सुदृढ़ता व विश्वसनीयता में वृद्धि कर रहे हैं । विशेष परिसम्पत्तियों की जोखिम उठाने की उनकी सामान्य क्षमता के अनुसार जोखिम की स्थिति तथा बैंक की स्थिरता तथा जमाकर्ताओं के हित की सम्भावनाओं पर जोर दिया गया है ।

विषय के चुनाव का औचित्य

राष्ट्रीयकरण से पूर्व वाणिज्य बैंक अपनी परिसम्पत्तियों का अधिकांश भाग लाभदायक परिसम्पत्तियों में विनियोजित करते थे व उनके पास पर्याप्त मात्रा में तरल एवं लाभदायक परिसम्पत्तियों होती थी । आज के बदलते संदर्भ में वाणिज्य बैंक के समाजार्थिक लक्ष्यों के कारण देश में से असमानता व निर्धनता को हटाने के लिए अनेक योजनाएं संचालित की जा रही है, जिसके अंतर्गत प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को निम्न व्याज दर पर ऋण, बैभिन्नित व्याज दर योजना के अन्तर्गत 4 प्रतिशत की न्यूनतम ब्याज दर पर ऋण इत्यादि है । इन क्षेत्रों को दीर्घकालीन ऋण प्रदान किये जाने केकारण इनकी तरलता में कमी आती है। रियायती ब्याज दर पर ऋण प्रदानकिये जानेके कारण बैंक के कुल आगम मे कमी आती है, जिससे इनकी लाभदायता प्रभावित हुई है । इस प्रकार बैंक तरलता एवं लाभदायकता दोनों की कमी के विषम दुष्चक्र में फँस कर रह गए है ।

विकास की प्रक्रिया में सर्वाधिक योगदान बैंक का ही है । बैंक की लाभदायकता में कमी आने से बैंक की आर्थिक स्थिति निरन्तर कमजोर होती जा रही है । रिजर्व बैंक आफ इण्डिया द्वारा निरन्तर रिजर्व नगदी अनुपात एवं वैधानिक तरलता अनुपात में वृद्धि से बैंक की लाभदायक परिसम्पत्तियों में कमी आ रही है ।

अतः समस्या यह है कि वाणिज्य बैंक इतनी कम लाभदायकता पर किस प्रकार से अपने को दीर्घकालीन तक कुशलतापूर्वक संचालित कर पायेंगे, क्या वे नवीनतम तकनीकी, कम्प्यूटराइजेशन, व कुशलतम ग्राहक सेवा प्रदान कर पायेंगे क्या वे इतने कम लाभ मार्जिन पर ग्रामीण व अलाभकर क्षेत्रों में लगातार अपनी शाखाएं खोल पायेंगे, इत्यादि प्रश्नों का उचित उत्तर प्राप्त करने के लिए इस शोध-प्रबन्ध का प्रारूप निर्मित किया गया है । बैंक को इन कठिन परिस्थितियों के उबारने के लिए क्या प्रयास किए जाए· इस प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रयास किया गया है ।

इसके अतिरिक्त बैंकिंग परिसम्पत्तियों की संरचना में आए नवीन परिवर्तनों व आधुनिक नवोन्मेषीकरण की प्रवृत्तियों का अध्ययन करने के लिएइस शोध योजना का प्रारूप निर्मित किया गया है ।

इन सभी सन्दर्भों में वास्तविकता के अवयव प्राप्त किये गयें । बैंकिंग परिसम्पत्तियों के वितरण की वास्तविक स्थिति के आकड़ें रिजर्व बैंक द्वारा प्रकाशित विभिन्न मासिक व वार्षिक रिपोर्टों से प्राप्त करके इनके वितरण में

आए परिवर्तनों व उनका अर्थव्यवस्था पर एवं बैंकिंग वित्तीय स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ा है, को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है ।

अध्ययन के उद्देश्य

इस सम्पूर्ण अध्ययन का उद्देश्य वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों की संरचना व स्थिति को ज्ञात करके उनका बैंकिंग वित्तीय स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ा है, ज्ञात करना है। इसके अन्तर्गत बैंक परिसम्पत्तियों का वितरण व 1950 से 1990 तक की वित्तीय स्थिति को ज्ञात करके बैंक के कुल आय-व्यय व लाभदायकता का मूल्यांकन किया गया। विशेष रूप से इस अध्ययन के निम्न उद्देश्य हैं -

1- वाणिज्य बैंक परिसम्पत्तियों की स्थिति में आए परिवर्तनों का मूल्यांकन,

2- बैंकिंग परिसम्पत्तियों की स्थिति के कारण बैंक लाभदायकता में निरन्तर गिरावट को ज्ञात करना,

3- बैंक के नवोन्मेषीकरण कार्यकलापों का अध्ययन,

4- बैंक की वित्तीय स्थिति में सुधार के लिए सुझाव।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में वाणिज्य बैंक की परिसम्पत्तियों का वास्तविक तथ्यों के आधार पर वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत करना हमारे अनुसन्धान अभिकल्प का मुख्य उद्देश्य है। जिस शोध प्ररचना का उद्देश्य वर्णनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना होता है उसे हम वर्णनात्मक शोध अभिकल्प कहते हैं। वर्णनात्मक शोध प्ररचना का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए हम इनसे सम्बन्ध वास्तविक तथ्यों को अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनुसन्धान अभिकल्प को विकसित करते हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में विभिन्न स्रोतों तथा लेखकों की पुस्तकों, लेखों, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध ग्रन्थों, शोध संस्थानों द्वारा प्रस्तुत रिपोर्टों इत्यादि से इस विषय से सम्बन्धित पिछले साहित्य का संकलन किया गया। बैंकिंग परिसम्पत्तियों से सम्बन्धित आंकड़ों का अध्ययन करके वर्णनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। विश्लेषण में यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि वाणिज्य बैंक की परिसम्पत्तियों की संरचना में राष्ट्रीयकरण के पश्चात आए परिवर्तनों का बैंक की लाभदायकता पर क्या प्रभाव पड़ा है तथा वे इन सामाजार्थिक उद्देश्यों को कब तक लाभदायकता व कुशलता पूर्वक संचालित कर सकते हैं।

अतः अध्ययन का सम्पूर्ण भाग द्वितीयक सामग्री पर ही आधारित है। शोध पूर्ण रूप से रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा प्रकाशित रिपोर्टों का गहन अध्ययन करके 1951 से 1990 तक की वाणिज्य बैंक परिसम्पत्तियों व बैंक के कुल आय व्यय का विवरण प्रस्तुत किया गया। रिजर्व बैंक द्वारा प्रकाशित निम्न रिपोर्टों से

आंकड़ों का संकलन किया गया -

(1) रिजर्व बैंक आफ इण्डिया बुलेटिन (मासिक रिपोर्ट)

(2) रिजर्वबैंक आफ इण्डिया वार्षिक रिपोर्ट

(3) स्टेटिस्टिकल टेबिल्स रिलेटिंग टू बैंक्स इन इण्डिया ।

(4) रिपोर्ट आन करेन्सी एण्ड फायनेंस

(5) ट्रेण्ड एण्ड प्रोग्रेस आफ बैंकिंग इन इण्डिया ।

इसके अतिरिक्त रिजर्व बैंक द्वारा समय-समय पर प्रकाशित बैंकिंग परिसम्पत्तियों से सम्बन्धित विभिन्न रिपोर्टों का विस्तृत अध्ययन करके इस समस्त सामग्री की विवेचना करके निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया ।

सम्भावित परिकल्पनाएं

प्रस्तुत विषय पर अध्ययन के लिए दिये गये उद्देश्यों के प्रकाश में निम्न परिकल्पनाएं निर्मित की गयी -

- वर्तमान समाजार्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दिये जाने वाले रियायती ब्याज दर के ऋण से बैंक परिसम्पत्तियों के जोखिम में वृद्धि होती हैं तथा उनकी लाभदायकता में कमी आती है ।

- बैंक की खराब होती वित्तीय स्थिति के लिए निरन्तर बढ़ते रिजर्व नगदी अनुपात एवं वैधानिक तरलता अनुपात जिम्मेदार है ।

- वाणिज्य बैंक द्वारा नवोन्मेषीकरण कार्य कलाप द्वारा उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकता है ।

द्वितीय अध्याय - सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

वाणिज्य बैंक की वे सम्पत्तियाँ जो जनता की देयताएँ होती हैं, परिसम्पत्तियाँ कही जाती है । एक बैंक की मानक परिसम्पत्तियों में ओवर ड्राफ्ट ऋण, बिलों की कटौती, विनियोग तथा माँग और अल्पसूचना पर ऋण आते हैं, इसके अतिरिक्त बैंक नकदी भी रखते हैं, जो उनकी तरलता का मुख्य आधार है । बैंकिंग परिसम्पत्तियों का वितरण बैंकिंग सिद्धान्तों तथा मुद्रा बाजार की संरचना देश के सामान्य व्यावसायिक तथा औद्योगिक विकास के आधार पर होता है । वाणिज्य बैंक की स्थायी नकदी बुनियादी रूप में केन्द्रीय बैंक द्वारा निर्धारित की जाती है ।

वाणिज्य बैंक को एक ऐसी व्यवसायिक फर्म के समान माना जाता है जो तरलता एवं सुरक्षा को बनाए रखते हुए सन्तोषजनक लाभ प्राप्त करना चाहती हैं । इसके साथ ही बैंक पर देश की अर्थ व्यवस्था के सभी क्षेत्रों को साख की आपूर्ति का दायित्व आ जाता है । जनता द्वारा बैंकिंग व्यवस्था, बैंक के ऋण चुकाने की योग्यता, तरलता अथवा ऋणों की सुरक्षा पर प्रश्न चिन्ह लगाने का कोई कारण नहीं होना चाहिए और जनता का बैंकिंग व्यवस्था में पूरा विश्वास होना चाहिए ।

वाणिज्य बैंक के संसाधन मुद्रा बाजार की माँग के अनुसार व्यवस्थित किए जाते हैं । मुद्रा बाजार के मुख्य उधार प्राप्त करने वाले क्षेत्र हैं, संगठित उद्योग, व्यापार (आन्तरिक व विदेशी), सट्टेबाज, उपभोगकर्ता, कृषि क्षेत्र और सरकार आदि । बैंक की परिसम्पत्तियों में तरल एवं लाभदायक परिसम्पत्तियों के संसाधनों के वितरण के लिए कोई निश्चित सीमा रेखा निर्धारित नहीं की जा सकती । क्योंकि अर्थव्यवस्था की गतिविधियों से बैंकिंग प्रणाली बहुत अधिक प्रभावित होती है ।

भारत वर्ष में 1969 में 14 बड़ी वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद सामाजार्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को ऋण देने के कार्यक्रम चलाए गये । इन ऋणों पर ब्याज बहुत कम होने से बैंक की लाभदायकता प्रभावित हुई । इस प्रकार के ऋणों में जोखिम की सम्भावना बहुत अधिक रहती है, परन्तु इसके फलस्वरूप भारतीय बैंकिंग व्यवस्था अमीरों की संस्था के बजाए सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन का एक साधन बन गयी है । इस विचारधारा का मुख्य लक्ष्य अर्थव्यवस्था को सही दिशा देना था । अतः आज के राष्ट्रीकृत बैंक की ऋण नीति सामाजिक प्राथमिकता के आधार पर निर्धारित होती है । इस प्रकार राष्ट्रीयकरण के पश्चात ऋण नीति का प्रबन्धन सामाजिक न्याय एवं समन्वित विकास को ध्यान में रखते हुए किया गया ।[2]

परिसम्पत्ति प्रबन्धन का तात्पर्य विभिन्न विनियोग विकल्पों के बीच कोषों का आवंटन है । वाणिज्य बैंकिंग में इस शब्द का प्रयोग नकदी, प्रतिभूति विनियोग, ऋणों और दूसरी बैंकिंग परिसम्पत्तियों के बीच कोष वितरण के लिए किया जाता है । परिसम्पत्ति प्रबन्धन के विशेष क्षेत्र में मुख्य समस्या जमाओं और पूंजी कोषों का नकदी एवं आय उपार्जित करने वाली परिसम्पत्तियों में विनियोजन के मध्य सामंन्जस्य स्थापित करने से है । इससे बैंकिंग के मूलभूत सिद्धान्त तरलता एवं लाभदायकता के मध्य सामन्जस्य स्थापित करने में सहयोग प्राप्त हो सकता है ।

बैंकिंग नियमन समिति 1972 की एक रपट के अनुसार बैंकिंग व्यवस्था में निर्माणधर्मी परिवर्तन आए हैं जोकि आवश्यक रूप से समुदायों की बचतों को गतिशीलता प्रदान करके अर्थव्यवस्था के विभिन्न भागों में साख के प्रवाह का विवेकशील वितरण

---

2 See. "The Technical studies prepared for the Banking commission" Vol. II. Restructuring of the Bankers in the public sector by K.B. Chore. p.p. 14.-15. R.B.I. Bombay. 1972.

करते हैं। परिसम्पत्ति प्रबन्धन बैंक की तरलता एवं ऋण चुकाने की क्षमता को प्रभावित करता है, जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में वित्तीयन प्रभावित होता है।[3] परिसम्पत्तियों का वितरण तथा भाग बैंक की दायित्व क्षमता को संचालित करते हैं, और अर्थव्यवस्था की आवश्यकता के अनुसार पुर्नवित्तीयन की आवश्यकता को पूरा करने में अपना सहयोग देते हैं। इस प्रकार से परिसम्पत्तियों का प्रबन्धन न केवल बैंकर तथा शेयर धारकों के लिए बहुत अधिक महत्वपूर्ण है बल्कि जमाकर्ताओं तथा सामान्य जनता के लिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि एक बैंक के दीर्घकाल तक कुशलतापूर्वक संचालित होने के लिए लाभदायकता अनिवार्य है।

एक बैंक के पास पर्याप्त तरलता का तात्पर्य है कि वह मांग होने व आवश्यकता पड़ने पर अपने ग्राहक को तुरन्त भुगतान कर सके। बैंक के लिए लाभदायकता भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह बैंक की कुशलता को निर्धारित करते हैं। अतः समस्या यह है कि तरलता ऋणों की सुरक्षा तथा बैंक की लाभदायकता का निर्धारण किस प्रकार किया जाए। अतः परिसम्पत्तियों के कुशलतम वितरण का मुख्य लक्ष्य विभिन्न प्रकार की परिसम्पत्तियों का वितरण इस प्रकार से करना है कि बैंक इससे पर्याप्त मात्रा में तरलता सुरक्षा एव लाभदायकता के लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

---

3. See "Alfred W. Stonier and Douglas C.Hague, "Economic theory " P. 374, 1976 . Printed in orient langmans Private Ltd., Delhi.

बैंक के प्रबन्धन में मुख्य समस्या तरलता एवं लाभदायकता के मध्य संघर्ष होना है । जहां बैंक प्रबन्धक हमेशा लाभदायक परिसम्पत्तियों ऋणों, विनियोग का विनियोग चाहता है, वहीं ये परिसम्पत्तियां नकदी को घटाकर तरलता को कम करती है। इनका वितरण समुचित प्रकार से हो, ही वाणिज्य बैंक की मुख्य समस्या है । इनका वितरण करने के लिए विभिन्न विद्वानों ने एक आदर्श सीमा स्थापित करने का प्रयास किया है ।

भारतीय बैंकिंग कमीशन 1972 के अनुसार "[4] इसकी आदर्श सीमा इस प्रकार है :-

नकदी	10 प्रतिशत
मांग - मुद्रा	5 प्रतिशत
बिल	15 प्रतिशत
विनियोग	30 प्रतिशत
अग्रिम	40 प्रतिशत

इसे क्राउथर [5] ने "ऐन आउटलाइन आफ मनी " में इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

नकदी	11 प्रतिशत
बिल्स	15 प्रतिशत
माँग मुद्रा	7 प्रतिशत

4. See "Technical studies Prepared for the Banking commission, Volume II, 1972, R.B.I. Bombay. Chapter I, 'Behaviour of a commercial Banks main Ratio" Page.7.

5. See-Crowther, "An outline of Money.P.42, Published in 1972 Universal Book stall Delhi by special arrangement with The

विनियोग	12 प्रतिशत
अग्रिम	55 प्रतिशत

परन्तु एक बैंक हमेशा अपनी परिसम्पत्तियों के हस्तान्तरण पक्ष से ही सम्बन्धित नहीं होता, बल्कि अपनी तरलता की भी रक्षा करता हैं। बैंक के समक्ष समय-समय पर हमेशा चुनाव की समस्या रहती हैं। ऋणों की समयावधि जितनी ही कम होगी, तरलता की मात्रा उतनी ही अधिक होगी, लेकिन उसकी आय उत्पन्न करने की क्षमता उतनी ही कम होगी, परन्तु यदि ऋण लम्बी अवधि के लिए है तो तरलता तो कम होगी, लेकिन आय अधिक उत्पन्न होगी। अत: एक बैंक अपनी परिसम्पत्तियों का वितरण इस प्रकार से करते हैं कि बैंक तरलता को बनाए रखने के साथ ही पर्याप्त मात्रा में आय भी उत्पन्न कर सके। तरलता एवं लाभदायकता में समायोजन के दृष्टिकोण से निम्न संरचना[7] तैयार की गयी -

बैंकिंग परिसम्पत्तियों का वितरण

तरलता	ऋण की अवधि	परिसम्पत्ति	उधार प्राप्त कर्ता	प्रतिवर्ष की अनुमानित दर
	-	नकदी	-	-
	1 से 14 दिन	मांग एवं लघु सूचना पर मुद्रा	डिस्काउंट गृह	4%
	3 माह जो कि नियमित होता है	बिल्स	सरकारी और निजी क्षेत्र	6% 7%

7. See " Supply and Demand for mongy an Equilibrium Analysis", by S.C. Patnaik , Page 132, Pragati Prakashan, Meerut, 1984.

बाजार योग्य लेकिन कम तरलता वाली (निम्न कीमत पर बेची गयी)	विनियोग	सरकार	9%
6 महीने तथा और अधिकअवधि के लिए	अग्रिम	व्यक्ति क्षेत्र तथा व्यापारिक फर्मे	10% 12%
-	बैंक भवन	-	

लाभदायकता

इसके आधार पर व्यापारिक बैंक अपनी परिसम्पत्तियों का वितरण करते समय तरलता एवं लाभदायकता दोनों स्थितियों के मध्य सामञ्जस्य बनाए रखता है। एक बैंक को अपनी विश्वसनीयता बनाए रखने तथा ग्राहकों को आकर्षित करने व उनकी मांग पर मुद्रा उपलब्ध कराने के लिए तरलता बनाएं रखना आवश्यक होता है, परन्तु अधिक मात्रा में तरलता बनाए रखने से बैंक की लाभदायकता कम हो जाती है। लाभदायकता में कमी आने से बैंक को अपना कार्य ठीक ढंग से चलाने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है, अतः बैंकिंग परिसम्पत्तियों को इस प्रकार से रखा जाना चाहिए कि तरलता एवं लाभदायकता के मध्य स्वस्थ सन्तुलन स्थापित हो सके। इस समस्या के समाधान के लिए इस प्रकार का प्राविधान होना चाहिए कि उचित समय पर पर्याप्त मात्रा में कोष उपलब्ध हो सके।

बैंक नकदी का स्थान लीवर की भाँति होता है जिससे कि सम्पूर्ण बैंकिंग व्यवस्था संचालित होती है ।

वाणिज्य बैंक के परिसम्पत्ति पिरामिड की संरचना [6]

		प्रतिशत
आय उपार्जक परि-सम्पत्तियाँ	अग्रिम	40
	विनियोग	20
तरल परिसम्पत्तियाँ	बिल्स	18
	माँग पर मुद्रा	12
	नकदी	10

6. See. "Monetery Economics" Institutions Theory and policy by S.B. Gupta S. Chandra & Co. Delhi, Page. 220.

प्रस्तुत काल्पनिक आदर्श[1] सारणी में एक वाणिज्य बैंक जिसकी कुल परिसम्पत्ति 5 लाख डालर है, के काल्पनिक ढांचे में परिसम्पत्तियों के प्रबन्ध की समस्याओं को दर्शाया गया है। वाणिज्य बैंक इस काल्पनिक सीमा के अन्तर्गत ही अपनी परिसम्पत्तियों के वितरण का प्रयास करते हैं। यह आदर्श सीमा परिकल्पना निम्न है -

वाणिज्य बैंक के परिसम्पत्ति संरचना की आदर्श परिकल्पना

	कोष की मात्रा (डालर में)	परिसम्पत्ति का प्रतिशत
नकदी परिसम्पत्तियों		
नोट और सिक्के	5881	1.2
रिजर्व बैंक के पास नकदी	30156	6.0
घरेलू बैंक में खाते	9757	2.0
एकत्रण के क्रम में नकदी	34255	6.8
कुल नकदी परिसम्पत्तियों	79949	16.0
प्रतिभूतियों		
सरकारी बिल्स	4609	0.9
वाण्ड्स जो एक वर्ष में परिपक्व होंगे	5943	1.2
नोट और बाण्ड्स जो 5 वर्ष के बाद परिपक्वहोंगे	20271	4.1

1. See" Commercial Banking " by Reed/Cotter/Gill/Smith Page 99, Chapter Asset management. Published by Prentice

नोट और बाण्डस जो 5 वर्ष के बाद परिपक्व होंगे।	4330	0•9
रिजर्व बैंक के प्रमाण पत्र	2051	0•4
राज्यों के दायित्व	64058	12•8
दूसरी प्रतिभूतियां	4601	1•9
कुल प्रतिभूतियां	110863	22•2
ऋण :		
रिजर्व बैंक के कोष एवं पुर्नविनिमय समझौते	14449	2•9
व्यापारिक एवं औद्योगिक ऋण	104563	20•9
कुल ऋण	4368	•9
प्रतिभूतियों को खरीदने एवं ले जाने के लिए ऋण	8559	1•7
(अ) बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं को ऋण	20901	4•2
वास्तविक स्टेट ऋण	66240	13•2
वाणिज्यक बैंक को ऋण	4821	1•0
ग्राहक किस्त ऋण	41553	8•3
सभी दूसरे ऋण	23547	4•7

1. Percentages of total assets are approximately the same as those for the large commerical Banks Outside NewYork city reporting weekly, See 'Federal Reserve Bulletin' Nov.1972 P.P.A. 27-30.

कुल ऋण	289001	57·8
दूसरी परिसम्पत्तियां		
अनियमित सहायताओं में विनियोग	931	·2
बैंक के भवन और दूसरी परिसम्पत्तियां	19256	3·8
कुल दूसरी परिसम्पत्तियां	20187	4·0
कुल परिसम्पत्तियां	500,000	10000

परिसम्पत्ति प्रबन्धन

बैंक कोषों का विभिन्न प्रकार की परिसम्पत्तियों के वर्गीकरण का निर्धारण विभिन्न नियमों और कानूनों द्वारा होता है । इसे इस प्रकार से व्यवस्थित किया जाता है कि उसने अधिक मात्रा में तरलता हो तथा वे पर्याप्त मात्रा में आय भी उत्पन्न कर सके।अत: परिसम्पत्तियों के प्रबन्धन के लिए तरलता को बनाए रखने तथा तरलता एवं लाभदायकता में समायोजन बनाए रखने की आवश्यकता होती है । वाणिज्य बैंक इसका निर्धारण करते समय सामान्यतया निम्न दृष्टिकोंण अपनाती हैं -

1- कोषों का संघ दृष्टिकोंण -

सभी वाणिज्य बैंक के कोषों में उपलब्ध कोष वाणिज्य बैंक द्वारा विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध कराये जाते हैं, जिसमें मांग जमाएं, बचत जमाएं,

समय जमाएं तथा पूंजी कोष मुख्य है । कोषों के मंच को उपयोग करने का सबसे अच्छा तरीका है कि सभी कोषों को साथ-साथ रखना चाहिए । कोषों को परिसम्पत्तियों में विनियोग के लिए उपयोग में लाया जाना चाहिए । ऋणों सरकारी प्रतिभूतियां, नकदी इन कोषों में धन को विनियोजित करना उपयुक्त होता है ।

परिसम्पत्तियों के आवंटन के दृष्टिकोण से मांग जमाओं को तीन भागों में बांटा जाता है, जिसका एक भाग प्राथमिक रिजर्व, अर्थात नकदी में रखा जाता है , जबकि दूसरा भाग द्वितीयक रिजर्व अर्थात बिलों एवं मांग - मुद्रा में लगाया जाता है और तीसरा भाग विभिन्न प्रकार की अल्पकालीन मध्यम-कालीन एवं दीर्घकालीन ऋणों में विनियोजित कर दिया जाता है । वाणिज्य बैंक बचत जमाओं को चार भागों में बांटते हैं , जिसका एक भाग प्राथमिक रिजर्व अर्थात नकदी के रूप में रखते हैं, दूसरा भाग द्वितीयक रिजर्व अर्थात मांग - मुद्रा एवं बिलों में लगाते हैं, जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर उसे तुरन्तनकदी में परिवर्तित किया जा सके । बचत जमाओं का तीसरा भाग मध्यम एवं दीर्घकालीन ऋणों में विनियोजित किया जाता है जिससे कि परिसम्पत्तियों में तरलता के साथ -साथ लाभदायकता को भी बनाएं रखा जा सके तथा बचतजमाओं का चौथा भाग सुरक्षा के दृष्टिकोण से विभिन्न प्रकार की सुरक्षित प्रतिभूतियों में विनियोजित किया जाता है । समय जमाओं का एक भाग प्राथमिक रिजर्व अर्थात् नकदी में लगाया जाता है, दूसरे भाग को ऋणों में विनियोजित करके तरलता व लाभदायकता

में समायोजन स्थापित किया जाता है जबकि तीसरा भाग सुरक्षा की दृष्टि से विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों में विनियोजित किया जाता है । बैंक कोषों में पूंजी स्थिर कोष है, अत: पूंजीगत परिसम्पत्तियों का आबंटन भी तीन भागों में किया जाता है, इसका एक भाग लाभदायकता के दृष्टिकोण से विभिन्न प्रकार के मध्यम कालीन एवं दीर्घकालीन ऋणों में विनियोजित किया जाता है । जबकि दूसरा भाग विभिन्न प्रकार की परिसम्पत्तियों में सुरक्षा के दृष्टि से विनियोजित किया जाता है । पूंजी कोष का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आबंटन इन परिसम्पत्तियों का स्थिर परिसम्पत्तियों में आबंटन है । अत: स्पष्ट है कि कोषों के संघ दृष्टिकोण से परिसम्पत्तियां का आबंटन करते समय कोषों के स्रोत एवं विशेषताओं के आधार पर ही उनका आबंटन किया जाय जिससे कि वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियां बैंकिंग सिद्धान्तों का पालन करते हुए तरलता, लाभदायकता एवं सुरक्षा की दृष्टि से कुशलतापूर्वक कार्य कर सकें ।[9]

प्राथमिक रिजर्व

बैंक विभिन्न प्रकार के कोषों की स्थापना के लिए नकदी को प्रायिकता देते हैं । इस श्रेणी की परिसम्पत्तियों को कार्यात्मक श्रेणी में रखते हैं, क्योंकि प्राथमिक नकदी की पर्याप्तता, बैंक में जनता के विश्वास को बनाए रखती है । वाणिज्य बैंक के लिए प्राथमिक नकदी को रखना इसलिए महत्वपूर्ण है तथा वे इसे ताकि जमा कर्ताओं तथा ऋण चाहने वाले के लिए मांग करने पर तुरन्त तरल रूप में उपलब्ध करायी जा सके । यह वाणिज्य बैंक की तरलता का प्राथमिक

---

9. See. " Commercial Banking" by Oliver G. Wood, Jr. Univ. of South Cofolina D.V. n Nastrand Co., New York, page. 206. 1982.

स्रोत है । परन्तु बैंक को इससे किसी प्रकार की आय प्राप्त नहीं होती है ।

द्वितीयक रिजर्व :

कोषों के आंबटन के लिए द्वितीय प्राथमिकता और नकदी तरल परिसम्पत्तियों अर्थात द्वितीयक नकदी, जो कि बैंक की आय उपार्जक क्षमता में वृद्धि करते हैं ,से होता है । द्वितीयक रिजर्व वाणिज्य बैंक की सबसे अधिक आय उपार्जित करने वाली तरल परिसम्पत्ति है , जो कि बहुत कम नुकसान के जोखिम पर बहुत शीघ्रता से नकदी में परिवर्तित की जा सकती है । ये वे परिसम्पत्तियाँ हैं जो कि विनियोग पोर्टफोलियो तथा ऋण के खाते में कुल अन्तर बनाए रखते हुए रिजर्व रखते हैं ।

द्वितीयक रिजर्व साधारणतया लाभदायकता एवं तरलता लक्ष्य दोनों को प्राप्त करने में सहायक होते हैं । यह उन कोषों के लिए तो स्वर्ग होता है, जिनसे कि बैंक को तुरन्त आय प्राप्त होती है । द्वितीयक रिजर्व अप्रत्यक्ष रूप से उन तत्वों द्वारा निर्धारित होता है जो कि जमाओं और ऋणों को परिवर्तन शील बनाते हैं ।

ऋण पोर्टफोलियो :

कोषों के संघ दृष्टिकोण में बैंक तीसरी प्राथमिकता ऋण परिसम्पत्ति को देते हैं । प्राथमिक और द्वितीयक रिजर्व के आवंटन के पश्चात बैंक अपने ग्राहकों को ऋण देने के लिए स्वतन्त्र होते हैं । वास्तव में यह बैंक की सबसे अधिक लाभ उपार्जित करने वाली परिसम्पत्ति है। प्राय: कुल बैंक परिसम्पत्ति में ऋण सबसे

अधिक भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं, तथा ऋणों से प्राप्त आय बैंक के लाभ में सबसे अधिक भाग होता है परन्तु ऋण परिसम्पत्ति से ही बैंक को सबसे अधिक जोखिम भी होता है।

परिसम्पत्ति प्रबन्धन के लिए परिसम्पत्ति का आबंटन माडल
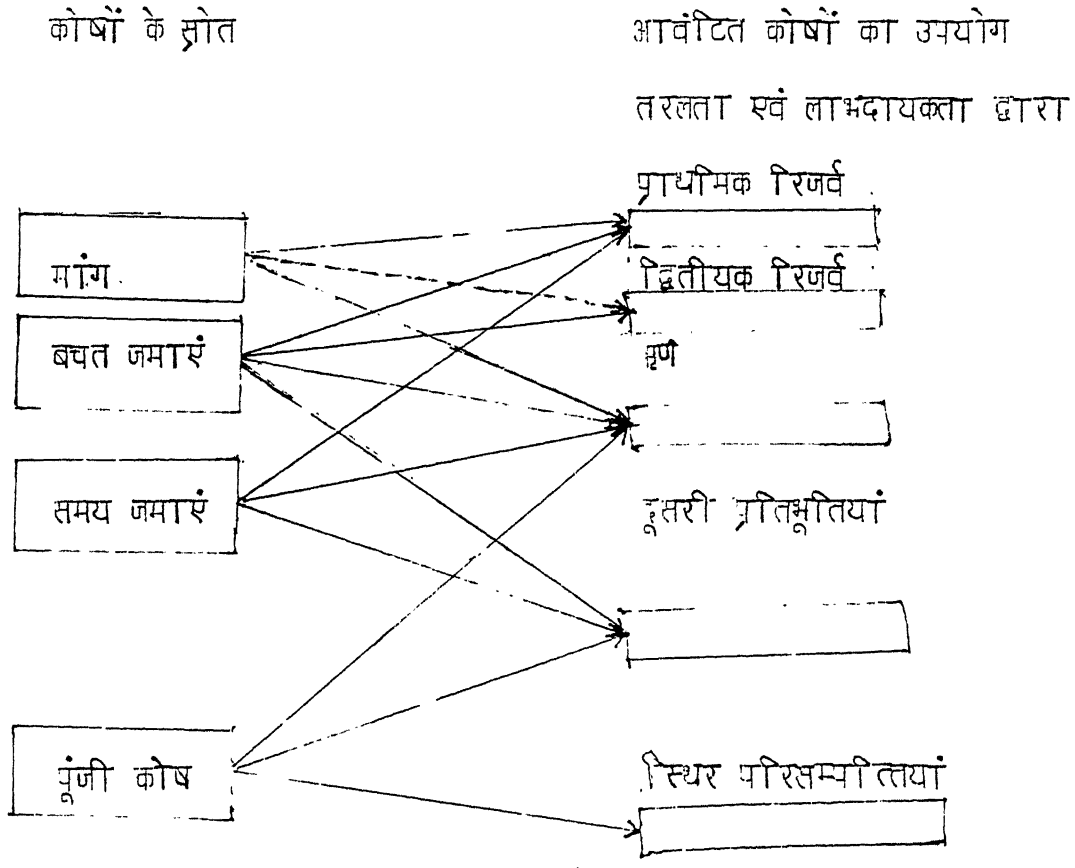
विनियोग पोर्टफोलियो

विनियोग पोर्टफोलियो को कोषों में अन्तिम प्राथमिकता प्रदान की जाती है। ये कोष ग्राहकों की साख आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए अपेक्षाकृत उच्च श्रेणी की प्रतिभूतियों के आधार पर लम्बी अवधि के लिए विनियोग किए जाते हैं। विनियोग पोर्टफोलियो बैंक को अधिक आय प्रदान करते हैं और द्वितीयक रिजर्व प्रत्याभूति को परिपक्वता के क्रम में रखते हैं।

इस प्रकार से बैंक के परिसम्पत्ति आबंटन माडल के अन्तर्गत बैंक के संसाधनों की तरलता आवश्यकताओं के लिए कोषों के स्रोत एवं उनके उपयोग की सैद्धान्तिक विवेचना प्रस्तुत की गयी है। परन्तु बैंक समय-समय पर अपनी आवश्यकता के अनुसार इसमें परिवर्तन करते रहते है।

वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों को हम मोटे तौर पर पाँच भागों में विभाजित कर सकते हैं।

1- नकदी

2- माँग-मुद्रा

3- विनियोग

4- बिल्स

5- ऋण

नकदी

तरल परिसम्पत्तियों में नकदी सबसे आदर्श परिसम्पत्ति है । वाणिज्यिक बैंक को अपने ग्राहकों तथा अन्य बैंकों द्वारा नकदी की माँग करने पर तुरन्त भुगतान करने के लिए अपनी कुल परिसम्पत्तियों का एक भाग नकदी के रूप में रखना आवश्यक होता है । इस प्रकार कार्यकारी बैलेन्सकी आवश्यकता की पूर्ति तथा ऋणों व दूसरे बहुत से व्ययो को पूरा करने ﴾जिसमें वेतन, मजदूरी तथा सेवाएं सम्मिलित हैं﴿ के लिए नकदी की आवश्यकता पड़ती है । अत: तरलता के क्रम में इसे पहले स्थान पर रखते हैं ।

आरक्षित नकदी निधि अनुपात

/ सभी वाणिज्यिक बैंक रिजर्व बैंक के सदस्य होते हैं अत: सभी बैंक अपनी कुल परिसम्पत्तियों, ﴾कुल माँग, समय और बचत जमाओं﴿ का कुछ निश्चित प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास नकदी के रूप में रखते हैं । अत: रिजर्व नकदी की मात्रा का निर्धारण बैंक के आकार, वर्गीकरण तथा जमाओं के आधार पर निर्धारित होता है सभी सदस्य बैंकों का वैधानिक रिजर्व अनुपात सरकार द्वारा व केन्द्रीय बैंक के निर्देशक मण्डल द्वारा निर्धारितकिया जाता है । अपनी सभी सीमाओं के साथ बैंक के गवर्नर तथा उनके निर्देशक मण्डल को इसमें कुछ परिवर्तन करने का अधिकार प्राप्त है रिजर्व बैंक के गर्वनर एवं निर्देशक मण्डल वाणिज्य बैंक को चयनात्मक साख नियंत्रण के अन्तर्गत कुछ विशेष क्षेत्र में ही साख को प्रवाहित करने की आज्ञा दे सकते हैं । रिजर्व बैंक किसी भी स्थान पर वाणिज्य बैंक को अपनी शाखा बैंकिंग अधिनियम के अनुसार

स्थापित करने की अनुमति प्रदान कर सकता है । इसके लिए वाणिज्य बैंक को अपनी कुल परिसम्पत्तियों का कुछ निश्चित प्रतिशत जो कि सामान्यतया 5 से 15 प्रतिशत के बीच होता है रिजर्व नकदी के रूप में रखना अनिवार्य कर देता है । केन्द्रीय बैंक के निर्देशक मण्डल को इस वैधानिक नकदी को 30 दिन के लिए अनुलम्बित करने का अधिकारप्राप्त है। इस नकदी परिसम्पत्ति से वाणिज्य बैंक को किसी प्रकार की आय प्राप्त नही होती है, लेकिन रिजर्व बैंक नकदी निधि अनुपात वाणिज्य बैंक की विश्वसनीयता को बनाए रखते हैं तथा बैंक के महत्वपूर्ण सुरक्षा कवच के रूप में कार्य करते हैं ।

भारतीयं रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के पास देश के सभी अनुसूचित वाणिज्य बैंक को अपनी कुल जमाओं का 5 प्रतिशत से 15 प्रतिशत नकदी के रूप में रखना होता है । इसमें समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है । बैंक के रिजर्व नकदी निधि अनुपात से बैंक की साख सृजन क्षमता प्रभावित होती है । अतः, रिजर्व नकदी निधि अनुपात का प्रयोग मुद्रा प्रसार को नियंत्रित करने के एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में भी किया जाता है , क्योंकि इसमें थोड़ी सीभी वृद्धि बैंक की साख-सृजन क्षमता को बहुत कम और थोड़ी सी भी कमी बैंक के साख सृजन क्षमता को कई गुना बढ़ा देती है । इस प्रकार रिजर्व बैंक नकदी के बढ़ने पर अर्थव्यवस्था में कुल साख के प्रवाह में कमी तथा आरक्षित नकदी निधि अनुपात के कम होने पर देश में मुद्रा का प्रवाह बढ़ जाता है । रिजर्व नकदी निधि अनुपात में कमी से वाणिज्य बैंक की साख सृजन क्षमता में वृद्धि होती है । जिससे वाणिज्य बैंक की लाभदायकता में वृद्धि होती है । वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों में नकदी सबसे अधिक महत्वपूर्ण ढंग से जमा दायित्व को नियंत्रित करते हैं ।

रिजर्व नकदी निधि अनुपात बैंकिंग व्यवसाय में तरलता एवं सुरक्षा के दृष्टिकोण से प्रारम्भ किया गया था, परन्तु 1970 के पश्चात नकदी निधि अनुपात में लगातार वृद्धि की प्रवृत्ति दिखायी पड़ रही है । अतः वर्तमान समय में अर्थव्यवस्था में इसका प्रयोग साख नियंत्रण के एक प्रमुख उपकरण के रूप मे किया जाने लगा है । इससे वाणिज्य बैंक की लाभदायकता काफी प्रभावित हुई है इस प्रकार से रिजर्व नकदी निधि अनुपात अपने मूलभूत सिद्धान्त तरलता दृष्टिकोण से हटकर साख के नियंत्रण के एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में रह गयी है ।

वाणिज्य बैंकिंग व्यवसाय में तरलता की अधिकता के कारण बैंक साख विस्तार प्रभावित हुआ है, इससे मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई है ।

वाल्ट नकदी

वाल्ट नकदी शब्द, सिक्के, करेन्सी की मात्रा, जोकि बैंक अपने आन्तरिक कोष में रखते हैं, के लिए प्रयोग होता है । यद्यपि इसे वैधानिक रिजर्व निधि अनुपात का एक भाग माना जाता है । यहतरल परिसम्पत्ति का सबसे आदर्श प्रतिरूप है । इसका प्राविधान बैंक के जमाकर्ताओं द्वारा नकदी की माँग करने पर उनको तुरन्त नकदी की आपूर्ति करने के उद्देश्य से किया गया है । यह बैंकिंग व्यवस्था में जनता का विश्वास, सुरक्षा एवं सुदृढ़ता बनाए रखता है । इससे जनता का बैंक पर विश्वास बना रहता है कि जब वे माँग करेगें, बैंक उन्हें तुरन्त मुद्रा उपलब्ध करायेगी । वास्तव में भारत में नकदी की माँग मौसमी होती है, अतः विभिन्न व्यवसायी निश्चित समय में ही नकदी की माँग करते हैं । बैंक प्रबन्धक सुरक्षा के

दृष्टिकोण से इसे कम से कम रखने काप्रयास करता है क्योंकि इसके रख-रखाव एवं संरक्षण की कीमत अपेक्षाकृत ऊँची होती है । इस नकदी सन्तुलन से बैंक को किसी प्रकार की आय प्राप्त नहीं होती है ।

अल्पविकसित देशों में अधिकांश लोग चेक के प्रयोग के स्थान पर अपेक्षाकृत रूप से नकदी की अधिक मात्रा का प्रयोग करते हैं । वाल्ट नकदी की माँग प्रत्याशित घटनाओं के आधार पर बढ़ती है, जैसे फसल की कटाई के मौसम में जबकि मजदूरों को मजदूरी देने के लिए नकदी की आवश्यकता पड़ती है, त्यौहारों के अवसर पर व्यापारी एवं उपभोक्ता सामान्य नकदी से अधिक मात्रा में अपने पास रखते हैं । बैंक की स्थिति भी नकदी सन्तुलन के निर्धारण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । बैंक को अपने जमाकर्ताओं से अच्छे सम्बन्ध बनाने के लिए भी अपने पास पर्याप्त मात्रा में नकदी रखना पड़ता है, जिससे बैंक पर उसके ग्राहकों का विश्वास बना रहे । वाल्ट नकदी एक ओर जहाँ तरलता के दृष्टिकोण से सर्वश्रेष्ठ परिसम्पत्ति मानी जाती है वहीं बैंकिंग के आधारभूत लक्ष्य लाभदायकता के दृष्टिकोण से इसे निम्नतम् स्तर पर रखा जाता है ।

माँग-मुद्रा

माँग-मुद्रा वाणिज्य बैंक द्वारा डिस्काउण्ट गृहों को 1 से 15 दिन के लिए अल्प सूचना पर प्रदान किया जाने वाला ऋण है । इस पर सामान्यतया वह अधिक मात्रा में वस्तुएं खरीद सके । लोहे इत्यादि के व्यापारी अधिकांशतया गर्मियों के मौसम में ऋण की माँग करते हैं, क्योंकि इस मौसम में वहनीयता आसान है।

इसपर4 प्रतिशत की निम्नतम् व्याज दर प्रदान की जाती है । कुल बैंकिंग परिसम्पत्तियों का 7 प्रतिशत से 12 प्रतिशत भाग मांग — मुद्रा में होता है । जमाकर्ताओं द्वारा मांग करने पर तुरन्त उपलब्ध करायी जाने के कारण इस तरल परिसम्पत्ति को द्वितीयक[10] नकदी या " मांग — मुद्रा" कहते है । बैंक की यह तरल परिसम्पत्ति मौसमी कारणों से भी बहुत अधिक प्रभावित होती है। यह परिसम्पत्ति भी बैंक की साख सृजन क्षमता में कमी करती हैं, क्योंकि इसमें जमाकर्ताओं द्वारा मांग करने पर तुरन्त नकदी उपलब्ध करवानी होती है । मांग — मुद्रा ऋण कटौती बाजार से भी सम्बन्धित होता है और कटौती बाजारों द्वारा मांग — मुद्रा की आवश्यकता इन बाजारों में तरल परिसम्पत्तियों की उपलब्धता पर निर्भर करती है ।

मांग — मुद्रा[11] की मांग पर मौसमी फर्मों खाद्य संरक्षण और मौसमी उत्पादक तथा फुटकर विक्रेताओं द्वारा त्योहारों के अवसर पर की जाती है, जिसके माध्यम से व्यापारी अपने आगम खाते में वृद्धि करते हैं । खाद्य संरक्षण वाले उसी समय पर मुद्रा की मांग करते हैं जिस समय उन वस्तुओं का मौसम होता है ...

---

10. See "Modern Banking " by Sayers P.33 Seventh Edition, 1976. Printed in India, by Rakesh Bayai at Rakesh Press, New Delhi 28 and published by R. Royal Oxford University Press, New Delhi.
11. See " Commercial Banking " by Reed/Cotter/Gill /Smith Chapter "Short term Business Loans, P. 196-213, Edition 1976 Published by Prentice Hall Inc. Englewood Cliffs New Jersey.

प्रकार से मछली पकड़ने वाले भी समयानुसार मुद्रा की माँग अधिक मात्रा में करते हैं । इस प्रकार से बहुत से औद्योगिक कारणों से भी "माँग-मुद्रा" मौसमी कारणों से प्रभावित होती है ।

विनियोग बैंकर को अति अल्पकालीन कोषों की आवश्यकता उस समय होती है, जबकि प्रतिभूतियों को जारी करने वाली फर्मों को इसकी आवश्यकता होती है । अक्सर बैंक माँग करने वाले की वित्तीय स्थिति के आधार पर§प्रति-भूतियों की मार्जिन के आधार पर§ उपभोक्ताओं को माँग-मुद्रा उपलब्ध करवाती है । वाणिज्य बैंक डीलरों को वित्तीय मार्जिन के खाते के लिए इस प्रकार से अल्प-कालीन ऋण देती है जिसे कि किसी भी समय एक दिन का नोटिस देकर वापस लिया जा सके । इस प्रकार "माँग-मुद्रा" से वाणिज्य बैंक को सबसे कम ब्याज प्राप्त होता है, और वे प्रतिदिन देश के प्रमुख मुद्रा बाजार में सक्रिय रूप से कार्य करते हैं ।

"माँग-मुद्रा" स्थानान्तरणीयता के दृष्टिकोण से सबसे अधिक लाभदायक होते हैं । माँग-मुद्रा वरणोत्थ प्रपर बिल द्वारा प्रदान करके उस मात्रा को अगले नकदी के लिए तरल परिसम्पत्ति के रूप में रखते हैं । इसलिए माँग-मुद्रा को द्वि-तीयक रिजर्व" भी माना जाता है । इन्हें नकदी जितना ही श्रेष्ठ माना जाता है, क्योंकि इनकी तरलता और स्थानान्तरणीयता विश्वसनीय होती है । वाणिज्य बैंक इनको किसी भी समय बिना किसी नुकसान के नकदी में परिवर्तित कर सकते हैं, अत: बैंक की तरलता में वे रक्षा की दूसरी पंक्ति में आते हैं । ये एक समय पर बैंक

को दोहरी आय दिलाती है, क्योंकि ये बैंक को अल्पकालीन माँग-मुद्रा पर भी एक निम्न ब्याज दर प्रदान करवाती है ।

अत: वाणिज्य बैंक अपने अतिरेक रकम को लाभदायक कार्यों में विनियोजित कर देते हैं । इसके लिए बैंक किसी ऐसे बैंक या व्यक्ति को उधार देना उचित समझती है जिसे मुद्रा की अति अल्पकाल के लिए ही आवश्यकता हो तथा उधार देने से पूर्व उनसे पर्याप्त धरोहर जमा करा ली जाती है । ऋण प्रदान करने वाला बैंक इस रकम को आवश्यकता के समय तत्काल वापस मँगा सकता है, सट्टा करने वाले तथा तात्कालिक लेन-देन करने वाले व्यापारी, जिन्हें आकस्मिक उधार लेने पड़ते हैं, अपने बैंक खाते में स्थायी रूप से कुछ प्रतिभूतियाँ रखते हैं ताकि इन्हें ऋण प्राप्त करने में असुविधा न हो । डा० वी० के० आर० वी० राव ने बैंकिंग के के क्षेत्र में माँग-मुद्रा के सम्बन्ध में कहा है कि यह केक को खाने एवं रखने जैसे असम्भव कार्य को कर दिखाते हैं ।[12]

---

12. In the case of call money. The banker seems to accomplish the impossible feat to having the cake and eating it too" Dr. V.K.R.V. Roy.

बिल्स

किसी देश के बिल बाजार से अभिप्राय एक ऐसे बाजार, क्षेत्र या स्थान से होता है जहां हुण्डियों तथा वाणिज्यिक बिलों के आधार पर ऋण दिया जाता है और हुण्डियों एवं बिलों के क्रय-विक्रय तथा कटौती का कार्य किया जाता है । साधारणतया व्यापारी अथवा उद्योगपति बिल बाजार में हुण्डियों या बिलों के विक्रेता होते हैं, क्योंकि उन्हें ऋणों की आवश्यकता होती है और बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाएं इन्हें खरीदती हैं । किसी भी देश में कुशल मुद्रा बाजार के विकास तथा साख यन्त्र को सुविधापूर्वक चलाने के लिए एक सुसंगठित बिल बाजार का होना आवश्यक है ।

विक्रेता जब कोई वस्तु बेचता है तो वह उस वस्तु का मूल्य तुरन्त चाहता है, लेकिन हो सकता है कि किसी कारणवश ग्राहक उस वस्तु के मूल्य का तुरन्त भुगतान न कर सके । ऐसी स्थिति में विक्रेता जब माल बेचता है तो वह अपने ग्राहक के "स्वीकृत बिल" को बैंक से भुनवा करके रूपया प्राप्त कर लेता है । निर्धारित अवधि में ग्राहक खरीदा हुआ माल बेचकर अपने बिल का शोधन भुगतान निश्चित तिथि को कर देता है । बैंक को कटौती करने से आय प्राप्त होता है, इसके अतिरिक्त एक लाभ यह भी है कि बिल अत्यन्त तरल परिसम्पत्ति है और भुगतान तिथि से पूर्व धन की आवश्यकता होने पर वह बिलों को केन्द्रीय बैंक से पुर्नकटौती करवा सकता है । अत: व्यापारिक वित्त व्यवस्था बिलों के माध्यम से करने से क्रेता, विक्रेता तथा बैंक तीनों को लाभ होता है ।

निश्चित वित्तीय परिसम्पत्तियों पर बिल तथा बॉण्ड दोनों की मुद्रा माँग लोच पूर्ण होती है । इसमें ब्याज की दो दरें होती हैं प्रथम बिल दर और दूसरी बॉण्ड दर । प्रत्येक बॉण्ड दर तथा प्रत्येक व्यय की गई इकाई के लिए भविष्य में बॉण्ड दरों की आशा की जाती है, इसमें एक बिल दर होती है, जो अपेक्षित बॉण्ड तथा बिलों पर आधारित होती है । यदि बॉण्ड दर के गिरने की प्रत्याशा होती है तो वर्तमान बिल दर, बॉण्ड दर से ऊँची होती है एवं यदि बॉण्ड दर के ऊपर उठने की प्रत्याशा है तो बिल दर अपेक्षित रूप से नीची होगी । यदि प्रबन्धकीय कुशलता तथा बिल दर को बॉण्ड दर के बराबर कर दिया जाय तो बॉण्ड दर में थोड़ी सी वृद्धि की आशा की जाती है ।

व्यय हुई इकाइयों में से जब बॉण्ड तथा बिल दर में चुनाव की समस्या आती है तो प्रत्येक बिल दर तथा बाण्ड दर लगभग समान पाई जाती है । बाण्ड दर का प्रत्याशा से अधिक ऊंचा उठने का तात्पर्य है कि भविष्य में बाण्ड दर पर और ऊंची बाण्ड दर का सामान्जस्यपूर्ण समायोजन ।

वाणिज्य बैंक खुले बाजार की क्रियाएं, अनिश्चितता तथा आवश्यक आकस्मिकताओं को दूर करने के लिए अल्पकालीन बाण्डों को खरीदने तथा बेचने से रोकती है । बिल उद्योग बाजार के अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभातें है । बिलों की परिपक्वता की एक निश्चित अविधि होती है । यूजेन्स बिलवाणिज्य बैंक के लिए सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं ।

इस प्रकार के बिलों में तरलता स्वयं आ जाती है । यह बिल प्राप्त कर्ता के जोखिम को कम करता है । इस प्रकार से बिल एक बाजार योग्य कागज है जो मुद्रा बाजार में अनेक बार खरीदे व बेचे जाते हैं । चूँकि इनकी ब्याज दर ऊँची होती है, अत: बैंक को इससे लाभ प्राप्त होता है । अत: बैंक इस प्रकार के बिलों को रखने को प्राथमिकता देते हैं । कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार बैंक को केवल बिलों में ही विनियोग करना चाहिए क्योंकि इससे बैंक को तरलता एवं लाभदायकता दोनों प्राप्त होते हैं । परन्तु बैंकिंग के आधारभूत विविधता सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए बैंक को अपने कार्यों के सन्दर्भ में किसी अच्छी परिसम्पत्ति का एकाधिकारी नहीं होना चाहिए ।

रीयल बिल सिद्धान्त

सभी प्रकार के बिल रियल बिल डाक्ट्रिन में नहीं आते हैं । केवल वे ही बिल जिनके पीछे बैंक के पास कुछ प्रतिभूति यथा सोना, चाँदी, मकान, जमीन इत्यादि एवज के रूप में रखे जाते हैं जिससे जरूरत पड़ने पर बैंक अपने बिलों का भुगतान उसे बेचकर प्राप्त कर सके, उसे ही रीयल बिल डाक्ट्रिन कहते हैं । आधुनिक समय में रीयल बिलडाक्ट्रिन के अन्तर्गत स्थानान्तरणीयता का गुण आ गया है । प्राचीन काल में इस प्रकार के बिलों पर अधिक बल दिया जाता था । आधुनिक समय में इस प्रकार के बिलों का महत्व इसलिए अधिक बढ़ गया है क्योंकि इस प्रकार के बिलों से बैंक को किसी प्रकार का जोखिम नहीं उठाना पड़ता है ।

[illegible] जो बिल 30 से 90 की अवधि के लिए होते हैं उन्हें यूजेन्स बिल कहते हैं । जैसे ही [illegible] बिल खरीदा जाता है तो दोनों पार्टियां मिलकर यह समझौता कर लेती है कि

इस प्रकार के बिलों में बैंक अपनी परिसम्पत्तियों के विनियोजन को प्राथमिकता देते है क्योंकि बिलों की ब्याज दर ऊंची होती है, अत: बैंक को आय भी प्राप्त होती है और इससे बैंक की परिसम्पत्तियाँ भी सुरक्षित रहती हैं ।

वर्तमान में जबकि वाणिज्यिक बैंक विकास बैंकिंग में परिवर्तित हो रही है, इस प्रकार का रीयल बिल डाक्ट्रिन एक विरोधाभास उत्पन्न करता है । इन बिलों में अपनी परिसम्पत्तियों को विनियोजित करते समय बैंक इस बात का विशेष ध्यान रखती है कि उस बिल के एवज में रखी गयी सम्पत्ति से बिल की कीमत वसूल हो सके । बैंक उस वस्तु की बाजार कीमत के आधार पर ही बिल जारी करते हैं । अत: बिलों को मुद्रा बाजार में अनेक बार बेचा व खरीदा जा सकता है । अत: प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने परिसम्पत्तियों का विनियोग केवल रियल बिल डाक्ट्रिन में ही करने का सुझाव दिया ।

रिजर्व बैंक का बिल बाजार योजना

जनवरी 1952 से रिजर्व बैंक ने देश में (बिल बाजार संगठित करने के उद्देश्य से) एक बिल बाजार योजना प्रारम्भ की है । जिसका ध्येय देश में बिलों के प्रयोग को लोकप्रिय बनाना और मुद्रा बाजार में लोच पैदा करना है ।

बिल पर ऋण देना

इस योजना के अन्तर्गत रिजर्व बैंक ने अनुसूचित बैंकों को अवधि प्रतिज्ञा पत्रों अथवा अन्तर्देशीय बिलों की जमानत पर ऋण देने की व्यवस्था की है । जिन

अन्तर्देशीय बिलों की जमानत पर ऋण दिया जाता है, उनका भुगतान 10 दिन में हो जाना चाहिए । इस योजना के अन्तर्गत जो बैंक रिजर्व बैंक से ऋण लेना चाहते हैं उसे दो अन्य अनुसूचित बैंकों का समर्थन प्राप्त होना चाहिए । यद्यपि बैंक को कोई जमानत नहीं रखनी होती है परन्तु उनकी आर्थिक स्थिति की जांच करके ही ऋण की स्वीकृति प्रदान की जाती है ।

बिलों के प्रकार

ट्रेजरी बिल :

बिल अल्पकालिक प्रतिभूतियां है, जिनकी परिपक्वता अवधि एक, दो, तीन, छः अथवा बारह महीने की होती है । इनकी परिपक्वता अवधि कम होने के कारण इसमें उच्च बाजार उद्यमशीलता का गुण पाया जाता है । ट्रेजरी बिल वाणिज्य बैंकों की सबसे अधिक तरल परिसम्पत्ति होते हैं, क्योंकि तरल परिसम्पत्ति की आवश्यकता होने पर ये तुरन्त नकदी में परिवर्तित हो जाते हैं । बिल और कटौती उपकरणों पर विनियोग कर्ता किसी प्रकार की ब्याज दर अलग से प्राप्त नहीं करता । बिलों की परिपक्वता अवधि पूर्ण होने पर उसे बाजार में बेच दिया जाता है, उससे जो आय प्राप्त होती है वही बैंक को प्राप्त होता है यही बिल दर कहलाती है । बिल दर हमेशा ऋणों की ब्याज दर कम होती है । यदि बिल परिपक्वता अवधि से पूर्व बेच दिए जाते हैं तो इससे प्राप्त होने वाली आय की तुलना में कम आय प्राप्त होती है । अतः बिलों की परिपक्वता

अवधि के आधार पर वाणिज्य बैंक ट्रेजरी बिलों में ही अपने धन को विनियोजित करना श्रेष्ठ समझते हैं, क्योंकि इसमें बैंकिंग के महत्वपूर्ण गुणों तरलता, बाजार उद्यम-शीलता एवं सुरक्षा का गुण विद्यमान होता है, जोकि विनियोग नीति का एक आधारभूत सिद्धान्त है । ट्रेजरी बिल बहुत अधिक मात्रा में निर्गमित किए जाते हैं, इसलिए ये सक्रिय एवं कुशलतम् द्वितीयक बाजारों में प्रवेश कर जाते हैं । इस प्रकार बैंक नए निर्गमित बिलों की खरीद को सीमित नहीं करती है । दिये गये बिलों को अनेक बार खरीदा एवं बेचा जा सकता है । इसकी उच्च श्रेणी एवं विस्तृत क्षेत्र, ट्रेजरी बिलों की प्रतिभूतियों और मुद्रा बाजार में उनकी केन्द्रीय मुल्य दरें, इसे प्रभावित करती हैं । बिलों की दरों में परिवर्तन से दूसरे प्रकार की अल्पकालिक दरें प्रभावित होगी, क्योंकि इससे विनियोग कर्ता दूसरे वैकल्पिक बिलों की तरफ भी आकर्षित होगा । अतः अल्पकालिक सरकारी प्रतिभूतियों में रकम विनियोजित करने से सामान्यतया आय तो कम होती है, लेकिन इसमें तरलता विद्यमान होती है ।

अतः ट्रेजरी बिलों की प्रत्याभूतियाँ बैंक को कटौती दरों और बाण्डों की प्रतिभूतियों के अनुसार निम्न प्रकार होगी[13] जिसे सूत्र रूप में निम्न प्रकार से व्यक्त एवं स्पष्ट किया जा सकता है ।

सूत्र = $F = \frac{E}{360} \times A$

$$I = \frac{G}{F} \times \frac{365}{A}$$

---

13. See. The first Boston corporation hand book of securities of the United States Government and Federal Agencies and related Money market Instruments, 26th Edition, (New York) First Boston Corpn. 1974) P. 46-49.

जिसमें - A ÷ परिपक्वता के दिनों की संख्या

B = प्रतिशत में प्रदर्शित कटौती दरें

F = कटौती की कीमतों में डालर

G = डालर का मूल्य

I = विनियोग आगम

ट्रेजरी नोट एवं बाण्ड

ट्रेजरी नोट एक से सात वर्ष की परिपक्वता अवधि के लिए ही निर्गमित किए जाते हैं। बाण्डों की परिपक्वता अवधि कितनी भी लम्बी हो सकती है, लेकिन सामान्यतया 5 वर्ष की अवधि के लिए ही बाण्ड्स निर्गमित किए जाते हैं। ट्रेजरी नोट तथा बाण्ड विशेष कूपन दरों द्वारा ही निर्गमित किए जाते हैं। बाण्डों के कुछ निर्गमन केवल परिपक्वता के आधार पर ही होते हैं।

सरकारी प्रतिभूतियों का द्वितीयक बाजार सामान्यतया कुछ व्यवसायिक संगठनों द्वारा संतुलित किए जाते हैं एवं उन प्रतिभूतियों को उनके अपने जमा खातों द्वारा खरीदा व बेचा जाता है। ये संगठन वाणिज्य बैंक भी हो सकते हैं, लेकिन अधिकांशतया गैर-बैंकिंग प्रतिभूतियों के ही डीलर होते हैं। विस्तृत विनियोग कार्यकलापों में अधिकांशतया सरकारी प्रतिभूतियों केलिए बाजार कोटे केअनुसार सन्तुलन स्थापित किया जाताहै। अत: जब डीलर अपने व्यापार को बढ़ाना चाहता है, अथवा धारित विशेष निर्गमनो

को घटाना चाहता है, तो इन दोनों के बीच में ही इसका सन्तुलन बिन्दु निर्धारित होता है । डीलरों के बीच प्रतियोगिता के कारण मांगी गयी निर्गमन दर ऊंची होती है । अत: जैसे परिपक्वता अवधि बढ़ती जाती है, डीलरों का कोटा बढ़ता जाता है और वे निष्क्रिय व्यापारों में दीर्घकालीन बाण्डों में व्यापार करने लगते है ।

क्लीन और डाक्यूमेन्टरी बिल्स

डाक्यूमेन्टरी बिल वह बिल है जो रेलवे प्राप्तियों, लदान बिल, स्टाक एक्सचेन्ज की प्रतिभूतियों द्वारा जो ड्राफ्ट जारी किये जाते है । सामान्यतया व्यापारिक लेनदेनों में डाक्यूमेन्टरी बिलों का ही प्रयोग होता है । डाक्यूमेन्टरी बिलों के प्रयोग का मुख्य कारण यह विश्वास दिलाना होता है कि यदि रेलवे प्राप्तियाँ अथवा लदान बिल समय से प्राप्त नहीं होते है, तो दोनों पार्टियों के बीच हुए समझौते के अनुसार इनका भुगतान कर दिया जाएगा ।

वे विनिमय बिल जो किसी भी प्रकार की वस्तुओं के भुगतान के शीर्षक पत्रों के साथ प्रस्तुत किए जाते है "क्लीन बिल" कहलाते है चेक क्लीन बिल है ।

समय एवं मांग बिल

मांग बिल वह बिल है जिसमें भुगतान पत्र पर "मांग पर" लिखा होता है इसका भुगतान तुरन्त हो जाता है। इस बिल पर भुगतान वर्तमान पर अथवा "दर्शनी हुण्डी" लिखा होता है- जिसका तात्पर्य होता है कि बिल का भुगतान तुरन्त कर दिया जाए। "समय बिल" वह बिल होता है

जिसे भविष्य में किसी निश्चित समय विशेष पर भुगतान कर दिया जाएगा अर्थात् किसी विशेष समय अन्तराल के पश्चात सामान्यतया 90 दिन के पश्चात कर दिया जाएगा ।

इन्हें "यूजेन्स बिल" या टेनर बिल भी कहते हैं जिसका शाब्दिक अर्थ हैबिल के भुगतान की विशेष समयावधि । अतः समय बिल यूजेन्स बिल के नाम से जाने जाते हैं । भारत और कुछ दूसरे देशों में भी परिपक्वता अवधि पूरी हो जाने के तीन दिन बाद तक उनका भुगतान किया जा सकता है ।

माँग बिलों पर किसी प्रकार कोई स्टाम्प ड्यूटी नहीं देनी होती, लेकिन समय बिलों पर उनकी कीमत के अनुसार स्टाम्प ड्यूटी देनी होती है । स्टाम्प ड्यूटी की मात्रा विनिमय बिलों के प्रयोग तथा उनकी गुणवत्ता के अनुसार निर्धारित होती है ।

विनिमय बिल कितनी भी अधिक लम्बी परिपक्वता अवधि के लिए जारी किए जा सकते हैं । यहाँ तक कि पाँच-सात व दस वर्षों तक के लिए भी इनकी कोई समय सीमा नहीं होती है ।

डाक्यूमेन्टरी यूजेन्स बिल और डाक्यूमेन्टरी पेमेन्ट बिल

डाक्यूमेन्टरी बिल्स वे बिल होते हैं, जिसमें जिस वस्तु के लिए बिल जारी किया गया है, उसका विवरण होता है, तथा वस्तुओं को खरीदने वाला जैसे ही उस वस्तु को प्र ाप्त करता है उसे शीघ्र ही बिल का भुगतान मिल जाता है । डाक्यूमेन्टस यूजेन्स के अन्तर्गत वस्तु को प्राप्त करने की आज्ञा के पश्चात

ग्राहक को उस बिल का भुगतान निर्धारित समय के अन्दर ही करना आवश्यक है ।

"डाक्यूमेन्ट्स आन पेमेन्ट" के अन्तर्गत जब तक बिलों का भुगतान नहीं कर दिया जाता, तब तक बैंकर इसे वस्तु विशेष का नाम नहीं दे सकता है ।

देशी बिल्स एवं विदेशी बिल्स

वे सभी बिल जो अपने देश द्वारा निर्गमित किये जाते हैं तथा उनका भुगतान विदेशों में होता है देशी तथा वे सभी बिल जो विदेशों से निर्गमित किये जाते हैं परन्तु भुगतान अपने देश में होता है, विदेशी बिल हैं ।

वे सभी बिल जो इस देश के व्यक्तियों द्वारा जारी किए जाते हैं तथा जिनका भुगतान इसी देश में कर दिया जाता है, देशी बिल कहलाते हैं ।

विदेशी बिलों के विनिमय के समय भारतीय स्टैम्प अधिनियम के अन्तर्गत निश्चित स्टाम्प ड्यूटी देनी होती है । स्टाम्प ड्यूटी जिसका मूल्य सुनिश्चित होता है निर्यातक देश को आयात करने वाले देश को देना होता है ।

बैंक बिल तथा व्यापार बिल

वाणिज्य बिलों का विनिमय दो भागों में होता है --- बैंक बिल और व्यापार बिल ।

बैंक बिल वह होता है जो बैंक द्वारा निर्गमित एवं स्वीकार किया जाता है, इसमें जोखिम की मात्रा बहुत कम होती है तथा इन पर बैंक को ब्याज दर भी अच्छी प्राप्त होती है ।

वे बिल जो वाणिज्य फर्मों द्वारा निर्गमित एवं स्वीकार किए जाते हैं,

व्यापार बिल कहे जाते हैं, इन बिलों की कटौती दर ऊँची होने से व्यापारियों को इससे अच्छी आय प्राप्त होती है परन्तु कभी-कभी इनका भुगतान न होने से इसमें जोखिम की अधिक सम्भावना होती है ।

वाणिज्यिक बैंकिंग में बिल बाजार के विकास का मुख्य उद्देश्य मूलत: वाणिज्यिक बैंकिंग नियमों की कठोरता एवं विलम्ब को कम करना, बैंकिंग सेवाओं को अधिक लचीला बनाना तथा उनका विशाखीकरण एवं वित्तीय तत्वों के वातावरण को अधिक स्पर्धात्मक बनाना है । मुद्रा बाजार को व्यापक आधार प्रदान करने और उसे अधिक सक्रिय बनाने के लिए हाल ही के वर्षों में संस्थागत बिलों का विकास किया गया है । ऋण की ब्याज दरों को लचीला बनाने तथा जमाराशि सम्बन्धी ब्याज दरों को युक्तियुक्त बनाने के साथ-साथ मुद्रा बाजार के विकास के लिए निम्न उपाय किए गए हैं ----

(क) नीलामी के आधार पर 182 दिवसीय खजाना बिलों की शुरूआत जिनकी ब्याज दरें लचीली होती हैं ।

(ख) बिल संस्कृति को प्रोत्साहन देने के लिए बिल भुनाई दर को कम करना।

(ग) मुद्रा बाजार के बिलों का एक सक्रिय समर्थक बाजार विकसित करने के लिए भारतीय मितीकरण और डिस्काउण्ट गृहों की स्थापना ।

(घ) जोखिम सहित एवं जोखिम रहित दो प्रकार की अन्तर्बैंक सहभागिता की शुरूआत ।

(ङ) माँग एवं अल्प सूचना पर मुद्रा अन्तरण बैंक मियादी-मुद्रा, वाणिज्यिक बिलों की पनर्भुनाई तथा जोखि रहित अन्तर्बैंक सहभागिता पर ब्याज

दर की उच्चतम सीमा को हटाना ।

(च) मुद्रा बाजार के दो और लिखित प्रपत्रों की शुरुआत अर्थात् वाणिज्यिक पत्र और जमा राशि प्रमाण-पत्र ।

विकास की प्रक्रिया कभी भी निर्वाध तथा स्वचालित नहीं होती नीतिगत उपायों के प्रति विभिन्न व्यक्तियों की प्रतिक्रिया कभी स्वत: स्फुरित नहीं होती । अत: वाणिज्य बैंक की भूमिका अर्थ व्यवस्था में महत्वपूर्ण है तथा प्रबन्ध तन्त्र तथा बैंकिंग तंत्र के प्रति इनकी विशेष जिम्मेदारी है । अत: वाणिज्य बैंक अपनी परिसम्पत्तियों में पर्याप्त समन्वय रखते हुए यह कार्य करते हैं । क्योंकि उनका लक्ष्य एक ही उद्देश्य को प्राप्त करना है और वह है "सापेक्ष मूल स्थिरता के वातावरण में सामाजिक न्याय संगत उपायों का विकास"[4] इस प्रकार से भारत वर्ष में बिल बाजार का विकास मुद्रा बाजार के विकास तथा साख यन्त्र को सुविधा पूर्वक चलाने के लिए आवश्यक है ।

विनियोग

निवेश खातें के अन्तर्गत वाणिज्य बैंक की वे प्रतिभूतियाँ आती हैं जो द्वितीयक रिजर्व में सम्मिलित नहीं होती । विनियोग खाते की प्रतिभूतियाँ आय उत्पादक स्थानों पर प्राथमिक रूप से लगी होती है । सामान्य रूप से विनियोग शब्द का प्रयोग साहसियों द्वारा सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत क्षेत्र में उपार्जन कार्यों के लिए किया जाता है । परन्तु बैंकिंग क्षेत्र में निवेश का तात्पर्य सरकारी प्रतिभूतियों तथा राज्य स्तरीय विभिन्न निकायों के शेयरों, बाण्डों और डिबेंचरों व

---

4. Source: R.B.I. Bulletin Jan. 1990, p.p. 47.

कम्पनियों में बैंक द्वारा निवेश करने से सम्बन्धित सरकारों को अपने अपने क्षेत्र में विभिन्न विकास गति विधियों के वित्त पोषण के लिए अपने वित्तीय साधन स्रोत बढ़ाने में मदद मिलती है । भारतीय वाणिज्य बैंक के निम्न प्रकार के निवेश है -

§1§ भारत सरकार की प्रतिभूतियाँ

§2§ अन्य भारतीय न्यासी प्रतिभूतियाँ

§3§ शेयर बाण्ड और भारतीय संयुक्त पूँजी कम्पनियों के डिबेंचर

§4§ बैंको के पास मियादी जमा राशियां

§5§ किसी अन्य प्रकार की भारतीय प्रतिभूतियाँ जिनमें भारतीय यूनिट ट्रस्ट की शेयर पूँजी के अभिदान भी सम्मिलित है ।

विनियोग खाते का उद्देश्य

बैंकिंग परिसम्पत्तियों का विनियोग व्यक्तिगत रूप से किया जाता है । विनियोग खाते की प्रतिभूतियाँ कभी कभी द्वितीयक रिज़र्व जितनी ही तरल होती है । आकार एवं आय उत्पादकता दोनो दृष्टिकोणों से वाणिज्य बैंक के विनियोग का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

वाणिज्य बैंक के द्वारा विनियोग खाते में निवेश का उद्देश्य कोषों की सुरक्षा के विकेन्द्रण आय उत्पादकता एवं तरलता है । विभिन्न क्षेत्रों में विनियोग करने से अर्थव्यवस्था का विकास समन्वित ढंग से होगा । सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोग के कारण निवेश पूर्णतया सुरक्षित होते है । परन्तु इन पर

विनियोग करने से हैं जैसे भूमि बंधक बैंक, विद्युत बोर्ड मार्ग परिवहन निगम, औद्योगिक विकास निगम आवास बोर्ड वित्तीय निगम, नगर पालिकाएं पत्तन न्यास तथा राज्य केअन्य अर्द्ध सरकारी निकाय एवं संयुक्त पूँजी कम्पनियां इन राज्य स्तरीय निकायों और संयुक्त स्टाक ऋणों की अपेक्षा कम आय प्राप्त होती है । अत: वाणिज्य बैंक को उन्हीं प्रतिभूतियों में विनियोग को प्राथमिकता देनी चाहिए जहाँ पर कि आय उत्पादकता एवं तरलता दोनों विद्यमान हो ।

विनियोग खाते में सन्निहित जोखिम

वाणिज्य बैंक के विनियोग खाते में सन्निहित जोखिम बैंक द्वारा धारित परिसम्पत्तियों के गुणों के कारण होती है । इन परिसम्पत्तियों की बाजारणीयता का स्तर और बढ़ते हुए ब्याज दर के जोखिम के कारण इन्हें साख बाण्ड और मुद्रा बाण्ड में लगा देते हैं । साख बाण्ड पुनर्भुगतान के सिद्धान्त से सम्बन्धित होता है । समृद्धि के समय में बाण्ड बाजारों में साख बाण्ड और मुद्रा बाण्ड लाभदायक होते है लेकिन अवसाद की स्थिति में बाण्ड धारक को केवलहानि की ही सम्भावना होती है क्योंकि इन परिसम्पत्तियों में जोखिम निहित होता है ।

बाजारणीय प्रतिभूतियों की मात्रा में वृद्धि से लाभदायकता का साख जोखिम यह है कि ऐसे में निर्गमित करने वाले की वित्तीय स्थिति में गिरावट आती है । सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोग से उत्पादकता में वृद्धि होती है । क्योंकि इससे अर्थ व्यवस्था के दायित्वों में वृद्धि होती है और उनकी विनियोजन क्षमता में वृद्धि से उत्पादकता एवं लाभ में वृद्धि होती है । सरकारी प्रतिभूतियों

के पूर्णतया सुरक्षित होने के कारण बैंक इसे प्राथमिकता देते हैं ।

केन्द्र सरकार की प्रतिभूतियाँ जोखिम रहित होती है । किसी परि-सम्पत्ति को जोखिम दर उसकी मुद्रा जोखिम दर पर निर्भर करती है । जब ब्याज दर बढ़ती हुई होती है । इससे बाण्डों को बाजार दर में कमी या वृद्धि होती है । अत: विनियोग में जोखिम को मात्रा पूर्णत: परिसम्पत्ति की उत्पादकता एवं ब्याज दर पर निर्भर करती है । परिणाम स्वरूप विनियोग अधिकांशतया सरकारी एजेंसियों में ही किए जाते हैं । उच्च श्रेणी की आय उत्पादकता वाले बाण्ड्स बहुत सीमित होते हैं परन्तु बाण्ड जोखिम दर बहुत अधिक होती है ।

बाण्डों की कीमत प्रतिभूतियाँ और परिपक्वता

वाणिज्य बैंक अपनी तरलता को बनाए रखने के लिए प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय करते हैं । अत: आय उत्पन्न करने के लिए स्थानीय सरकारों द्वारा मुख्य रूप से प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय किया जाता है । इस प्रतिभूतियों की परिपक्वता पर ही आगम की दर निर्भर करती है । अत: निर्गमित करने वाले बाण्डों को प्रतिशत दर अदा करनी होती है । प्रतिभूतियों का विनियोजन सबसे अधिक मात्रा में सरकारी प्रतिभूतियों एवं राज्य तथा स्थानीय दायित्वों में होता है । अल्पकालीन सरकारी प्रतिभूतियों में रकम विनियोजित करने से सामान्य-तया आय तो कम होती है लेकिन इसमें बहुत अधिक मात्रा में तरलता होती है । इसमें साख का कोई जोखिम नहीं होता है तथा बाजार जोखिम भी कम होता है ।

Source: "Commercial Banking" Reed/Cotter/Gill/Smith. Chapter. The Investment of acount policy and management" Page. 317, publication (c) 1976 by prentice Inc. Englwood Cliffs. New Jersey.

दीर्घकालीन प्रतिभूतियों में रकम विनियोजित करने पर आय तो अधिक प्राप्त होती है लेकिन इसमें समय बहुत अधिक लगता है । प्रतिभूतियों की परिपक्वता का विचार स्थिर आय विनियोजन को मापने का सबसे अच्छा तरीका है । यह पैमाना कूपन दर, परिपक्वता कीमत खरीदने की कीमत और परिपक्वता के समय पर निर्भर करता है ।

बॉण्ड कीमत और बॉण्ड प्रतिभूतियां पूर्णतया एक दूसरे से सम्बन्धित होती है । जब बाण्डों की कीमत गिरती है तो बाण्ड प्रतिभूतियों की कीमत नीची होती है । जब ब्याज की दर नीची होती है तो विनियोगी बाण्डों को खरीदता है परन्तु उठती हुई ब्याज दर पर कीमत गिरावट का जोखिम उठाना होता है । ब्याज दर गिरने से बाजारणीयता का आकर्षण बढ़ता है । अतः बॉण्ड कीमत और प्रतिभूतियों के बीच सम्बन्ध का अर्थ है व्यापारिक बैंक के विनियोग पोर्टफोलियो को व्यापार दर का ब्याज दर के उतार-चढ़ाव के साथ घटना-बढ़ना बढ़ती हुई ब्याज दर से वाणिज्य बैंक को हानि होती है । नए विनियोगों से बैंक के लाभों की दर को बढ़ाया जाता है । परन्तु बढ़ती हुई ब्याज दर विनियोगी खाते पर बुराप्रभाव डालती है । वाणिज्यिक क्षेत्र में इसे आन्तरिक बन्दी कहते हैं । इस समय बैंक अपने बॉण्ड बेचकर अधिक पूँजी हानि से बच जाती है ।

इसका विकल्प यह होता है कि वे उसे परिपक्वता प्राप्त होने तक धारित किये रहे अथवा जब तक कि कीमत के बढ़ने के कारण ब्याज दर गिरने न

लगे । यदि बॉण्ड कीमत की आपूर्ति हो जाती है तब भी बैंक हानि उठाते हैं । क्योंकि वे ऊँची ब्याज दर के समय में अपने कोषों को ऋण एवं विनियोजन में लगा सकते हैं ।

विनियोग नीति

प्रत्येक वाणिज्य बैंक की एक लिखित अथवा अलिखित विनियोग नीति होती है । यद्यपि लिखित विनियोग नीति बैंक के लिए अच्छी होती है लेकिन कुछ बैंक इसे लिखित रूप में नहीं रखते हैं । वाणिज्य बैंक की विनियोग नीति अधिकांशतया लिखित होती है क्योंकि इस व्यवस्था का उद्देश्य अर्थ-व्यवस्था को गति प्रदान करके उच्चतम स्तर पर पहुँचाना होता है । परन्तु बैंकिंग के आर्थिक वातावरण में तेजी से होते हुए बदलाव के कारण ये बहुत अल्प समय में ही बेकार हो जाती है । यद्यपि तेजी से बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियों में विनियोग नीति इतनी तीव्र गति से नहीं बदलती है कि कोई विनियोग नीति लिखित रूप में रखी हो न जा सके ।

विनियोग नीति का मुख्य उद्देश्य आय एवं तरलता का निर्धारण है । बैंक का प्रबन्धन वाणिज्य बैंक की परिसम्पत्तियों में तरलता एवं लाभदायकता की खोज में रहती है जिसका अर्थ कम से कम मात्रा में जोखिम उठाना । लेकिन विनियोग खाते के जोखिम में लगातार वृद्धि होती रहती है जिससे कि विनियोग नीति प्रभावित होती है । विनियोग खाते के अन्तर्गत परिसम्पत्तियों

की परिपक्वता अवधि जितनी अधिक होगी उससे उतना ही अधिक लाभ व जोखिम होगा । वाणिज्य बैंक का विनियोग उसके आकार एवं आगमों के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। अतः विनियोग करने योग्य परिसम्पत्तियों की तरलता का परीक्षण करना होता है । अतः तरल विनियोग माँग आधार पर बनाए जाते हैं तथा जो विनियोग परिपक्व हो रहे हों वे पुनः नए रूप से बनाये जा सकते हैं ।

बैंकिंग के विनियोग खाते में जोखिम को घटाने का सबसे अच्छा एंव स्वीकार्य तरीका है विविधिकरण जोकि विनियोग नीति का आधारभूत नियम है । विविधिकरण का प्रयोग विभिन्न उद्योगों में अनेक परिपक्वता अवधि तथा भौगोलिक क्षेत्रों में प्रतिभूतियों के विनियोजन से है । विभेदीकरण द्वारा जोखिम को पूर्णतः नकारा तो नहीं जा सकता है लेकिन कम किया जा सकता है । आज वर्तमान समय में म्युचुअल फण्ड स्कीम इसी आधार पर चलायी जा रही है जिसमें विभिन्न वाणिज्य बैंक अपनी प्रतिभूतियों का विनियोजन कर रहे हैं ।

वाणिज्य बैंक विनियोग के गुणों एवं परिपक्वता से भी सम्बंधित होता है । गुणवत्ताके क्षेत्र में वैभिन्नीकरण का उद्देश्य जोखिम को कम करना तथा जिन व्यक्तियों को वास्तव में विनियोग ऋण की आवश्यकता है उन्हें उपलब्ध कराना है । अतः, जब निम्न गुणवत्ता वाली प्रतिभूतियों में विनियोग किया जा रहा हो वैभिन्नीकरण अधिक आवश्यक होता है । अतः स्पष्ट है कि समय-समय पर बैंक को विभिन्न विनियोग नीतियों को पुनरीक्षित किया जाता

है और आर्थिक दशाओं में बदलाव के साथ-साथ उसे बदल दिया जाना उपयुक्त होता है ।

विनियोग प्रतिभूतियाँ

वाणिज्य बैंक का विनियोग कार्य-कलाप ऋण आदि की भाँति जमाकर्ताओं के कोष की सुरक्षा से जुड़ा होता है । विनियोग प्रतिभूति एक बाजार योग्य बॉण्ड नोट अथवा लाभों के समझौतों से बंधी हुई होती है । विनियोग प्रतिभूतियों को बाजार योग्य होना चाहिए । अत: बैंक सरकारी प्रतिभूतियों में तरलता के दृष्टिकोण से धन विनियोजित करना श्रेष्ठ समझता है । लेकिन व्यक्तिगत क्षेत्र में अपनी प्रतिभूतियों को विनियोजित करने से बैंक की आय में वृद्धि होती है अत: बैंक अपनी सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रतिभूतियों में अपना धन विनियोजित करते हैं ।

गुणवत्ता का निर्धारण

वाणिज्य बैंक द्वारा खरीदी गयी प्रतिभूतियाँ गुणवत्ता के निर्धारण से सम्बन्धित होती है । यद्यपि विनियोग क्षेत्र में गुणवत्ता को परिभाषित करना, उसकी पहचान करना और उसे नियमित करना कठिन है । वाणिज्य बैंक द्वारा खरीदे गये सामान्य बॉण्डों की गुणवत्ता को निर्धारित करने के लिए अनेक कारक उत्तरदायी होते हैं । लेकिन बॉण्डों को खरीदते समय उनकी गुणवत्ता की पहचान करना बहुत कठिन कार्य होता है । विनियोग कोषों की गुणवत्ता के निर्धारण का

कार्य करती हैं और आसानी से बेची जा सकती हैं । प्रतिभूतियों की गुणवत्ता के निर्धारण के लिए एक बैंक द्वारा विनियोग खाते को स्थानान्तरित करना होता है । इस नियमन का उद्देश्य बैंक के विनियोग पोर्टफोलियो द्वारा बैंक प्रबन्धन को प्रोत्साहित करने एवं इच्छित निर्णय लेने में सहायता करना होता है ।

धारक के अनुसार उपयुक्त प्रतिभूतियों का वर्गीकरण

योग्य प्रतिभूतियों का वर्गीकरण धारक के आधार पर किया जाता है, जैसे केन्द्रीय सरकार, केन्द्रीय एजेन्सियों, राज्य एवं स्थानीय सरकारी इकाइयों (नगरपालिका) और निगमित प्रतिभूतियाँ इत्यादि । यद्यपि विनियोग पोर्टफोलियो का सबसे बड़ा भाग नगर पालिका प्रतिभूतियों का ही होता है, लेकिन धारक के दृष्टिकोण से केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियाँ सबसे अधिक महत्वपूर्ण है ।

केन्द्र सरकार की प्रतिभूतियाँ

केन्द्र सरकार की ट्रेजरी प्रतिभूतिया सार्वजनिक एवं अन्सार्वजनिक एवं बाजार योग्य प्रतिभूतियों में विभाजित की जाती हैं । वाणिज्य बैंक केवल बाजार योग्य सार्वजनिक प्रतिभूतियाँ ही खरीदते है । बाजार योग्य सार्वजनिक निर्गमन में ट्रेजरी बिल नोट और बॉण्ड सम्मिलित हैं ।

नगर पालिका प्रतिभूतियाँ

सभी प्रकार के विनियोगों में नगर पालिका प्रतिभूतियाँ सबसे अधिक

विस्तृत होती है, क्योंकि इसमें राज्यों और उनके राजनैतिक विभाजनों को सम्मिलित किया जाता है । राज्यों के राजनैतिक विभाजन में नगर पालिका वर्गीकरण में महानगर,शहर,जिले, कस्बे,गांव सम्मिलित हैं । राज्य एवं स्थानीय सरकारें विभिन्न प्रकार के कार्यों को करती हैं, जैसे - स्कूल,सड़कें, पानी , पुस्तकालय एवं स्वच्छता इत्यादि पर व्यय ।

अत: नगर पालिका प्रतिभूतियों में विनियोग करना बैंक के लिए आकर्षक होता है, क्योंकि इनकी ब्याज दर अपेक्षाकृत रूप से ऊंची होती है । आकर्षक आय उत्पन्न करने के कारण नगर पालिका प्रतिभूतियों में ऋणों का विनियोजन अधिक मात्रा में होता है ।

कारपोरेट निर्गमन

वाणिज्य बैंक को निजी क्षेत्र के विनियोग प्रतिभूतियों तथा बॉण्डों को खरीदने की अनुमति होती है । इस प्रकार की प्रतिभूतियों पर ऊंची दर से कर लगता है/अत: इस क्षेत्र को इससे हानि ही होती है ~~इसलिए~~ कारपोरेट क्षेत्र के लिए विशेष आकर्षकनही होते हैं ।

इस प्रकार से वाणिज्य बैंकं सर्वाधिक निवेश, नगर पालिका प्रतिभूतियों में करते हैं क्योंकि इससे बैंक को अधिक आय प्राप्त होती है । इस प्रकार के विनियोगों से उत्पन्न आय पर राज्य व केन्द्र सरकार द्वारा किसी प्रकार का कर भी नहीं लगाया जाता है जिससे ये प्रतिभूतियाँ सबसे अधिक आय उपार्जक होती है परन्तु इनमें बाजारणीयता कम होती है । इन प्रतिभूतियों की अधिक मात्रा में वृद्धि से बैंक की तरलता में कमी आती है । विनियोग खाते के जोखिम में वृद्धि होती है परन्तु इससे बैंक की लाभदायकता में वृद्धि होती है ।

-: ऋण :-

बैंक के परिसम्पत्ति पोर्टफोलियो में ऋण सबसे अधिक महत्व-पूर्ण परिसम्पत्ति है, क्योंकि इससे बैंक को सबसे अधिक मात्रा में आय प्राप्त होती है । श्रेष्ठ ऋण नीति गैर सरकारी क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण योग-दान करती है । बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियों के साथ ऋण नीति में भी परिवर्तन होता रहता है । अतः समय के साथ-साथ बैंक परिवर्तित सामाजिक व राजनैतिक दशाओं के साथ ऋण परिसम्पत्ति की संरचना में परिवर्तन करते है । राष्ट्रीयकरण से पूर्व बैंक यह निर्णय स्वयं लेती थी कि वे अपने ऋणों का अर्थ व्यवस्था के किन क्षेत्रों में प्रसार करे तथा किन क्षेत्रों में कटौती । परन्तु राष्ट्रीयकरण के पश्चात निर्देशित साख कार्यक्रम के अन्तर्गत कुल ऋणों का 40 प्रतिशत भाग प्रथमिकता प्राप्त क्षेत्र को आवंटित कर दिया जाता है जिससे बैंक के पास ऋण परिसम्पत्ति का मात्र 60 प्रतिशत लाभदायक विनियोगों के लिए शेष बचता है।अतः बैंक के कुशलता पूर्वक संचालन के लिए ऋण के कार्यों व उद्देश्यों को उन्नत किया जाता है।

वाणिज्य बैंक के ऋण पोर्ट फोलियो का संगठन बैंकिंग ऋण के नियम व सिद्धान्तों पर निर्भर करता है । बैंक का आकार ऋण पत्रक के आकार ऋण के प्रकार तथा बैंकिग तन्त्र के निर्देशक मण्डल की प्रवृत्ति के आधार पर ऋणों का संगठन किया जाता है । उच्च लाभदायकता तथा सुरक्षा के कारण बैंक उद्योग तथा वाणिज्य क्षेत्र को अल्पकालीन ऋण देने में अधिक रूचि दिखाते हैं । बैंक ऋण का सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग अल्पकालीन व्यापारिक ऋण है ।इन परसामान्यतया कुल आय का लगभग 2/3 भागप्राप्त होताहै । वाणिज्य बैंक की अपेक्षित क्षेत्र का

जिस क्षेत्र को "प्राथमिकता-प्राप्त क्षेत्र" नाम दिया गया और कुल अग्रिमों का एक निश्चित प्रतिशत इस क्षेत्र को देने को कहा गया । भारत सरकार एवं रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने वाणिज्य बैंक को निर्देश दिया कि वाणिज्य बैंक कुल परिसम्पत्तियों में ऋण जमा-अनुपात 60 प्रतिशत होना चाहिए और कुल अग्रिमों का 33.3 प्रतिशत भाग प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र को देना चाहिए । जिसे 1980 में बढ़ाकर 40 प्रतिशत कर दिया गया है । पुनश्च, कुल अग्रिमों को न्यूनतम प्रतिशत ऋण 1972 में प्रारम्भ किया गया तथा विभिन्न ब्याज दर योजना के अन्तर्गत 4 प्रतिशत की न्यूनतम ब्याज दर पर समाज के सबसे कमजोर वर्ग को ऋण प्रदान करने का निर्देश दिया गया ।

राष्ट्रीयकरण के लक्ष्यों[17] में से एक लक्ष्य यह सुनिश्चित करना भी था कि कोई भी सक्षम उत्पादक उद्यम ऋण सहायता में कमी के कारण रुके नहीं चाहे उद्यमी छोटा हो या बड़ा । इस आशय से सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक को निर्देश दिये गए है कि वे प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को ऋण प्रदान करें जिसे कृषि और सम्बद्ध गतिविधियां ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग, लघु उद्योग व्यवसायी एवं स्वनियोजित व्यक्ति, लघु परिवहन परिचालन खुदरा व्यापार एवं छोटे व्यापार सम्मिलित है ।

---

17. See. "Reserve Bank of India Bulletin, Jan. 1987, pp. 30 -37. R.B.I. Bombay.

* -कमजोर वर्ग-1. लघु और सीमान्त कृषक कृषि श्रमिक, बटाईदार, पट्टेदार कृषक, 2. कारीगर ग्रामीण और कुटीर उद्योग, 3. एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के हिताधिकारी, 4. विभेदक ब्याज दर योजना के हिताधिकारी, 5. अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के

इस प्रकार से राष्ट्रीयकरण के पश्चात उठाया जाने वाला सबसे महत्वपूर्ण कार्यात्मक कदम था कुछ निश्चित क्षेत्र में बैंकिंग का प्रवेश जैसे कृषि छोटे पैमाने के उद्योग फुटकर व्यापार छोटे व्यवसाय सड़के और पानी के आवागमन के उपकरण स्वरोजगार एवं व्यवसायीकरण निर्यातों और शिक्षा जैसे प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र में बहुत कम ब्याज दर पर ऋण दिया जाना । ऋणों के आबंटन को इन क्षेत्रों के पक्ष में प्रवाहित कर दिया गया । इन असंगठित और बिखरे हुए क्षेत्र में बैंक द्वारा विनियोग से बैंकिंग परिसम्पत्तियों के जोखिम में वृद्धि हुई । इन बढ़ते हुए जोखिम को दूर करने के लिए रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने पब्लिक लिमिटेड कम्पनियों और क्रेडिट गारण्टी कारपोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड की स्थापना 14 जनवरी 1971 को की । बैंकिंग कमीशन के अनुसार नीति का एक भाग छोटे उधार लेने वाले अर्थात प्राथमिकता प्राप्त और दूसरे अपेक्षाकृत उपेक्षित क्षेत्र में साख में प्रसार में वृद्धि करना है अनुसूचित वाणिज्य बैंक और दूसरी योग्य संस्थाओं द्वारा छोटे ऋणों एवं साख सुविधाओं के लिए गारण्टी विवरण की सुविधा प्रदान करें एवं यातायात साधनों फुटकर विक्रेताओं स्व रोजगार प्राप्त व्यक्तियों व्यवसायियों और दूसरे व्यवसायिक उद्यमों व छोटे कृषकों को ऋण सुविधाएँ प्रदान करना है।[18]

पुनश्च क्रेडिट गारण्टी कारपोरेशन आफ इण्डिया (छोटे ऋणों) की गारण्टी स्कीम अप्रैल 1971 में आयी । इस स्कीम में उन स्वरोजगार प्राप्त

---

18 See -Report of the Banking Commission " Delhi Government of India,(1972) P. 27.

व्यक्तियों को प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र व उपेक्षित क्षेत्र के लिए ऋण प्रदान करते हैं, जो 20 हजार रुपए तक की गारण्टी लेने के योग्य हो । अक्टूबर 1971 से क्रेडिट गारण्टी कारपोरेशन ने एक योजना प्रारम्भ की जो कि अनुसूचित वाणिज्य बैंक के सहयोग से साख प्रसारण करते हैं।"[19]

राष्ट्रीयकरण के पश्चात निर्यात प्रोत्साहन बैंकिग क्षेत्र के कार्यों में बहुत महत्वपूर्ण बन गया । रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने निर्यात प्रोत्साहन के लिए 1975 में "निर्यात जोखिम बीमा निगम" की स्थापना की; इसका विस्तार किया गया और निर्यातकों को प्रोत्साहित करने के लिए नयी निर्यात साख और गारण्टी निगम की स्थापना की गयी । तथापि रिजर्व बैंक ने निर्यात साख और हानियों के लिए निश्चित विशेष दर पर बैंक ऋण की व्यवस्था की जिन पर भारत सरकार द्वारा साहायिकी प्रदान की जाती है ।

सरकार और रिजर्व बैक आफ इण्डिया द्वारा उठाए गए विभिन्न कदमों से वाणिज्य बैंक कुछ अपरम्परागत क्षेत्रों में और देश के अन्य भागों के विकास के लिए योगदान दे रहे है । बैंकिग ऋण संरचना में कई दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण परिवर्तन आए है । अतः यह ठीक ही कहा जाने लगा है कि बैंकिग श्रेणी बैंकिग से समुदाय बैंकिग की ओर पिछले दो दशकों में परिवर्तित होने लगा है ।

19-See " Birla Institute of Scientific Research " Banks Since Nationalisation" (New Delhi, Allied Publication Pvt. Ltd., 1981) Page 24.

सभी प्रकार के वित्तीय लेन देन वाणिज्य बैंक के अल्पकालीन एवं मध्यमकालीन जमा कोषों पर निर्भर करता है । अल्पकालीन ऋणों के लिए वाणिज्य बैंक मुख्यत: मध्यम कालीन व अल्पकालीन जमाओं पर निर्भर रहते है । अल्पकालीन ऋणों की वृद्धि मुख्यत: ब्याज दरों तथा कोषों की उपलब्धता पर निर्भर करती है ।[20]

अल्पकालीन ऋणों के प्रकार

अल्पकालीन ऋण सुरक्षित और असुरक्षित दोनो प्रकार के क्षेत्रों को प्रदान किए जाते हैं । कुछ मुख्य अल्पकालीन ऋण निम्न हैं -

अल्पकालीन असुरक्षित ऋण

अल्पकालीन ऋणों का आधा भाग असुरक्षित आधार पर दिया जाता है और इनके पिछे किसी प्रकार की प्रतिभूतियाँ नही रखी जाती है । यदि सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो इस प्रकार के ऋण बैंक के लिए अधिक जोखिम पूर्ण होते हैं, परन्तु तरलता के दृष्टिकोण से श्रेष्ठ होते हैं ।

अल्पकालीन सुरक्षित ऋण

वाणिज्य बैंक सुरक्षा आधार पर ऋण देना अधिक पसंद करते हैं । अत: जब वे ऋणों के एवज में सुरक्षा आधार पर कोई प्रतिभूति अपने पास

---

20. See- Commercial Banking, Oliver G. Wood Jr. University of Scott. Cordina, Page 20P Chapter " Short Term Bussiness Loans," D. Van Mstramed Company, New York, 1979.

रखते हैं तो वे प्रतिभूति का बाजार मूल्य, उसकी लाभदायकता, बाजारणीयता तथा तरलता की जाँच अच्छी प्रकार से करते हैं एवं उसके पश्चात ही ऋण प्रदान करते हैं । वाणिज्य बैंक अल्पकालीन प्रतिभूतियों एवं ऋणों को प्राथमिकता प्रदान करती हैं । परन्तु ऋणों की परिपक्वता अवधि जितनी लम्बी होगी ब्याज दर उतनी ही ऊँची होगी। लेकिन श्रेष्ठ बैंकर को इसकी ओर आकृष्ट नही होना चाहिए क्योंकि दीर्घकालीन ऋणों में लाभदायकता तो होती है परन्तु तरलता एवं सुरक्षा की दृष्टि से कमजोर होते हैं। अतः बैंक परम्परागत रूप से अल्पकालीन ऋणो का पक्ष लेते हैं क्योंकि उसमें पर्याप्त तरलता होती है और समय पर ऋण वापस मिल जाने के कारण परिसम्पत्तियां अवरूद्ध नही होती है।

उपभोक्ता ऋण उपभोग कार्यों के लिए प्रदान किए जाते हैं । इनकी परिपक्वता अवधि अधिक से अधिक 2 या 3 वर्ष होती है । वाणिज्य बैंक के कुल ऋण परिसम्पत्ति का 20 प्रतिशत व्यक्तिगत उपभोक्ताओं को प्रदान करते हैं । इन ऋणों की परिपक्वता अवधि कम होने के कारण ये ऋण आसानी से आबंटित कर दिये जाते हैं । यह ऋण घरेलू उद्देश्यों जैसे चिकित्सा, शिक्षा यात्रा व्यय व्यक्तिगत कर एवं बीमा पालिसियां भरने के लिए भी प्रदान किया जाता है । इनका आकार छोटा है । ये ऋण उपभोक्ता की व्यक्तिगत स्थिति की भली प्रकार जाँच करने के बाद प्रदान किए जाने के कारण सुरक्षित होते हैं ।

कृषकों को ऋण

वाणिज्य बैंक द्वारा कृषकों को प्रदान किए जाने वाले ऋणों में लगातार वृद्धि हो रही है । इनमें जोखिम की मात्रा अधिक होती है तथा इनकी परिपक्वता अवधि भी लम्बी होती है । इनकी ब्याजदर अत्यन्त नीची होने के कारण लाभदायकता कम होती है । जोखिम की अधिक सम्भावना के कारण कभी-कभी यह बैंक के साख प्रसारण को अवरुद्ध करते हैं । कृषि वस्तुओं की नीची कीमत होने के कारण इनकी लाभ की दर कम होती है । कृषि पदार्थों के मूल्य में अस्थिरता व कृषि के मानसून पर निर्भर रहने के कारण बैंक जोखिम में वृद्धि होती है ।

कृषकों को ऋण देने से पूर्व उनके चरित्र, उनकी प्रबन्ध योग्यता कुल उत्पादन क्षमता, फसल के लिए उत्पादित क्षेत्रफल इत्यादि के बारे में बैंकर पूरी जानकारी प्राप्त कर लेता है । कृषि ऋणों की परिपक्वता अवधि लम्बी होने के कारण तथा ब्याजदर अत्यन्त निम्न होने के कारण बैंक की लाभदायकता कम होती है । कृषि पदार्थ के मूल्यों में अस्थिरता भी कृषकों के निर्णय से बाहर होती है । अन्य व्यवसायिक उत्पादों की अपेक्षा कृषि उत्पादन चक्र लम्बा होता है । अतः कृषक अपनी इच्छानुसार अपने उत्पादों को घटा-बढ़ा नही सकते हैं ।

भारत में ऋणों व अग्रिमो का कुल 13-15 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र को प्रदान किया जा रहा है । ये ऋण पूर्ण रूप से सुरक्षा आधार पर नही प्रदान किए जाते है अतः इनमें जोखिम की मात्रा बहुत अधिक होती

है । भारत में सबसे अधिक बैंकिंग ऋण के ओवर ड्यू कृषि क्षेत्र के ऋणों के हैं । अतः इन ऋणों के जोखिम को दूर करने के लिए बैंकरो को निर्देश दिया गया कि वे अपने ऋणों को जोखिम वाले असुरक्षित स्थानों पर सावधानी पूर्वक विनियोजित करें ।

भारत में ऋणों व अग्रिमों के सम्बन्ध में नियम

अर्थशास्त्री डा॰ आर॰ कृष्णन के अनुसार बैंक की सबसे लाभदायक ऋण परिसम्पत्ति में जोखिम की मात्रा सबसे अधिक होती है परन्तु सबसे अधिक लाभदायक होने के कारण ऋणों में विनियोग करने को बैंक प्राथमिकता देते है । परन्तु ऋण परिसम्पत्ति को जोखिम से बचाने के लिए बैंकिंग के मुख्य सिद्धान्त सुरक्षा का विशेष ध्यान रखना पड़ता है । अतः बैंकिंग व्यवस्था के स्वस्थ्य एवं कुशलतम संचालन के लिए सुरक्षा से सम्बन्धित अनेक नियम बनाए गए हैं ।

ऋणों एवं अग्रिमों का वितरण सुरक्षा के दृष्टिकोण से तथा कार्यात्मक दृष्टिकोण से किया गया है । कार्यात्मक दृष्टिकोण से ऋणों एवं अग्रिमों का वितरण निम्न प्रकार किया गया है-

1- कृषि क्षेत्र को ऋण या अग्रिम

2- उद्योग क्षेत्र को ऋण

3- व्यापार एवं वाणिज्य क्षेत्र को ऋण

4- आयात व निर्यात व्यापार क्षेत्र के ऋण

5- विभिन्न प्रकार के अन्य आय जैसे व्यक्तिगत ऋण इत्यादि ।

सुरक्षा के दृष्टिकोण से ऋणों एवं अग्रिमों का वर्गीकरण इस प्रकार से किया गया है -

(1) उन ऋणों एवं अग्रिमों को सुरक्षित मानते है जिनके एवज में किसी प्रकार की गतिशील अथवा स्थिर परिसम्पत्ति रखी गयी हो, यह गारण्टी बैंक सरकार तथा प्रबन्ध निदेशक जैसे व्यक्तियों की हो सकती है जो कि उधार देने वाले किसी बैंक से सम्बन्धित हो ।

(2) उन ऋणों एवं अग्रिमों को असुरक्षित मानते है जिनके पीछे किसी प्रकार की कोई गॉरण्टी नही होती है ।

वैभिन्नित ब्याज दर योजना

वैभिन्नित ब्याज दर योजना 1972 में समाज के कमजोर व्यक्तियों को लाभान्वित करने के लिए प्रारम्भ की गयी । इस योजना के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में जिनकी वार्षिक आय 20 हजार रुपये तक, अर्द्ध- शहरी क्षेत्र में जिनकी वार्षिक आय 25 हजार रुपये तक और शहरी क्षेत्र में 30 हजार रुपये से कम है वे बैंक से 4 प्रतिशत की ब्याज दर पर ऋण प्राप्त कर सकते हैं । इस योजना के अन्तर्गत कुल बैंक ऋण का 1 प्रतिशत वैभिन्नित ब्याज दर योजना के अन्तर्गत प्रदान किया जाता है । समाज के कमजोर वर्ग के उन व्यक्तियों को

जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित हैं को इस योजनामें लाभान्वित करने का लक्ष्य रखा गया ।

ऋण नीतिगत प्रतिबन्धो के अन्तर्गत संसाधनों का अधिकतम उपयोग

निःसन्देह ऋण नीति के परिणाम स्वरूप उच्च आरक्षित निधि सम्बन्धी अपेक्षाओं तथा सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों के अनुसार कुछ श्रेणियों के ऋण कर्ताओं के लिए रियायती ब्याज दरों पर ऋण देने के कारण निधियाँ पहले से ही अवरुद्ध हो जाती है । इस प्रकार बैंक संसाधनों का काफी बड़ा भाग निधियों के नियोजन के सम्बन्ध में बैंक के विवेकाधिकार से पहले ही बाहर हो जाते हैं । साथ ही जमाराशियों और अग्रिमों पर ब्याज दर अधिकतर नियंत्रित रहते है । किन्तु विभिन्न नीतिगत उपाय तैयार करने और उन्हे कार्यान्वित करते समय बैंकिग तन्त्र की अर्थक्षमता को हमेशा ध्यान में रखा जाता है । इस उद्देश्य के लिए बहुत से प्रयास किए गए हैं ।

सामाजिक उद्देश्यों के प्रति हित चिन्तना के अधीन छोटे ऋण कर्ताओं और समाज के कमजोर वर्गो के लिए रियायती ब्याज दर के अन्तर्गत ऋण को छोड़कर सभी विशिष्ठ क्षेत्र और विशिष्ठ कार्यक्रम आधारित ऋण की ब्याज दरों को समाप्त कर दिया गया है । ब्याज दर में रियायत के ऋण की मात्रा को छोड़कर नयी संरचना में जहाँ पुरानी संरचना की जटिलता

और बहुलता को बहुत कम लिया गया है वही यह संरचना यह भी सुनिश्चित करती है कि समाज के कमजोर वर्गों की ऋण अपेक्षाओं को भी ध्यान में रखा जाए ।

वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों के आबंटन के सिद्धान्त

वाणिज्य बैंकिंग परिसमपत्तियां बैंक के लिए जीवन रक्त का कार्य करती है । अतः बैंकिंग व्यवस्था को दीर्घकाल तक सुचारू रूप से संचालित करने एवं कुशलता पूर्वक कार्य करते रहने के लिए आवश्यक है कि वाणिज्य बैंके अपनी परिसमपत्तियों का आबंटन अधिकतम कुशलता एवं लाभदायकता के साथ संचालित करें जिससे कि एक तरफ बैंक को पर्याप्त मात्रा में आय प्राप्त होती रहे और दूसरी तरफ कम जोखिम के साथ बैंक परिसम्पत्तियों में पर्याप्त तरलता भी हो जिससे कि ग्राहकों का बैंकिंग व्यवस्था पर विश्वास बना रहे अतः वाणिज्य बैंक अपनी परिसम्पित्तियों का आवंटन निम्न सिद्धान्तों के अनुसार करते हैं -

- लाभदायकता
- तरलता
- तरलता बनाम लाभदायकता
- विविधिकरण
- सुरक्षा

लाभदायकता

सार्वजनिक क्षेत्र की बैंक के लिए लाभदायकता उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी की किसी भी वाणिज्यिक उद्यम के लिए । वाणिज्य बैंक के दीर्घकाल तक सुचारू रूप से संचालित होते रहने के लिए अत्यन्त आवश्यक तथ्य है कि बैंक लाभदायकता पूर्वक कार्य करें । अतः लाभदायकता का स्तर किसी भी व्यापारिक संगठन की स्थिति को मापने का मुख्य उपकरण है ।

वाणिज्य बैंक की लाभदायकता उसके सकल आय और सकल व्यय के अन्तर को माप कर निर्धारित की जाती है । वाणिज्य बैंक की विभिन्न परिसम्पत्तियों पर प्राप्त होने वाली आय उसके कुल आगम को तथा स्थापना व्यय व जमाओं पर दी जाने वाली ब्याज दर बैंक के कुल व्यय होते हैं । इस आय व व्यय का अन्तर ही बैंक के विशुद्ध लाभ को निर्धारित करता है । पिछले कुछ वर्ष से बैंक की लाभदायकता निरन्तर गिरती जा रही है । 1969 में बैंक के राष्ट्रीयकरण के पश्चात बैंक के समक्ष समाजार्थिक लक्ष्य रखे गये क्योंकि बैंक का राष्ट्रीयकरण इस प्रमुख उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया गया था कि वे परम्परागत रूप से उपेक्षित क्षेत्रों का विशेष ध्यान रखेगी व अपनी शाखाएं ग्रामीण क्षेत्र में खोलेगी । इन क्षेत्रों में विनियोग से बैंक परिसम्पत्तियों की लाभदायकता में तो अवश्य गिरावट आएगी परन्तु इससे बैंक के सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति होगी। कुछ वाणिज्य बैंकों ने अपनी परिसम्पत्तियों का विनियोजन अत्यन्त कुशलता पूर्वक करके लाभ कमाया है । बैंकिंग कमीशन (1972) की रिपोर्ट में इस सन्दर्भ में कहा है-

"वर्तमान समय में बैंक का उद्देश्य अधिकतम लाभ उपार्जित करना नही होता है क्योंकि मौद्रिक अधिकारियों द्वारा उनसे समाजार्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अधिकतम विनियोग करने के लिए कहा गया है। परन्तु इसका अर्थ यह नही कि उन्हे लाभदायक विनियोग करना ही नहीं चाहिए। राष्ट्रीयकरण का अर्थ यह नही होता है कि बैंके अपने वित्तीय एवं मौद्रिक अनुशासन के पर्याप्त समायोजन के कर्तव्य से दूर हट जाए।[21]

दूसरे अन्य संस्थानों की भांति बैंकिंग उद्योग भी अपने निर्णय लेने के लिए स्वतन्त्र नही होता। बैंकिंग उद्योग के निर्णय रिज़र्व बैंक आफ इण्डिया की नीति के अनुसार संचालित होते हैं। अग्रिमों और जमाओ का स्तर, जमाओं की ब्याज दर, वैधानिक तरलता अनुपात, वैधानिक नकदी अनुपात, विभिन्न क्षेत्रों में ऋणो का अधिकतम स्तर, प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र और दूसरे क्षेत्रों में साख का आबंटन और इसी प्रकार के दूसरे निर्णय रिज़र्व बैंक की नीतियों के अनुसार निर्धारित होते है और बैंक के लिए व्यक्तिगत चयन का बहुत कम क्षेत्र बचता है। उसी प्रकार व्यय का पूर्व निर्धारित भाग स्वयं बैंक के नियंत्रण से बाहर होता है और वे स्वयं लाभ में वृद्धि के लिए बहुत कम प्रयास कर सकते हैं।[22]

21- See- " Report of the Banking Commission " (Delhi Government of India) (1972) P. 296.

22- See- " The Journal of the Indian Institute of Banker" So.3 C to July to Sept. 1979) " Bank Profitabilit the Real Issues " by S.C. Sahab P. 131.

वर्तमान समय में भी बैंक के नियंत्रण में बैंक कोषों का प्रबन्धन कार्यकुशलता एवं लागत प्रबन्धन है । इस प्रकार से कुशलतम नकदी प्रबन्धन व आय व्यय संरचना पर नियंत्रण बैंकिंग उद्यम की दक्षता को मापने का महत्वपूर्ण भाग है ।

बैंकिंग परिसम्पत्तियों की लाभदायकता को क्षेत्र विशेष तथा बैंक की प्रबन्धकीय कुशलता बहुत अधिक प्रभावित करते हैं । माँग मुद्रा की ब्याज दर अत्यन्त लचीली होने के कारण बैंक की लाभदायकता प्रभावित हुई है ।

भारत में कुछ समय से बैंक की लाभ प्रदता पर काफी दबाव महसूस किया जा रहा है । जोखिम पूर्ण व्यवसाय की प्रकृति को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि बैंक इतना कमाए कि वे अपनी प्रारक्षित निधियों एवं स्वाधिकृत संसाधनों को बढ़ा सके । हाल ही के वर्षों में भारतीय बैंक को निबल ब्याज मार्जिन {ब्याज से आगत आय को ब्याज से आगत व्यय मे से घटाकर } कार्यशील निधियों के प्रतिशत के रूप में अथवा औसत निबल परिसम्पत्तियों के रूप में लगभग 3.2 प्रतिशत है । जो अमेरिकी बैंक के 3.5 प्रतिशत के लगभग ही है । लेकिन भारत में स्थापना व्यय तथा अन्य लागत बहुत अधिक है जबकि गैर-ब्याज आय इतनी नही है जितनी की अन्य देशों में है जिसके परिणाम स्वरूप समग्र लाभप्रदता अपेक्षा कृत कम है ।

बैंक की लाभ प्रदता नीतिगत कार्यों से जिसे हम बाध्य परिवेश

कह सकते हैं जिसे बैंक को झेलना पड़ता है पर्याप्त रूप से प्रभावित होती है परन्तु यह लाभ प्रदता परिचालनों की आन्तरिक दक्षता पर भी निर्भर है ।

भारत में बैंक को सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों द्वारा निर्धारित विभिन्न प्रतिबन्धों के तहत कार्य करना पड़ता है जिससे उनकी लाभ प्रदता प्रभावित होती है । प्राथमिक रूप से यह बैंकिंग सुविधाओं के द्रुत और, व्यापक विस्तार और, इससे सम्बद्ध लागतों प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र की आवश्यकताओं के लिए ऋण के आबंटन और, अधिगान क्षेत्रों की सहायता के लिए प्रति अनुदान के तत्वों से सम्बधित है । प्रारक्षित नकदी अनुपात और सांविधिक चल निधि अनुपात भी जिसमें बैंक की राशि का एक बहुत बड़ा भाग पहले ही निकल जाता है बैंक की लाभ प्रदता पर भारी प्रतिबन्ध लगाते है ।

हाल के वर्षों में बैक की लाभदायकता पर नीति सम्बधी प्रति-बन्धों में ढील देने के लिए विभिन्न उपाय किए गए है । संकल्पनात्मक रूप में हम इन्हे दो चरणों में बाँट सकते है । प्रथम चरण में इन उपायों का यह उद्देश्य रहा है कि प्रभावी ब्याज दरों में वृद्धिइकाकेपास रखी पत्र नकदीय शेष राशियों के ब्याज में वृद्धि भी शामिल हैसेप्रत्यक्षत: बैंक की लाभ प्रदता में सुधार किया जाए । दूसरे चरण में प्रणाली के प्रतिबन्धों को कम करने की ओर बढ़ने सम्बन्धी उपाय है और इस प्रकार बैंक को प्रतिस्पर्धात्मक रूप से अपनी दरों के निर्धारण के लिए अधिक विवेकाधिकार प्रदान करना है ।

आय उत्पादकता के दृष्टिकोण से बैंकिंग परिसम्पत्तियों की संरचना में जुलाई 1969 के पश्चात बहुत अधिक परिवर्तन आए हैं। बैंकिंग तन्त्र के कार्यों में भी भारी गुणात्मक परिवर्तन हुए है। सामाजिक बैंकिंग के क्षेत्र में हमारे बैंको को नयी नयी जिम्मेदारियाँ सौंपी गयी है। विश्व में कहीं भी आधुनिक बैंकिंग के इतिहास में इस प्रकार की मिसाल अथवा मार्गदर्शी सिद्धान्त नही मिलते। यद्यपि यह सत्य है कि ग्राहक और बैंक व्यवस्था पर उतना ध्यान नही दिया गया है जितना कि दिया जाना चाहिए फिर भी समग्र रूप से यदि देखा जाए तो हमारे बैंकिंग तन्त्र ने 1969 के पश्चात उसे सौंपी गयी नयी-नयी चुनौती पूर्ण जिम्मेदारियों को बखूबी निभाया है। सरकारी प्रतिभूतियों और प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों को दिए जाने वाले ऋणों के बहुत बड़े भाग पर तथा सार्वजनिक क्षेत्र के वसूली कार्यक्रमों पर प्रतिलाभ की बहुत ही कम दरों के कारण बैंक केवल बड़े और मझोले उद्योगों से सम्बधित उधारकर्ताओं से ही उच्चतर ब्याज दरें वसूल करते हुए अपनी लाभ प्रदता उचित स्तर पर बनाए रख सकते हैं। क्योंकि इस सम्बध में बैंकिंग तन्त्र द्वारा जिस लचीलेपन का उपयोग किया जाता रहा है वह अब बैंक ऋण का अंश संकुचित हो जाने के कारण बहुत कम हो गया है जो कि अब ब्याज की उच्चतम दरों पर उपलब्ध कराया जाता है।[23] उद्योगों में रूग्णता बढ़ती जा रही है इसलिए बैंको को औद्योगिक उधार कर्ताओं से भी रियायती दर पर ही ब्याज वसूल करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अपेक्षाकृत छोटे किन्तु आधुनिक उद्योग और व्यापार के उच्च उत्पादक क्षेत्र पर बैंकिंग तन्त्र की लाभ प्रदता की रक्षा करने के लिए

---

23. See "Reserve Bank of India Bulletin, Sept. 1984, Indian Banking Structure in Seventh Five Year Plan by Dr. Manmohan Singh

जो अतिरिक्त बोझ लादा जाता है वह आर्थिक दृष्टि से अनुत्पादक हो सकता है ।

लाभ दायकता को मापने के लिए हम बैंक के कुल आय व व्यय दोनो मदों के दो समूहों ब्याज और गैर ब्याज इन दो मदों में विभाजित कर सकते हैं । इन दोनो समूहों से बैंक बहुत अधिक प्रभावित होता है । इसमें हम सर्व प्रथम विभिन्न प्रकार की जमाओं पर दी जाने वाली ब्याज दर के व्ययों को लेते है । जमा दर बैंक के मौखिक प्राधिकारियों द्वारा निर्धारित होता है और बैंक की भूमिका केवल जमाओं की गतिशीलता तक ही सीमित रहती है । इस प्रकार व्यय की मुख्य मद बैंक के नियंत्रण से बाहर होती है । इसी प्रकार आय की तरफ भी अग्रिमों पर प्राप्त होने वाली ब्याज दर का अधिकांश भाग पूर्व निर्धारित होता है । इस प्रकार से बैंक को अपनी आय में वृद्धि के लिए बहुत थोड़ा सा क्षेत्र बचता है । हाल के वर्षों में रिजर्व बैंक ने अग्रिमों पर न्यूनतम दर निर्धारित किया है इसमें यह निर्देश दिया गया है कि बैंक न्यूनतम सीमा से अधिक ब्याज दर नही लेगी और भी वाणिज्य बैंक के पास प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को निर्धारित मात्रा में ऋण प्रदान करने के पश्चात इनकी प्रबन्ध रचना में थोड़ा सा क्षेत्र लाभ दायक विनियोगों के लिए शेष रहता है । इसी प्रकार से बैंक परिसम्पत्तियों का 38 प्रतिशत (वर्तमान समय में 30 प्रतिशत) वैधानिक तरलता अनुपात के रूप में सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोजित किया जाता है । इन सरकारी प्रतिभूतियों पर बैंक को ब्याज आय और गैर ब्याज व्यय मदों पर अधिक ध्यान देना चाहिए ।

वाणिज्य बैंक के स्थापना व्यय में भी निरन्तर वृद्धि होती जा रही है इसमें बैंक कर्मचारियों के वेतन ओवर टाइम भुगतान इत्यादि सम्मिलित है और इस मद में कर्मचारियों की भर्ती और उनकी सेवाओं का अधिक उपयोग करके कुशलतम् नीति द्वारा इस व्यय को कम कर सकते हैं ।

बैंक की कुशलता[24] का बहुत बड़ा मापक लाभदायकता है । इसका जमाओं अग्रिमो पूँजी कोषो इत्यादि में वृद्धि से गहरा सम्बन्ध है । कुल लाभ की अपेक्षा लाभदायकता अनुपात का प्रयोग अधिक श्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि यह लाभदायकता के आकार के पूरे स्तर को मापता है ।

शाह (1979)[25] ने इस दृष्टिकोण के समर्थन में कहा -

"बैंक की उपलब्धियों का परम्परागत रूप से मापन का आधार कुल आय (जिसमें ब्याज पर प्राप्त आय भी सम्मिलित है) के साथ कुल व्यय (ब्याज दर को सम्मिलित करके) बैंकिंग उपलब्धियों के लिए कोई महत्वपूर्ण सूचक नहीं होती है । जबसे ब्याज पर अर्जित आय और ब्याज पर चुकाए गए व्यय एक दिशा में प्रवृत्त हुए है इसका स्वरूप और बिगड़ा ----- । इससे बैंकर के इस विश्वास में थोड़ी वृद्धि हुई कि वे अपने व्ययों पर नियंत्रण करेक बैंक की लाभप्रदता की स्थिति में सुधार कर सकते हैं ।"

---

24. " Birla Institute of Scientific Research, Banks Since Nationalisation," New Delhi, Allied Publications, Pvt. Lt 1981. Page 47.

25- S.C. Shaha, " Bank Profitability : the Real Issues " the Journal of the Indian Institute of Bankers : Page So.3 Sept. 1979 P- 133.

रिजर्व बैंक ने अपने एक अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष दिया था कि बैंक के आकार का प्रभाव बैंक लाभदायकता पर पड़ता है । उसकी रिपोर्ट के अनुसार बैंक का आकार जितना ही बड़ा होता है उसका स्थापना व्यय कम होता जाता है, क्योंकि जैसे-जैसे बैंक का आकार बड़ा होता जाता है उसकी सेवा लागतें, ब्याज लागते अपेक्षाकृत रूप से कम होजाती जाती है । वैसे इस सम्बन्ध में कोई निर्णयात्मक प्रमाण नहीं दिया जा सकता है । परन्तु बैंक के आकार का उसकी लाभदायकता से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है । परन्तु बिरला इन्स्टीट्यूट आफ सांइंस्टिफिक रिसर्च (1981) ने अपने हाल के अध्ययन से यह निष्कर्ष दिया है " बैंक लागत कुशलता के निर्धारण में बैंक का आकार महत्वपूर्ण तत्व नहीं है ।"

बैंक द्वारा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को बहुत अधिक मात्रा में अर्थात् अपनी सबसे अधिक लाभदायकता ऋण परिसम्पत्ति का 44 प्रतिशत भाग का विनियोजन अत्यन्त निम्न ब्याज दर पर किया जाता है । इन ऋणों में बहुत अधिक जोखिम है । अतः इससे वाणिज्य बैंक की लाभदायकता बहुत अधिक प्रभावित होती है । वाणिज्य पत्रों के चलन में आ जाने से भी बैंक की लाभदायकता बहुत अधिक प्रभावित हुई हैं । वाणिज्य पत्र अल्पकाल के लिए उत्पादक क्षेत्र को अत्यन्त निम्न ब्याज दर प्रदान किए जाते हैं । व्यक्तिगत कम्पनियाँ फर्मे तथा छोटे उत्पादक भी इसमें विनियोग कर सकते हैं । इस प्रकार से कमजोर आर्थिक स्थिति वाले व्यक्तियों द्वारा ऋण पोर्ट - फोलियो के निर्धारण से बैंकिंग व्यवस्था की अल्पकालीन परिसम्पत्तियों की गुणवत्ता प्रभावित होती है ।

पिछले कुछ वर्षों से वाणिज्य बैंक के ओवर ड्यू में काफी तेजी से वृद्धि हुई है । ओवर ड्यू तथा बीमार आग्रिमों से आज बैंक की आर्थिक स्थिति बहुत खराब होती जा रही है क्योंकि इन बुरे ऋणों की क्षति पूर्ति बैंक के लाभ से ही की जाती है । जिससे वाणिज्य बैंक की लाभ प्रदता निश्चित रूप से प्रभावित हुई है । इस स्थिति से बचने के लिए बैंक को ऋण देने से पूर्व ऋणी की आर्थिक स्थिति की भली प्रकार जाँच कर लेनी चाहिए । इससे वाणिज्य बैंक की लाभ उत्पादकता की स्थिति में निश्चित रूप से सुधार होगा ।[26.]

हाल के वर्षों में बैंकिंग अर्थशास्त्री डा कृष्ण ने अपने एक अध्ययन के आधार पर बताया कि ओवरड्यू पूँजी एवं रिजर्व का गुणक हो जाता है । अप्रैल 1990 तक ओवर ड्यू कुल बैंक ऋण का 15 प्रतिशत से लेकर 4.2 प्रतिशत तक था ।

पिछले वर्षों में बैंक ऋणों की ब्याज दरें जटिल और बैंक लाभ प्रदत्ता की दृष्टि से भारी दबाव ग्रस्त हो गयी थी । अक्टूबर 1988 से बैंकों को उच्चतम ब्याज दर निर्धारण की स्वतन्त्रता दी गयी जिससे काफी समय से बैंक के लिए निर्धारित ऋण की ब्याज दरों की संरचना काफी जटिल हो गयी थी जिससे ब्याज की दरें ऋण की मात्रा के क्षेत्र की प्राथमिकता कारोबार के स्थल विशिष्ट कार्यक्रम ऋणकर्ताओं की आय आदि जैसे अनेक मानदण्डो से जुड़ी रियायती ब्याज दरों के साथ विभिन्न दरों की बहुलता इसकी विशेषता बन गयी थी । परन्तु सामाजिक उद्देश्य के प्रति हितचिन्तना के अधीन छोटे ऋणकर्ताओं और समाज के कमजोर वर्गों

---

26. See " Financial Express " New Delhi, Saturday. Dec. 8, 1990 P. 4, " Landing to priority sector hurts Banks. Profit " by Dr. K.K. Ammamya.

के लिए रियायती ब्याज के अन्तर्गत संशोधित संरचना में विभेदक ब्याज दर पर ऋण को छोड़कर सभी विशिष्ट क्षेत्र और विशिष्ट कार्यक्रम आधारित ऋण की ब्याज दरों को समाप्त कर दिया गया है । ब्याज दर की रियायत को ऋण को मात्रा से जोड़कर नयी संरचना में जहाँ पुरानी संरचना की जटिलता और बहुलता को बहुत कम किया गया है वहीं यह संरचना यह भी सुनिश्चित करती है कि समाज के कमजोर वर्गों की ऋण अपेक्षाओं को भी ध्यान में रखा जाए । 10 अक्टूबर 1990 से वाणिज्य बैंकों को अब यह अनुमति दी गयी है कि वे निम्नलिखित संवर्गों के ऋण से सम्बन्धित ब्याज दरें अपने विवेकानुसार निर्धारित करें -----

1- उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं की खरीद के लिए ऋण

2- शेयर और डिबेंचरों/बॉण्डों की जमानत पर व्यक्तिगत ऋण

3- अन्य गैर प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के व्यक्तिगत ऋण

इन उपायों से बैंक को अपनी ब्याज आय बढ़ाने का और अधिक अवसर मिलेगा जिससे वे जमा राशियों पर ब्याज दरों की उच्चतम सीमा में हुई वृद्धि के कारण आयी अतिरिक्त लागत को कुछ हद तक प्रतिसन्तुलित कर सकेंगे । इन सभी उपायों के परिणामस्वरूप कुल ऋणों के आधे से कुछ अधिक अंश ब्याज दर की उच्चतम सीमा से मुक्त हो गया है और इससे बैंक को अपनी निधियों की लागत और उन पर प्रतिलाभ में बेहतर सन्तुलन स्थापित करने में सक्षम होना चाहिए । इस सन्दर्भ में प्राप्य लक्ष्य यह रखा गया है कि जमा

ता पूर्वक सक्षम बन सके और साथ ही साथ बैंक को समाज के कमजोर वर्गों की ऋण आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए ऋण पर ब्याज की दरों को निर्धारित करने में अधिकाधिक स्वतन्त्रता देकर एक सन्तुलन कायम किया जाए ।

बैंकिंग संसाधनों का एक बड़ा भाग आरक्षित नकदी अनुपात और सांविधिक चलनिधि अनुपात के रूप में पहले ही निकल जाता है इसी प्रकार हाल के वर्षों की अपेक्षाकृत विस्तार परक राजकोषीय नीति से एक सतर्कता पूर्ण मौद्रिक नीति बनाने की आवश्यकता जगी है । जिसमें मुद्रा स्फीतिगत दबावों को नियंत्रित करने के प्रयास में उच्च आरक्षित अपेक्षाओं की व्यवस्था करना जरूरी हो गया है ।

दिसम्बर 1991 में प्रस्तुत नरसिम्हम कमेटी ने यह निष्कर्ष निकला कि इतनी अधिक उन्नति के बावजूद बैंकिंग क्षेत्र में अनेक नवीन गम्भीर समस्याएं उत्पन्न हुई है जिससे इस क्षेत्र में उत्पादकता लाभदायकता और कुशलता में निरन्तर गिरावट आती जा रही है । बैंक द्वारा प्रदान किए जाने वाले रियायती ब्याज दरों पर प्रदान किए जाने वाले ऋणों पर आगम, सरकारी प्रतिभूतियों से प्राप्त होने वाली ब्याज दर से भी कम है । कुल परिसम्पत्तियों में विनियोग का भाग निरन्तर बढ़ता जा रहा है और बैंक की सबसे अधिक आय उत्पादक और पूँजी कोष का मुख्य स्रोत ऋण परिसम्पत्ति का भाग निरन्तर कम होता जा रहा है और क्योंकि गुणवत्ता में निरन्तर गिरावट आती जा रही है ।

कमेटी के अनुसार वाणिज्य बैंक की गिरती लाभ दायकता का मुख्य

कारण इसका बढ़ता हुआ स्थापना व्यय तीव्र गति से बिना सोचे समझे शाखा प्रसारण जिसमें अनेक अलाभकर शाखाएँ भी स्थापित हो गयी है मुख्य है । शहरी एवं महानगरीय केन्द्रो में भी बैंक के कार्य करने की तकनीकी में पर्याप्त सुधार नही हुआ है । इसका कारण प्रबन्ध की कमजोरी और मजदूर संगठनों का दबाव माना गया है । बैंकोंकी आन्तरिम संरचना एवं संगठन में भी कुछ कमजोरियाँ है प्राधिकारियों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व करने की क्षमता का कम होना, अत्यन्त कठोर आन्तरिक नियंत्रण बैंक के तुलन पत्र का भ्रामक होना बैंक समाशोधन गृहों की कमी इत्यादि महत्वपूर्ण तथ्य है । शोध कार्य के दौरान यह देखने में आया कि छोटे बैंक की आन्तरित संगठनात्मक समस्याए बड़े बैक की अपेक्षा कम है क्योंकि बैंक व्यक्तिगत साख निर्णय लेने और आन्तरिक प्रबन्धन में अत्यधिक प्रशासनिक नियंत्रण और राजनैतिक हस्तक्षेप का सामना करते है । इस जर्जर व्यवस्था के कारण बैंक ~~अत्यन्त~~ विषम स्थिति में पहुंच गए हैं जिससे कि बैंक का वित्तीय स्वास्थ्य इतना गिर गया है कि यदि इसमें सुधार करने के लिए शीघ्र से शीघ्र कोई ठोस कदम नही उठाया गया तो बैंक की साख इतनी अधिक गिर जाएगी कि इस पर से जमाकर्ताओं एवं विनियोगकर्ताओ का विश्वास उठने लगेगा । इन विभिन्न समस्याओं को हल करने के लिए नरसिम्हम कमेटी ने बैंक की आन्तरिम संरचना में परिवर्तन आवश्यक बनाया ।

निर्देशित साख कार्यक्रम के सन्दर्भ में कमेटी का दृष्टिकोण है कि बैंकिंग व्यवस्था उपेक्षित क्षेत्र को वित्त उपलब्ध करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका

निभा रहे हैं । बहुत अधिक मात्रा में अनुत्पादक उधारों के बावजूद स्पष्ट है कि कृषि एवं लघु उद्योगों के विकास में बैंक साख का बहुत अधिक योगदान है । इसके लिए कुछ पुर्नपरीक्षणों की आवश्यकता है, जो वर्तमान साख कार्यक्रम की जांच करके यह पता लगाए कि जो उद्योग एवं अन्य क्षेत्र को अपने पैरों पर खड़े होने योग्य है, तथा उन्हें निर्देशित साख योजना के अन्तर्गत ऋण प्राप्त हो रहा है । उन्हें रियायती ब्याज दर पर ऋण देना बन्द कर देना चाहिए । अत: लाभदायकता को बनाए रखने के लिए साख नीति का पुर्नपरीक्षण आवश्यक हो गया है ।

वर्तमान प्रशासनिक ब्याज पर संरचना बहुत अधिक जटिल है । इस सन्दर्भ में सुखमय चक्रवर्ती कमेटी (1985) ने अपनी रिपोर्ट में ब्याज दर की संरचना को स्वतन्त्र करने की सिफारिश की । इसी प्रकार से नरसिम्हम कमेटी ने सुझाव दिया कि ब्याज दर संरचना का विनिर्माण वर्तमान ब्याज दर दशाओं को प्रतिबिम्बित करते हुए होना चाहिए ।

तरलता प्रबन्धन

प्रत्येक व्यापारिक बैंक को अपनी परिसम्पत्तियों को नकदी में तुरन्त परिवर्तित कर देने की क्षमता होनी चाहिए । बैंक अपनी जमाओं का एक भाग वैधानिक नकदी के रूप में सुरक्षित रखते हैं । बैंक की मौसमी तथा अचानक ऋण की मांग और जमाओं के उतार चढ़ाव के लिए तरलता की आवश्यकता होती है । अत: बैंक आकस्मिक रूप से उत्पन्न तरलता की आवश्यकता की पूर्ति के लिए कुछ नकदी बनाए रखते हैं ।

भविष्य की आवश्यकताओं को न जानने के कारण तरलता की मात्रा का निर्धारण बहुत कठिन होता है । तरलता को बनाए रखने के लिए बैंकिंग परिसम्पत्तियों का कुछ स्टाक बैंक अपने पास रखते हैं । स्टाक के निर्धारण के लिए जमाओं पर ऋण के अनुपात को ध्यान में रखते हैं । जब स्टाक अनुपात औसत रूप से ऊंचा उठता हुआ होता है तो बैंकर्स के उधार एवं विनियोग में काफी कमी आती है । जब ऋण अधिक चयनात्मक होते हैं, तो इसका स्तर ऊंचा होता है, जिससे साखं अधिक कठोरता से आवंटित की जाती है , और ब्याज की प्रवृत्ति बढ़ती हुई होती है । इसका ऊंचा अनुपात प्राथमिक रूप से बड़ी बैंक द्वारा तरलता के प्रबन्धन की पूर्ति के लिए उनकी योग्यता तथा बाजार से उधार लेकर परिसम्पत्तियों का समायोजन करने की योग्यता पर निर्भर करता है ।

जमा ऋण के अनुपात को तरलता में मापने के लिए बैंक परिसम्पत्तियों की आय उत्पन्न करने की क्षमता ऋणों की अन्तराल परिसम्पत्तियों पर निर्भर करती है अत: जैसे - जैसे जमा विनियोग में ऋण का भाग बढ़ता है तरलता घटती है । दूसरी ओर तरलता की मापनीयता से सम्बन्धित तरल परिसम्पत्तियों की कुल जमाओं की अथवा कुल परिसम्पत्तियों के स्टाक को प्रतिबिम्बित करता है । नकदी परिसम्पत्तियों के भाग द्वारा वैधानिक नकदी आवश्यकताओं की पूर्ति करके वास्तव में सुरक्षित ऋण की मांग और वैधानिक रिजर्व के प्रतिशत के रूप में उसे जमा के रूप में परिवर्तित कर सकते हैं ।

(अ) तरलता आवश्यकताओं का नियमन :

बैंकिंग परिसम्पत्तियों के निर्धारण के लिए अभी तक कोई पूर्ण फार्मूला विकसित नहीं हुआ है अत: तरलता की आवश्यकता बैंक की जमाओं के ऊपर ऋणों की मांग पर निर्भर करती है। तरलता की व्यवस्था करने के लिए बैंक प्रबन्धन के लिए अर्थव्यवस्था के बहुत से कारक प्रभावित करते हैं, जैसे अनियमितता, मौसमी, चक्रीय तथा नियमित मांग, अनियमित कारकों में श्रम हड़ताल, भूकम्प, बाढ़, युद्ध आदि आते हैं, जिनका कि पहले से निर्धारण नहीं होता है। सामान्यतया मौसमी ऋण कृषि क्षेत्र को दिये जाते हैं। चक्रीय तरलता की आवश्यकता अर्थव्यवस्था में कुछ नियमित अन्तराल के बाद आने वाले उतार चढ़ाव पर निर्भर करता है। जबकि नियमित रूप से तरलता की आवश्यकता दीर्घकाल में उपभोग विनियोग, बचत, जनसंख्या, श्रमशक्ति, तथा तकनीकी विकास पर निर्भर करती है।

छोटी व्यापारिक फर्में, सम्मिलित रूप से प्राथमिक रूप से बैंक पर निर्भर करती है, जो कि स्थानीय अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती हैं। अत: बैंक प्रबन्धन का उद्देश्य देश की अर्थव्यवस्था कोसमुचित रूप से विकास में अपना योगदान देना है।

(ब) बैंक की तरलता प्रबन्धन के सिद्धान्त :

तरलता प्रबन्धन के अन्तर्गत वर्तमान समय में चार अलग-अलग सिद्धान्तों को मान्यता प्रदान की गयी है:-

1- व्यापारिक ऋण

2- स्थानान्तरणीयता

3- प्रत्याशित आय

4- दायित्व प्रबन्धन ।

व्यापारिक ऋण सिद्धान्त :

यह सिद्धान्त यह दर्शाता है कि व्यापारिक बैंक की तरलता उतनी ही होगी, जितनी कि उसकी परिसम्पत्तियां अल्पकालीन ऋणों से जुड़ी रहती है । यह उपभोग की उत्पादकता के बढ़ते हुए स्तर को अच्छी स्थिति में रखने के लिए सामान्य व्यवसायों के लिए भी तरलता पर्याप्त मात्रा में प्रदान करती है । इस प्रकार के ऋणों के लिए बैंक द्वारा अपनी प्रतिभूतियों को बेचना वास्तविक क्षेत्र जैसे उपभोक्ता वस्तुओं कृषि क्षेत्र के लिए तथा दीर्घ कालीन ऋणों के लिए अनुपयुक्त होते हैं ।

इस सिद्धान्त का दर्शन यह है कि बैंकिंग नियमन के लिए यह चालू राजकीय रिजर्व की आपूर्ति सदस्य बैंक के पुर्न बट्टे के लिए करता है । इसकी परिपक्वता अवधि सामान्यतया 90 दिन की होती है। यद्यपि व्यापारिक ऋण सिद्धान्त,अर्थशास्त्रियों, नियमन प्राधिकारी और बैंके इसे प्रभावित करती रहती हैं । इस सिद्धान्त की मुख्य सीमा यह है कि देश की अर्थव्यवस्था के विस्तार में ये साख की आवश्यकता की पूर्ति में असमर्थ रहती है । इस सिद्धान्त के प्रतिबन्धों के कारण बैंक कारखानों की मशीनों, घर खरीदने, जीवनोपयोगी वस्तुओं के निर्माण तथा भूमि खरीदने के लिए ऋण देने को उपेक्षित करता है । इस प्रकार की साख की आवश्यकताओं की पूर्ति में बैंक की असफलता के कारण प्रतियोगी वित्तीय संस्थानों का उदय हुआ जैसे - बचत बैंक, बचत और संगठन ऋण, उपभोक्ता वित्त कम्पनियां और साख संगठन इत्यादि ।

यह सिद्धान्त बैंक जमाओं में स्थिरता को भी बनाये रखने में सफल रहा है । बैंक से मांग पर जमाएं निकाली जा सकती है, लेकिन सभी जमाकर्ताओं द्वारा अपने कोष एक ही समय पर निकालना हानिकारक होता है । जमाओं की यह स्थिरता कोषों के प्रसार को रोकती हैं; क्योंकि यह लम्बे समय अन्तराल को जन्म देता है । अत: यदि आर्थिक संकट के समय में यदि नकदी व्यवधानित होती है तो बैंक अपनी तरलता की स्थिति को बनाये रखना यदि असम्भव नही है तो कठिन अवश्य पाते है ।

इस सिद्धान्त की अन्तिम व सबसे महत्वपूर्ण सीमा यह है कि अल्प काल में स्वत: तरल व्यापारिक ऋण व्यापारिक बैंको को तरलता प्रदान करें । परन्तु आर्थिक मन्दी के समय में सभी व्यापारिक बैंक अपने ग्राहकों से यह आशा रखते हैं कि वे अपनी तरलता की मांग को धीमा करे । यदि ऐसा नही होता है, तो इससे समस्या उत्पन्न हो सकती है ।

स्थानान्तरणीयता सिद्धान्त :

स्थानान्तरणीयता सिद्धान्त का आधार यह है कि बैंक अपनी धारित परिसम्पत्तियों की तरलता को बनाये रखनेके साथ ही उन्हें स्थानान्तरित अथवा दूसरे उधार लेने वालो अथवा नकदी के विनियोजकों को स्थानान्तरित कर सके । यदि ऋणों का पुर्नभुगतान नहीं हो रहा है तो इससे सुरक्षित ऋण बाजार में नकदी के लिए बेचे जा सकते हैं । यदि कोषो की आवश्यकता हो तो उसे केन्द्रीय बैंक को स्थानान्तरित कर दिया जाता है । इस प्रकार व्यापारिक बैंकको चाहिए कि

वे अपनी तरलता की आवश्यकता की पूर्ति अपनी परिसम्पत्तियों को केन्द्रीय बैंक को देकरकेपरन्तु ऐसा तभी होगा जबकि केन्द्रीय बैंक परिसम्पत्तियों की पुर्नकटौती के लिए तैयार हो ।

यद्यपि स्थानान्तरणीयता सिद्धान्त में कुछ वैधानिकता है । परन्तु बैंक को " मांग पर मुद्रा" के लिए भी तरलता की व्यवस्था करनी होती है, जो कि 24 घंटे के लिए ही होते हैं, प्रतिभूतियों द्वारा एकत्रित किये जाते हैं। अत:यदि बाजार में प्रतिभूतियों की कीमत गिरती है तो बैंक को तरलता की हानि होती है । इसके ऋण पुर्नकटौती योग्य नहीं होते हैं क्योंकि इसमें से कोई मुख्य रिजर्व बैंक द्वारा उपलब्ध नहीं कराया जाता है । फेडरल रिजर्वव्यवस्था प्राथमिक रूप से , व्यापारिक बैंकिंग सिद्धान्त पर निर्भर करता है । अत: जितने अधिक समय तक बैंकें अपने पोर्ट फोलियों में बैंक स्वत: तरलता के व्यापारिक ऋणों को रखते हैं वे रिजर्व बैंक से साख प्राप्त कर सकते हैं ।

प्रत्याशित आय सिद्धान्त :

व्यापारिक बैंकिंग के प्रत्याशित आय सिद्धान्त के अन्तर्गत बैंक की तरलता नियोजित हो सकती है क्योंकि ऋणों का भुगतान उधार प्राप्त कर्ता की भविष्य की आय पर निर्भर करता है । यह सिद्धान्त तभी कार्य करता है कि जब -कि व्यापारिक बैंक की स्वत: तरलता की स्वीकारणीयता और स्थानान्तरणीयता सिद्धान्त ठीक ढंग से कार्य करते रहें । यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि सम्बन्धित

ऋणों की इच्छित बाह्यनीयता अधिकांशतया एकत्रण पर निर्भर करते हैं । यह स्पष्ट करता है कि तरलता बैंक की परिपक्वता के तरीकों से भी प्रभावित हो सकता है, जो कि ऋण तथा विनियोगों से होते हैं । अल्प कालीन व्यापारिक ऋण, व्यवसायिक ऋणों की अपेक्षा अधिक तरल होते हैं ,। इसी प्रकार से उपभोक्ता किस्त ऋणों में भी वास्तविक स्टेट ऋणों की अपेक्षा अधिक तरलता होगी ।

दायित्व प्रबन्ध सिद्धान्त :

तरलता के समायोजन का दायित्व प्रबन्धन सिद्धान्त यह दर्शाता है कि बैंक बाजार के मुख्य कोष से तरलता आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं यह दृष्टिकोण देश के मुद्रा बाजार से बहुत बड़े बैंक में ही पाया जाता है, परन्तु इसका प्रसरण बहुत तीव्रता से होता है । बैंक रिजर्व बैंक से तरलता को बनाये रखने के लिए उधार भी लेते हैं और इसे ऋणों के ऊपर भाग लेने वालों के प्रमाण पत्रों के आधार पर बेंच देते हैं। इससे बैंक की तरलता में वृद्धि होती है ।

बैंक की तरलता के स्रोत :

उच्च बाजार योग्य प्रतिभूतियाँ बैंकर्स की तरलता का एक श्रेष्ठ स्रोत होती हैं । ये प्रतिभूतियां आसानी से नकदी में परिवर्तित की जा सकती है जिन्हें हम द्वितीय रिजर्व नाम देते हैं । इस प्रकार का परिवर्तन बिना किसी प्रकार के समय के अपव्यय और मुख्य हानियों के हो जाता है । इसमें तीन मुख्य गुण होते हैं -

- उच्च गुणवत्ता
- अल्पावधि में परिपक्वता ।

- बाजारणीयता

इन परिसम्पत्तियों की परिपक्वता के संदर्भ में तरलता रिजर्व कोई निश्चित नियम नहीं बनाता है, लेकिन यह एक सामान्य मान्यता है कि परिपक्वता अवधि जितनी ही कम होगी, उतनी ही श्रेष्ठ परिसम्पत्ति होगी। इसे खरीदने वालों में मुद्रा दर जोखिम बहुत कम होता है। अतः यदि उच्च श्रेणी की बाजार योग्य प्रतिभूतियों की परिपक्वता अवधि यदि एक वर्ष या इससे कम होगी, तो इससे द्वितीयक रिजर्व जुड़ा रहता है ।

कुछ प्रतिभूतियों में उच्च गुणवत्ता तथा बाजारणीयता का गुण भी मिलता है। ट्रेजरी बिल,उधार लेने के सबसे महत्वपूर्ण उपकरण है, यह बैंक के लिएद्वितीयक रिजर्व की भाँति होता है। वास्तव में उच्च श्रेणी के बाजार योग्य बाण्डस की परिपक्वता अवधि यदि लम्बी नहीं होती है तो इससे मुद्रा बाजार में जोखिम की मात्रा में कमी आती है ।

बैंक की स्वीकारणीयता संतोषजनक रूप से द्वितीयक रिजर्व की परिसम्पत्तियों में होती है। एक व्यक्ति विशेष अथवा व्यापारिक फर्मों द्वारा जारी ड्राफ्ट पर जो कि किसी भी बैंक को, धारक को कुछ निश्चित रकम एक निश्चित समयावधि में देने का आदेश देता है तथा ये एक बैंक द्वारा स्वीकारणीय होते है। इसमें उच्च गुणवत्ता होती है तथा ये घरेलू तथा विदेशी बाजार की वस्तुओं के संग्रहण के लिए वित्तीयन करते हैं।

तरलता प्रबन्धन की स्थिति :

बैंक की तरलता की स्थिति के प्रबन्धन के लिए किसी एक तरलता सिद्धान्त

का सहारा नहीं लिया जा सकता है। व्यवहारिक दृष्टि कोण से सभी सिद्धान्त समान रूप से महत्वपूर्ण है, जिसमें से कुछ बैंक एक का प्रयोग करते है, तो दूसरे किसी दूसरे सिद्धान्त का प्रयोग करते है। बैंक द्वारा अपनी रिजर्व की स्थिति के प्रबन्धन के लिए दो रीतियों का प्रयोग किया जाता है -

1. बैंक कुल जमाओं का एक भाग अपने पास नकदी के रूप में रखकर शेष विनियोजित कर देता है, तथा नकदी के प्रबन्धन में लाभदायकता सिद्धान्त को भी ध्यान में रखता है।

2. बैंक की तरलता आवश्यकता की पूर्ति के लिए मुद्रा स्थिति का प्रबन्धन करने के लिए वैधानिक रिजर्व आवश्यकताओं का पूर्ति करने के साथ ही अपने हाथ में पर्याप्त मात्रा में सिक्के तथा करेन्सी उपभोक्ताओं की माँग की पूर्ति के लिए होता है। इससे नकदी सन्तुलन के एकत्रण से बैंकिंग व्यवस्था प्रभावित होती है। परन्तु नकदी से कोई आय प्राप्त नहीं होती है अतः इसका बैंक प्रबन्धन के धारणों में निम्नतम स्थान होता है।

तरलता के कारण ही ग्राहकों का विश्वास बैंक के ऊपर बना रहता है। बैंक के ग्राहकों को पूरा विश्वास होता है कि जब उसे वित्त की आवश्यकता होगी, बैंक उसे तुरन्त वापस कर देगा। अतः बैंक को तरल परिसम्पत्तियाँ इस लिए रखना आवश्यक होता है, यदि ग्राहक के माँग करने पर बैंक पर्याप्त वित्त उपलब्ध नहीं करवा पायेगा तो ग्राहकों का बैंक पर विश्वास कम होने लगेगा। अतः तरलता का नियम बैंक की विश्वसनीयता को बनाए रखता है। बैंकिंग के क्षेत्र में तरलता से आशय बैंक द्वारा अपनी जमाओं का कुछ भाग नकदी के रूप में रखने से है जो कि बैंक की कुल जमाओं का न्यूनतम नकदी अनुपात होता है। इंग्लैण्ड में स्थिर नकदी

अनुपात कुल जमाओं का 8 प्रतिशत होना चाहिए ।

तरल परिसम्पत्तियों की दूसरी पंक्ति में माँग पत्र मुद्रा तथा बिल आते हैं, जो कि नकदी जितने पूर्ण तरल नहीं होते है परन्तु इन ऋणों में तरलता के साथ-साथ उत्पादकता का भी गुण पाया जाता है, अत: बैंक नकदी की अपेक्षा इन परिसम्पत्तियों में विनियोग करना अधिक श्रेष्ठ समझती है। माँग पत्र ऋण तथा बिलों में कुल परिसम्पत्तियों का कम से कम 28 प्रतिशत भाग विनियोजित होना चाहिए। द्वितीय पंक्ति की तरल परिसम्पत्तियां मौसमी कारणों से भी प्रभावित होती है। इनकी अधिकतम सीमा 31-32 प्रतिशत व निम्नतम् सीमा 28 प्रतिशत होती है। इसे समय के साथ परिवर्तित किया जा सकता है । ट्रेजरी बिलों को भी इसमें सम्मिलित किया जाता है, लेकिन इसमें निम्न स्थानों से रिसाव की प्रवृत्ति पायी जाती है -

1. बहुत बड़ी औद्योगिक व वाणिज्यिक कम्पनियां ।
2. अ-बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ जैसे बीमा कम्पनी इत्यादि ।
3. विदेशी धारक ।

वाणिज्य बैंके अपनी तरल परिसम्पत्तियों (नकदी, माँग पर ऋण एवं बिलों) में तरलता का अनुपात 30 से 34 प्रतिशत तक बनाए रखती है । वाणिज्य बैंक के जमा दायित्व के कारण तरल परिसम्पत्तियों में निम्न प्रकार से परिवर्तन होता है -

1. जैसे जैसे मौद्रिक आय बढ़ती है, अधिक मात्रा में नोट चलन में आने लगते है। केन्द्रीय बैंक इसे कम करने के लिए साख नियन्त्रण की नीति अपनाता है, तो वाणिज्य बैंक की तरलता परिसम्पत्तियों के अनुपात

में कमी आती है ।

2. जैसे जैसे मौद्रिक आय बढ़ती है आयातित वस्तुओं की मांग बढ़ती जाती है। अधिक आय प्राप्त होने के कारण विदेशी निवेशकर्ता चाहते है कि देश के केन्द्रीय बैंक उन्हे अपने कोष से पर्याप्त मात्रा में वित्त उपलब्ध करवाएं । ऐसा करने के लिए या तो वह अपने कोष से सहायता करती है अथवा ट्रेजरी बिलों को खरीदती है। इससे वाणिज्य बैंक को अपनी तरल परिसम्पत्तियों का नुक्सान उठाना पड़ता है ।

3. जैसे जैसे कुल व्यक्तिगत एकत्रित परिसम्पतियां बढ़ती है लोग विभिन्न प्रकार की परिसम्पत्तियों में कुल परिसम्पत्तियों का पुर्नवितरण करना चाहते है । वे प्रत्यक्ष रूप से अधिक मात्रा में ट्रेजरी बिल एकत्र कर लेते है । दूसरी ओर अ-बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थों के कारण वे अप्रत्यक्ष रूप से कुल दायित्वों के आधार पर बहुत अधिक मात्रा में ट्रेजरी बिल एकत्र करने लगते है । इस प्रकार से बैंक की कुल तरल परिसम्पत्तियों में गिरावट आती है । अतः इस रिसाव के कारण से वाणिज्य बैंके आवश्यक तरलता अनुपात एवं मौद्रिक संस्थाओं की तरल परिसम्पत्तियों के तरलता अनुपात को निश्चित नहीं कर सकते है । इसे निम्न सूत्र[27] द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है ।

$$\text{मौद्रिक संस्थाओं द्वारा सृजित तरल परिसम्पत्तियां} \times \frac{1}{\text{आवश्यक तरलता अनुपात}}$$

27. " Modern Banking " by R.S. Sayers, Seventh Edition Chapter-Commercial Banking Elements of Policy Page - 42, 1967 Published by R. Dayal Oxford University Press 2/11, Ansari Road, New Delhi-2.

वाणिज्य बैंक का लक्ष्य लाभ प्राप्त करना होता है । वाणिज्य बैंकें अपनी परिसम्पत्तियों का विनियोजन वांछित रूप से करके ही उच्च लाभ-दायकता प्राप्त कर सकती है । इसके लिए जनता का बैंक में पूरा विश्वास हमेशा इस बात पर निर्भर करता है कि बैंक उनके द्वारा माँग करने पर तुरन्त नकदी उप-लब्ध करवा दे । अत: नकदी प्रदान करने की क्षमता ही वह तत्व है जो कि अन्त में चलकर वाणिज्य बैंक को लाभान्वित करता है । अत: तरलता एवं लाभदायकता परस्पर अन्योन्याश्रित है ।

इस प्रकार तरलता वह शब्द है जो कि बैंक के ग्राहकों के माँग करने पर नकदी में चुकाने की क्षमता का सूचक है । इस प्रकार से तरल परिसम्पत्तियाँ नकदी के सबसे अधिक निकट है । नकदी से बैंक को किसी प्राकार की आय नही प्राप्त होती है । अत: एक बैंक को आय उत्पादकता को बनाए रखने के लिए तरल परि-सम्पत्तियाँ अपने पास अवश्य रखना चाहिए ।

तरलता बनाम लाभदायकता

तरलता अनुपात कनाडा में लगभग 15 प्रतिशत बेल्जियम में 6 प्रतिशत के लगभग रहता है । जापान में अग्रिम जमा अनुपात 1990 में 42 प्रतिशत था लेकिन इस स्थिति में परिवर्तन समय के अनुसार होता रहता है जैसे कि कोरिया के युद्ध के रूकने के पश्चात अग्रिम जमा अनुपात में वृद्धि हुई क्योंकि यहाँ बैंके औद्योगिक क्रिया कलापो के विकास तथा विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए व्यय कर रही थी । जिसके परिणाम स्वरूप मार्च 1951 में अग्रिम जमा अनुपात में 82 % के लगभग वृद्धि हुई है [28] लेकिन स्काटिश बैंको का तरलता अनुपात आवश्यकताओं

28-Edna E.Ehrilish and Fronk M. Tangru Japan, ~~Banking, System~~ ed.by B. Hoggott Bechhort, 1967,PP.5-94

और नीतियों द्वारा निर्धारित होता है लेकिन वे भी बदलती हुई परिस्थितियों को प्राथमिकता प्रदान करते हैं । अतः इनका तरलता अनुपात अर्थ व्यवस्था में बदलती हुई परिस्थितियों द्वारा निर्धारित होता है ।[29] इसी प्रकार से आस्ट्रेलियाई बैंको का तरलता अनुपात बैंको तथा रिजर्व बैंक आफ आस्ट्रेलिया की पारस्परिक समझदारी द्वारा निर्धारित होता है । वे यह निर्णय करते हैं कि तरलता अनुपात एक निर्धारित अनुपात से कम नही होनी चाहिए । प्रो0 आरनोल्ड ने अपने एक अध्ययन में बताया कि रिजर्व अनुपात कुल का लगभग 14 प्रतिशत होना चाहिए । दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में तरलता अनुपात बहुत नीचा है । मलाया में बैंको के कुल रिजर्व नकदी अनुपात का औसत 6 प्रतिशत से भी कम है (यद्यपि बैंको को अपने कुल जमा अनुपात का 4 प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास आवश्यक रूप से रखना होता है) सिंगापुर में तरलता में तरलता अनुपात लगभग 5 प्रतिशत है लेकिन बैंके अपनी माँग जमाओं का डेढ़ प्रतिशत समाशोधन गृहों के पास समाशोधन सन्तुलन के रूप में रखते है । हांग कांग में रिजर्व नकदी अनुपात का औसत 4 प्रतिशत से भी कम है । लेकिन इन सभी देशों में प्रकाशित तरलता अनुपात की प्रवृत्ति का औसत 30 प्रतिशत से अधिक होता है । मलाया सिंगापुर तथा हांगकांग में यह औसत 25 प्रतिशत के लगभग रहता है ।[30]

29- Jan W.Macadomald Scottish Bank Under the Microscope, The Bankers Vol. IX. 410 April 1960 PP. 251-252.

30- David Williams, Commericaal banking in Far East. The Banker Vol. C XIII No. 448 June 1963 PP. 419.

भारत में बैंकिंग कम्पनीज अधिनियम के भाग 25 के अनुसार प्रत्येक बैंकिंग कम्पनी को अपने पास कुछ नकदी की मात्रा रखनी आवश्यक होती है। इसमें सिक्के करेन्सी और रिजर्व बैंक व दूसरी बैंको के साथ सन्तुलन सम्मिलित है। सोना व दूसरी संशोधित प्रतिभूतियाँ कुल तरलता अनुपात का कम से कम 20 % होती है। सितम्बर 1962 में रिजर्व आवश्यकताओं वाले खण्ड में संशोधन किया गया जो कि सितम्बर 1964 से प्रभावी हो गया के अनुसार 28 प्रतिशत तरलता बनाए रखना आवश्यक होता है तथा ऋणों के खाते की कुल कीमत का 1/2 प्रतिशत होता है। सितम्बर 1964 में निम्नतम तरलता अनुपात को 28 प्रतिशत निर्धारित किया गया जो कि फरवरी 1965 में बढ़ कर 30 प्रतिशत हो गया। यह दर परि-वर्तन शील है। रिजर्व बैंक आफ इण्डिया को इस तरलता अनुपात को मांग एवं समय दायित्व के अनुसार यह अधिकार दिया गया कि वह रिजर्व अनुपात 15 प्रतिशत से अधिक बढ़ा सकता है और सभी अनुसूचित वाणिज्य बैंको का तरलता अनुपात अधिकतम 40 प्रतिशत तक बढ़ा सकता है। अनुसूचित वाणिज्य बैंको का तरलता अनुपात 28 प्रतिशत निर्धारित किया गया।

विकास शील देशों में तरलता अनुपात का उचित निर्धारण मुख्य कार्य है। इसे समय की आवश्यकता के अनुसार बढ़ाया व घटाया जा सकता है लेकिन इसकी एक निम्नतम सीमा होनी चाहिए और उस निश्चित निर्धारित निम्नतम सीमा से कम तरलता अनुपात नही होना चाहिए। इन देशों में बैंकिंग व्यवसाय का विकास निरन्तर प्रगति के पथ पर जा रहा है। यह इसके लिए सुदृश्य आधार नही हो तो बैंकिंग व्यवस्था स्थिर हो जाएगी। इस समय यह मुख्य आवश्यकता है कि विकासशील देशों में तरलता अनुपात बहुत अधिक सुदृढ़ होनी चाहिए।

वाणिज्य बैंको की तरलता की अच्छी स्थिति इन देशों को मुख्य रूप से तीन प्रकार के लाभ प्रदान करेगी प्रथम सभी विकास शील देश अपने आर्थिक विकास के लिए संसाधनों की कमी का सामना कर रहे है । वे संसाधनों को प्राप्त करने के लिए बहुत ही अधिक प्रयास कर रहे है । बैंके जमाओं के गतिशीलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है । लेकिन इसके लिए जनता में बैंकिंग व्यवस्था में विश्वास उत्पन्न करने की आवश्यकता होती है । लेकिन जनता का विश्वास तभी उत्पन्न किया जा सकता है जबकि बैंको की तरलता की स्थिति वास्तव में मजबूत हो ।[31] द्वितीय अल्पकालीन माँग को पूरा करने के लिए वाणिज्य बैंक को अल्पकालीन वित्तीय कारण को प्रोत्साहित करना चाहिए । तृतीय विकास-शील देशों में साहसी चाहे वह बड़ा हो या छोटा हो पर्याप्त वित्तीय सुविधाओं की कमी का सामना करना पड़ता है । अत: तरलता की स्थिति बैंक तथा अर्थ व्यवस्था दोनो के लिए महत्वपूर्ण है ।

31- P.D. Hajela, Broblems of Monetary Policy in under developed Countries , 1969, PP. 134.

विविधिकरण

परिसम्पत्तियों को प्राप्त करने का निर्णय लेते समय बैंक अपनी सम्पूर्ण वेशी नकदी का निवेश अधिकतम आय प्रदान करने वाली परिसम्पत्ति में नही करेगा क्योंकि ये परिसम्पत्तियाँ सबसे कम तरल तथा सबसे अधिक जोखिम वाली होती है । वाणिज्य बैंक की अधिकांश निवेश पूँजी इसके जमाकर्ताओं की जमाएँ होती है । इन्हे जमाकर्ताओं के माँगने पर वापस देने का दायित्व बैंक का होता है । इसके भुगतान दायित्व को कुशलता से निभाने के लिए बैंक को विभिन्न परिसम्पत्तियों में उपस्थित आय तरलता एवं जोखिम पर उचित विचार करने के पश्चात अपने निवेश अथवा परिसम्पत्ति परिधान में विविधता लानी चाहिए । परिणामस्वरूप बैंक के परिसम्पत्ति परिधान में अत्यधिक आय प्रदान करने वाली अत्यधिक जोखिम युक्त व अतरल परिसम्पत्ति से लेकर शून्य आय प्रदान करने वाली पूर्णत: जोखिम रहित नकदी विविध प्रकार की परिसम्पत्तियाँ होगी । बैंक को अपने जमाकर्ताओं को उनकी जमाओं का आशांकित भुगतान करने तथा कठिन समय का सामना करने के लिए कुछ नकदी परिसम्पत्ति अपने पास अवश्य रखनी चाहिए क्योंकि यदि बैंक अपने पास फालतू नकदी नही रखता है तथा यदि किसी कारण से उसकी नकदी में कमी हो जाती है तो उसे कठिनाई के समय में वाणिज्य बैंक अथवा केन्द्रीय बैंक से उधार लेने के लिए बाध्य होना पड़ेगा । भले ही बैंक किसी भी स्रोत से उधार क्यों न प्राप्त करे उसे इस ऋण पर ब्याज का भुगतान करना पड़ेगा । ऐसा होने से उसकी लागतों में वृद्धि तथा उसके कुल लाभ में कमी हो जाएगी । अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए बैंक को अन्य परिसम्पत्तियों के साथ कुछ फालतू नकदी तथा कम आय प्रदान करने वाली एवं कम जोखिम वाली तरल

सहकारी बिलों जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर तत्काल बिना किसी अधिक लागत व हानि के नकदी में बदला जा सकता है । अतः उन्हें भी अपने परिसम्पत्ति परिधान में रखना चाहिए । जैसे जैसे परिसम्पत्ति पर प्राप्त होने वाली आय में नकद कोषों को प्राप्त करने की लागत की तुलना में वृद्धि होती जाती है, जैसे जैसे बैंक अपने परिसम्पत्ति पोर्टफोलियों में परिसम्पत्ति वितरण के ढाचे में इसप्रकार उपयुक्त परिवर्तनकरेगा कि कम तरल तथा अधिक आय प्रदान करने वाली परिसम्पत्तियों की राशि अधिक होती जायेगी अर्थातबैंक के नकदी कोष अनुपात में कमी होती जायेगी तथा दीर्घकालीन प्रतिभूतियों में विनियोग की मात्रा में वृद्धि होती जायेगी, जिससे कि चलन मुद्रा स्थिर रहते हुए भी कुल मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि हो जायेगी ।

बैंक की परिसम्पत्ति इस प्रकार से विनियोजित होनी चाहिए कि वह एक ही प्रकार के बाजार में अधिक पूंजी का विनियोजन न करें। इस दृष्टिकोण से बैंकिंग परिसम्पत्तियों के वितरण में विभिन्नता या विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। नकदी तथा ऋण परिसम्पत्तियों के बीच इस प्रकार से परिसम्पत्तियों का आवंटन हो कि तरलता एवं लाभदायकता में संतुलन बनाए रखा जा सके । ऋणों का वितरण भी अल्पकालीन, मध्यकालीन व दीर्घकालीन परिसम्पत्तियों के बीच उचित अनुपात में होना चाहिए । जहां अल्पकालीन ऋणों में जोखिम की मात्रा कम होती है, परन्तु तरलता अधिक होने से बैंक के लिए आकर्षक हो सकते है, परन्तु लाभदायकता के दृष्टिकोण से इसे आदर्श परिसम्पत्ति नहीं मान सकते है । मध्यमकालीन परिसम्पत्तियों से यद्यपि आय पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त होती है, परन्तु इसमें तरलता बहुत कम होती है, अतः इसमें जहाँ लाभदायकता के दृष्टि-

कोष से इसे आदर्श परिसम्पत्ति माना जा सकता है, वहीं तरलता की दृष्टि इसे बहुत अच्छी परिसम्पत्ति नहीं मान सकते है । अत: आज वाणिज्य बैंकें अपनी परिसम्पत्तियों का वितरण सामान्यतया अल्पकालीन व मध्यमकालीन परिसम्पत्तियों में ही करती है । दीर्घकालीन परिसम्पत्तियों में जोखिम की मात्रा बहुत अधिक होती है अत: वाणिज्य बैंके इस प्रकार की परिसम्पत्तियों में विनियोग की अधिकांशतया उपेक्षा करती है, परन्तु इसमें लाभदायकता सबसे अधिक होती है । बैंकिंग मुख्यत: एक लाभदायकता प्रदान करने वाला व्यवसाय माना जाता है। अत: वाणिज्य बैंके दीर्घकालीन परिसम्पत्तियों की ओर भी आकर्षित होते है, परन्तु इसमें तरलता की मात्रा शून्य होती है । अत: वाणिज्य बैंके अपनी परिसम्पत्तियों का सन्तुलित ढंग से वितरण करने के लिए अल्पकालीन, मध्यकालीन व दीर्घकालीन परिसम्पत्तियों में अपने कोष को इस प्रकार से आबंटित करती है कि तरलता, लाभदायकता व सुरक्षा के बीच समुचित सामन्जस्य हो जिससे कि विनियोग के आधारभूत सिद्धान्तों का पालन हो सके ।

विविधिकरण के मूलभूत आधारक वाक्य " सभी अण्डे एक ही टोकरीमें नही रखना चाहिए" का पालन करना चाहिए। अत: प्रतिभूतियों में विभिन्न उद्योगो से संबंधित अंश, ऋणपत्र आदि खरीदने चाहिए। इससे ऋणों के जोखिम का प्रसरण हो जाता है यदि किसी क्षेत्र विशेष व उद्योग विशेष में कुछ सामयिक कारणों से मन्दी की स्थिति आ जाती है तो बैक को अधिक मात्रा में हानि की सम्भावना काफी कम हो जाती है क्योकि दूसरे क्षेत्रों से हुए लाभ से वह इस घाटे की क्षतिपूर्ति कर लेगा । इसी विविधिकरण सिद्धान्त को अपना आधार मानकर वर्तमान समय में वाणिज्य बैंक ने म्युच्युअल फण्ड के क्षेत्र में प्रवेश किया है ।

इसमें वाणिज्य बैंके ग्राहकों की जमाओं से अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों व सभी उद्योगों के शेयर खरीदते हैं, इससे उन्हें जहां कुछ शेयरों पर अत्यधिक जोखिम व हानि की सम्भावना होती है, वहीं कुछ क्षेत्रों से उसे आशा से अधिक लाभांश प्राप्त होता है । अत: इस प्रकार की परिसम्पत्तियों में विनियोजन से बैंके विविधकरण का पालन करते हुए जहां उपेक्षित क्षेत्रों में विनियोग करके अत्यधिक जोखिम उठाती है, वहीं लाभदायक परिसम्पत्तियों में विनियोग करके अपने लाभ को बनाए रखती हैं । अत: विविध उद्योगों से सम्बन्धित अंशपत्रों तथा ऋण पत्रों में विनियोग करते समय बैंक जोखिम से बचने के लिए विशेषज्ञों से परामर्श भी लेते हैं, जिससे बैंकिंग कुशलता में वृद्धि होती है ।

वाणिज्य बैंक को अपनी अधिकांश परिसम्पत्तियां एक ही प्रकार के व्यवसाय व एक ही व्यक्ति में विनियोजित नहीं करनी चाहिए । क्योंकि इससे धन के केन्द्रीय करण को बढ़ावा मिलता है, अत: जहां जिस प्रकार से वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों में विकेन्द्रीयकरण आवश्यक है उसी प्रकार से व्यवसाय विशेष व व्यक्ति विशेष के मध्य धन का विकेन्द्रीकरण आवश्यक है, क्योंकि आर्थिक संसाधनों का केन्द्रीयकरण बैंकिंग के समाजार्थिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल है । किसी व्यक्ति विशेष अथवा व्यवसाय विशेष में विनियोगों के केन्द्रीयकरण से जोखिम की मात्रा में अत्यधिक वृद्धि होती है । अत: व्यक्तियों व व्यवसाय के बीच परिसम्पत्तियों का विकेन्द्रीयकरण आवश्यक है ।

ऋणों तथा प्रतिभूतियों का चुनाव ऐसा होना चाहिए कि वे सुरक्षित तथा अच्छी आय देने वाली हों । इस सन्दर्भ में जहां नकदी सबसे अधिक सुरक्षित एवं तरल परिसम्पत्ति है, वहीं इससे बैंक को किसी प्रकार की आय प्राप्त नहीं होती है ।

परन्तु बैंक को अपनी विश्वसनीयता बनाए रखने के लिए तथा ग्राहकों के द्वारा नकदी की आपूर्ति के लिए वाणिज्य बैंक को अपने पास रखना आवश्यक है । अल्प-कालीन परिसम्पत्तियों में मांग पर मुद्रा तथा बिलों में तरलता एवं सुरक्षा की मात्रा तो होती है, परन्तु इससे बैंक को बहुत कम आय प्राप्त होती है, जो कि बैंक के लिए पर्याप्त नहीं है । विनियोग एवं ऋणों में जहां जोखिम व उच्च लाभ विद्यमान होता है, वहीं इसमें तरलता व सुरक्षा बहुत कम होती है । परन्तु बैंक को अपनी लाभदायकता बनाए रखने के लिए इन लाभदायक परिसम्पत्तियों में विनियोग आवश्यक है। अतः वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों में विनियोग करते समय बैंकिंग के मुख्य सिद्धान्त विविधकरण एव विकेन्द्रीकरण का पालन सुरक्षा व लाभदायकता को ध्यान में रखते हुए करना आवश्यक है ।

वर्तमान समय में वाणिज्य बैंक की गतिविधियों में सुधार लाने के लिए, बैंकिंग व्यवसाय की मौजूदा स्थिति को मजबूत बनाने पर जोर दिया जा रहा है । रिजर्व बैंक की देख-रेख में बैंकों की वित्तीय स्थिति तथा लाभ को सुनिश्चित करने की दिशा में प्रयास किये जा रहे हैं। इसके अलावा परम्परागत बैंकिंग गति-विधियों में विविधता लाने की कोशिश की गयी हैं। विविधता लाने के इन प्रयासों का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना है और प्रतिस्पर्धा की क्षमता में सुधार लाना है । अनेक बैंक ने पूंजी निवेश म्युच्युअल फण्ड, आवास उपकरण, पट्टे पर देने , क्रेडिट कार्ड आदि जैसी नयी गतिविधियाँ प्रारम्भ की है।

इन नयी सेवाओं में म्युच्युअल फण्ड सम्भवतः सबसे अधिक चुनौतीपूर्ण और लाभदायक है । कम्पनियां धन के लिए अब सीधे पूंजी बाजार में जाने लगी है । इस लिए पूंजी बाजार के साथ बैंक के लेन-देन की वृद्धि की काफी सम्भावना है ।

उधम पूंजी उपलब्ध करवाना और उपभोक्ता बैंकिंग सेवा जैसी नयी गतिविधियां भी चलायी जा सकती है । इसी प्रकार से "फैक्टरिंग सेवा " भी भारतीय वाणिज्य बैंक प्रारम्भ कर रहे हैं । यह व्यवस्था विश्व के अन्य बैंक में कुशलता पूर्वक संचालित हो रही है ।

गतिविधियों में विविधता लाने से भारतीय बैंक की लाभ की क्षमता बढ़ेगी और वे विदेशी बैंक से प्रतिस्पर्धा कर सकेंगे । इसके अतिरिक्त देश में परम्परागत बैंकिंग व्यवसाय में विस्तार की भी काफी गुंजाइश है । शाखाओं के विस्तार के बावजूद अभी बहुत से ऐसे क्षेत्र बचे हुए हैं, जहांबैंकिंग व्यवस्था का अभाव है । ग्रामीण क्षेत्रों में धन के विनियोग ने बैंक के उद्देश्यों की तो पूर्ति की है । अत: वर्तमान परिवेश में बैंकिंग गतिविधियों में विविधता लाने और परम्परागत बैंकिंग कार्यों के बीच सन्तुलन कायम करना भारतीय बैंकिंग प्रणाली की सबसे बड़ी चुनौती है ।

विनियोजन नीति के अन्तर्गत विविधीकरण का अर्थ यह है कि प्रतिभूतियों को एकही स्थान पर लगाने के स्थान पर अनेक स्थानों पर लगाया जाये । विविधीकरण की नीति को उधोगों, परिपक्वता, भौगोलिक प्रतिभूतियों आदि स्थानों पर लगाया जाना चाहिए । विविधीकरण के द्वारा जोखिम को पूरी तरह से समाप्त तो नही कर सकते हैं, लेकिन कम अवश्य कर सकते हैं ।

विविधीकरण में परिपक्वता अवधि सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । इसका मुख्य लक्ष्य विनियोग पोर्टफोलियों की जोखिम दर को उतना नीचा करना है जितना ही सम्भव हो सके । परिपक्वता अवधि में सन्तुलन के साथ -2 तरलता में भी सन्तुलन बनाए रखना होता है। जब परिसम्पत्ति पोर्टफोलियों में जोखिम दर गिरने लगती है तो यह बैंक की कार्यकुशलता एवं परिपक्वता को दर्शाता है ।

बैंकिंग परिसम्पत्तियों का सुरक्षा सिद्धान्त

वाणिज्य बैंके अपनी परिसम्पत्तियों का विनियोजन करते समय अपनी परिसम्पत्तियों की सुरक्षा का विशेष ध्यान रखती है। इसके लिए वे अपनी परिसम्पत्तियों का विनियोजन केवल अच्छी कम्पनियों, व्यक्तियों व फर्मों को ही करना पसन्द करते है। कम सुरक्षित प्रतिभूतियों में विनियोग करते समय विनियोगों का चुनाव सावधानी से करना चाहिए । इसके लिए वाणिज्य बैंके कम सुरक्षित प्रतिभूतियों, एक व्यक्ति या एक उद्योग विशेष में अपने धन का अधिक भाग विनियोजित नहीं करती है अर्थात् सभी अण्डे एक ही टोकरी में नहीं रखती है, जिससे उद्योग विशेष या व्यक्ति विशेष को हानि होने पर भी वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है । वर्तमान समय में वाणिज्य बैंके सुरक्षा के दृष्टिकोण से जमानत के आधार पर ऋणदेने को प्राथमिकता दे रही है । तथा इन जमानतों के बाजार मूल्य की जांच ऋण देने के पूर्व ही कर लेती है । इसे सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण आधार माना जा सकता है । वाणिज्य बैंक की दीर्घकालीन प्रतिभूतियों में जोखिम की मात्रा काफी अधिक होती है अतः अल्पकालीन एवं अस्थायी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऋण देने को प्राथमिकता दी जाती है ।

वाणिज्य बैंके सुरक्षा दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए सस्ती साख नीति को हतोत्साहित करती है, जिससे कि फिजूल खर्ची को बढावा न मिले । ये बैंके अपने ऋण ऐसे व्यक्तियों को देना अधिक पसन्द करती है जिनकी सामाजिक स्थिति सुदृढ़ हो, जो आर्थिक दृष्टिकोण से मजबूत हो ,तथा जिनके पास कम से कम इतनी सम्पत्ति हो कि बैंक को उन परिसम्पत्तियों को बेच कर अपने ऋण वापस

मिल सके । अत्यधिक उतार चढ़ाव वाली परिसम्पत्तियों में वाणिज्य बैंक अपने धन का विनियोजन नहीं करना चाहते हैं क्योंकि इन परिसम्पत्तियों में जोखिम की अधिक मात्रा विद्यमान रहती है ।

सुरक्षा एवं लाभदायकता एक दूसरे के पूर्णत: विरोधी क्रम में आते हैं। पूर्णरूप से सुरक्षित परिसम्पत्तियों से वाणिज्य बैंक को किसी प्रकार की आय नहीं प्राप्त होती है । जिन परिसम्पत्तियों में जितना अधिक जोखिम होता है, उनसे बैंक को उतनी ही अधिक आय प्राप्त होती है । अत: वाणिज्य बैंक अपनी सुरक्षा एव सुदृढ़ता के दृष्टिकोण से अपनी परिसम्पत्तियों का विभाजन व वितरण इस प्रकार से करते हैं कि उसे तरलता, लाभदायकता एवं सुरक्षा मिले । उसकी परि-सम्पत्तियों में अधिक जोखिम न होने पर उसकी लाभदायकता में कमी आती है । नकदी मांग पर ऋण एवं बिल सुरक्षित प्रतिभूतियां समझे जाते हैं । नकदी पूर्णत: सुरक्षित प्रतिभूति है परन्तु नकदी से बैंक को किसी प्रकार की आय प्राप्त नहीं होती है । बिल तथा मांग पर ऋण द्वितीयक तरल परिसम्पत्ति है अर्थात् वे सुरक्षा की द्वितीयक पंक्ति में आते हैं । परन्तु बैंक को इनसे नाम मात्र की ही आय प्राप्त होती है। एक बैंक को अपनी विश्वसनीयता बनाए रखने तथा ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए अपनी सुरक्षा के लिए सुरक्षित प्रतिभूतियों में विनियोग आवश्यक होता है । परन्तु अत्यधिक मात्रा में सुरक्षित प्रतिभूतियां रखने से बैंक की लाभदायकता कम हो जाती है । इससे बैंक को अपना कार्य ठीक ढंग से चलाने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है । अत: इनका वितरण इस प्रकार से होना चाहिए कि लाभदायकता एवं सुरक्षा के बीच स्वस्थ सन्तुलन स्थापित किया जा सके ।

विनियोग एवं ऋण में सबसे अधिक जोखिम होता है । इनकी परिपक्वता अवधि लम्बी होती है, अत: इन परिसम्पत्तियों से बैंक की लाभ-दायकता में तो वृद्धि होती है, परन्तु इन अन्तरल परिसम्पत्तियों के सुरक्षा बहुत कम होती है । सुरक्षा के दृष्टिकोण से इन ऋणों एव विनियोगों के पीछे अब तरल परिसम्पत्तियों की जमानत को प्राथमिकता दी जाती है । सुरक्षा के दृष्टिकोण से ही बैंके पट्टे पर ऋण देने लगी है। परन्तु वाणिज्य बैंके विकास बैंकिंग में परिवर्तित होती जा रही है, अत: बैंके अपने सामाजार्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अब बिना किसी जमानत के कमजोर वर्गो एवं प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों को ऋण प्रदान किया जा रहा है जिससे बैंक की लाभदायकता एवं सुरक्षा दोनों में कमी आ रही है । बैंकिंग व्यवसाय में जोखिम वाली परिसम्पत्तियों का अनुपात बढ़ने के साथ ही लाभदायकता में भी कमी आ रही है , जो बैंकिंग व्यवसाय के लिए चिन्ता का विषय है ।

नकदी को छोड़कर सुरक्षित ऋण वह है जिसके पीछे कुछ वस्तुएं जमानत के रूप में रखी जाती हैं । जमानत के रूप में रखी जाने वाली सम्पत्ति में बाजारणीयता का गुण होना चाहिए जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर उसे आसानी से बेंचकर बैंक अपना ऋण वापस प्राप्त कर सके। बैंक द्वारा ऋणों को सुरक्षित रखने का प्रश्न उनके जोखिम को कम करने के लिए उठाया जाता है । इससे यदि उधार लेने वाला ऋणों का भुगतान करने से इन्कार कर दे अथवा ऋणों का भुगतान करने योग न रह जाए तो बैंक को कोईजोखिम न उठाना पड़े, अत: ऋणों का आवंटन सुरक्षा व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए सकारात्मक ढंग से किया जाता है और ऋणों के एवज में रखी जाने वालो धरोहर का मूल्य ऋणों के बराबर या ज्यादा होनी

चाहिए । वाणिज्य बैंके आज व्यक्तिगत साख पर भी व्यक्तियों को ऋण प्रदान करने लगी हैं । वाणिज्य बैंके सुरक्षित ऋणों को इसलिए प्राथमिकता देती हैं क्योंकि इससे वाणिज्य बैंक को किसी प्रकार का जोखिम नहीं उठाना पड़ता है ।

भारत में वाणिज्यिक बैंक की परिसम्पत्तियों में समायोजन

वाणिज्य बैंके अपनी परिसम्पत्तियों का आवंटन करते समय तरलता व लाभदायकता दोनो के मध्य सामंजस्य बनाए रखती है । एक वाणिज्य बैंक को अपनी विश्वसनीयता बनाए रखने तथा ग्राहकों के मांग पर करने पर मांग पर ऋण उपलब्ध कराने के लिए तरलता बनाए रखनी आवश्यक होती है । परन्तु अधिक मात्रा में तरल परिसम्पत्तियों अपने पास रखने में बैंको की लाभदायकता कम हो जाती है । लाभदायकता में कमी आने से बैंक को अपना कार्य ठीक ढंग से चलाने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है । अत: बैंकिंग परिसम्पत्तियों को इस प्रकार से रखा जाना चाहिए कि तरलता एवं लाभदायकता के मध्य स्वस्थ सन्तुलन स्थापित हो सके ।

राष्ट्रीयकरण से पूर्व वाणिज्य बैंके अपना अधिकांश विनियोग निजि क्षेत्र के उन उद्योगों में करती थी जिसमें उसे अधिक मात्रा में लाभदायकता प्राप्त होती थी । परन्तु आज के बदलते सन्दर्भ में देश में असमानता तथा निर्धनता को हटाने के लिए अनेक योजनाएं बनायी जा रही हैं । इसके अन्तर्गत प्राथमिक क्षेत्र के लिए ऋण अनेक प्रकार की स्वरोजगार योजनाओं के लिए वाणिज्य बैंकों को अत्यन्त निम्न ब्याज दर ऋण उपलब्ध कराना पड़ रहा है । इन ऋणों की परिपक्वता अधिक होने के कारण इसमें तरलता का अभाव होता है । इन ऋणों की ब्याज दर अत्यन्त निम्न होने के कारण लाभदायकता प्राप्त नही होती

है । इन ऋणों में जोखिम बहुत अधिक विद्यमान रहता है, इन ऋणों के ओवर -ड्यू, ऋणों को बहुत देर से चुकाना, ऋणों का दुरूपयोग आदि समस्याओं के कारण इनका जोखिम बढ़ता जा रहा है । इस क्षेत्र में परिसम्पत्तियों के विनियोजन से तरलता एवं लाभदायकता दोनों में कमी आती है । अत: वाणिज्य बैंके अत्यन्त विषम दुष्चक्र में फंस कर रह जाते हैं ।

विकास की प्रक्रिया में सर्वाधिक योगदान बैंकों का ही है । वाणिज्य बैंकें इस कम लाभदायकता एवं कम तरलता के कारण अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में फसंते जा रहे हैं । बैंकों की लाभदायकता में कमी आने से बैंकिंग विकास की उपेक्षा हो रही है ।

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया भी रिजर्व नकदी अनुपात (सी0आर0आर0) तथा वैधानिक नकदी अनुपात (एस0एल0आर0) में भी वृद्धि करता जा रहा है । दूसरी तरफ कृषि तथा स्वरोजगार योजनाओं दोनों में अपनी परिसम्पत्तियों को लगाने से बैंकों की तरलता एवं लाभदायकता दोनों में कमी आती है ।

एक बैंक हमेशा अपनी परिसम्पत्तियों के हस्तान्तरण पक्ष से सम्बन्धित नहीं होता है, बल्कि उसे अपनी तरलता एवं लाभदायकता की भी रक्षा करनी होती है, वाणिज्य बैंकों को हमेशा चुनाव की समस्या रहती है । ऋणों की समयावधि जितनी ही कम होगी तरलता की मात्रा उतनी ही अधिक होगी, लेकिन उसकी आय उत्पन्न करने की क्षमता उतनी ही कम होगी । यदि ऋण की समयावधि लम्बी है तो तरलता तो कम होगी, लेकिन यह आय अधिक मात्रा में उत्पन्न करेगी । एक बैंक अपनी परिसम्पत्तियों का वितरण सैद्धान्तिक रूप से इस प्रकार

से करती है कि बैंक पर्याप्त मात्रा में आय उत्पन्न कर सके तथा जो उधार देने वालों को भी सन्तुष्ट करने के लिए पर्याप्त तरलता बनाए रखना भी आवश्यक है । एक बैंक अपने परिसम्पत्ति पोर्टफोलियो को व्यवस्थित करते समय यह प्रतिभूतियों में तरलता एवं लाभदायकता में पर्याप्त सन्तुलन बनाए रखता है। तरलता एवं लाभ-दायकता एक दूसरे को परस्पर विपरीत दिशाओं में खींचते हैं । इसलिए समुचित रूप से न्यायपूर्ण सन्तुलन बनाए रखने के लिए अत्यन्त कुशल तथा दूर दृष्टि वाले व्यक्ति की आवश्यकता होती है ।

नकदी तथा बैंकों के भवन को छोड़कर सभी परिसम्पत्तियां आय उत्पादक होती हैं । जबकि दूसरी ट्रेजरी बिल्स तथा सरकारी प्रतिभूतियों बैंकों द्वारा धारित की जाने वाली परिसम्पत्तियों चेकों आदि द्वारा आय उपार्जित करती हैं । यदि कोई नया इश्यू (सरकार के बजटके घाटे की पूर्ति के लिए) प्राप्त होताहै । तो वाणिज्य बैंके रिजर्वबैंक के सरकारी कोष से फण्ड प्राप्त करती हैं । इन परिसम्पत्तियों में जोखिम की मात्रा बहुत कम होती है, जबकि इनकी आय उत्पादक क्षमता अधिक होती है ।

वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों के ढाँचे में तरलता एवं लाभदायकता परस्पर एक दूसरे के विपरीत क्रम में आते हैं । सभी प्रकार की परिसम्पत्तियाँ समान अनुपातमेंनहीं होती हैं । बैंक परिसम्पत्तियों को धारण करते समय अपने नकदी रिजर्व तथा तरलता रिजर्वका खास ध्यान रखती हैं । क्योंकि तरल परिसम्पत्तियों से वाणिज्य बैंकों को किसी प्रकार की आय प्राप्त नहीं होती है।

भारत में वर्तमान समय में रिजर्व नकदी अनुपात 15 प्रतिशत है । इसे प्राथमिक रिजर्व भी कहते हैं । भारत में इसका प्रयोग साख नियंत्रक यत्र के रूप में

किया जा रहा है । मांग पर ऋण तथा बिल द्वितीयक रिजर्व में अथवा तरलता की दूसरी पंक्ति में आते हैं । ये नकदी जितने ही अच्छे माने जाते हैं । क्योंकि इनकी तरलता एवं स्थानान्तरणीयता विश्वसनीय होती है । बैंक इनको अल्प सूचना पर बिना किसी प्रकार की हानि के नकदी में परिवर्तित कर सकती है । ये वाणिज्य बैंकों को थोड़ी बहुत आय भी प्रदान करती हैं । परन्तु इस प्रकार की परिसम्पत्तियों के अधिक मात्रा में रखने से बैंक की लाभदायकता बहुत कम हो जाती है ।

वाणिज्य बैंकों का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना है । यह लाभ वाणिज्य बैंकों की परिसम्पत्तियों के समुचित वितरण पर निर्भर करता है । परिसम्पत्तियों का वितरण देश के औद्योगिक, व्यवसायिक, तथा आर्थिक संरचना को प्रभावित करता है । व्यापार और उद्योग अच्छी व सुलभ मुद्रा की उपलब्धता पर निर्भर करते है । जो कि इन दिनों चेक तथा बिल मांग पर ऋण माने जाते हैं । आज इन परिसम्पत्तियों को आन्तरिक एवं विदेशी लेन देन का सरल एवं विश्वसनीय साधन माना जाता है । वाणिज्य बैंक अपने तरलता की स्थिति में परिवर्तन लाकर देश में मुद्रा स्फीति को रोकने में सहायता करते हैं । अतः ये अपनी परिसम्पत्तियों का वितरण करते समय गुणात्मक एवं परिमाणात्मक दोनों दृष्टिकोणों को ध्यान में रखती है । बैंक ऋणों का आवंटन करते समय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों के समान रूप से विकास के लिए अपना सहयोग प्रदान करती हैं ।

वर्तमान बदलते हुए सन्दर्भ में वाणिज्य बैंक अपने कुल विनियोग का लगभग 40 प्रतिशत प्राथमिक क्षेत्र में विनियोजित कर रहे हैं । कृषि क्षेत्र में बढ़ते हुए ऋणों तथा अनेक स्वरोजगार योजनाओं के कारण बैंकों की तरलता एवं लाभदायकता दोनों में परिवर्तन आ रहा है । सामान्यतया वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियां

में यदि तरलता अधिक होती है तो लाभदायकता कम होती है । और तरलता कम होने पर लाभदायकता बढ़ती है । परन्तु आज विकास की प्रक्रिया में बैंक कठिन परिस्थितियों में फंस गये हैं । वाणिज्य बैंकिंग, विकास बैंकिंग में परिवर्तित होती जा रही है । जिससे तरलता एवं लाभदायकता दोनों में कमी आ रही है । कृषि ऋण दीर्घकालीन एवं जोखिम युक्त होते हैं । अतः इससे वाणिज्य बैंकों को नाम मात्र की आय होती है । वहीं इन ऋणों के डूब जाने की भी बहुत अधिक सम्भावना होती है । वाणिज्य बैंकों के रिजर्व नकदी अनुपात एवं वैधानिक निधि अनुपात में 1970 के पश्चात से निरन्तर वृद्धि होती जा रही है । वर्तमान समय पर ये दोनों कुल मिलाकर वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों के 50 प्रतिशत से भी अधिक हो गये हैं। यद्यपि तरलता के दृष्टिकोण से इसे कुछ उचित भी ठहराया जा सकता है । परन्तु लाभदायकता के दृष्टिकोण से इससे कुछ भी आय प्राप्त नहीं होती है । अतः आज के वर्तमान सन्दर्भ में यह चिन्ता का विषय बन गया है कि वाणिज्य बैंक इतनी कम लाभदायकता परकिस प्रकार अपना व्यवसाय कुशलता पूर्वक चला सकेंगे और किस प्रकार से स्वस्थ रह पायेंगे ?

वाणिज्य बैंक की पूंजी व उनके स्रोत

वाणिज्य बैंक पूंजी कोष का प्रबन्धन परिसम्पत्तियों एवं दायित्वों सुरक्षा के लिए करते हैं । बैंक अपने वित्तीय कोषों की सुरक्षा बहुत सावधानी व दूरदर्शिता पूर्वक करते हैं । सामान्यतया बैंक अपने कुल वित्तीय कोष का 7 प्रतिशत भाग पूंजी कोष में विनियोजित करते हैं । शेष 93 प्रतिशत भाग का विनियोग बैंकिंग परिसम्पत्तियों नकदी, मांग पर मुद्रा बिल्स, विनियोग व ऋण में करते हैं। बैंकिंग पूंजी के निम्न कार्य हैं :-

1. संरक्षणात्मक कार्य :

वाणिज्य बैंक के वित्त का मुख्य स्रोत जमाएं है। बैंक जमाओं की सुरक्षा के लिए बैंक कुछ निश्चित मात्रा में पूंजी कोष अपने पास रखते हैं, इस प्रकार पूंजीकोष द्वारा बैंक जमाओं को संरक्षण प्रदान किया जाता है । जिससे जमाएं पूर्णत: सुरक्षित रह सके ।

(ब) कार्यात्मक कार्य :

पूंजी कोष के कार्यात्मक कार्य के अन्तर्गत बैंक के लिए भवन, मशीनरी व उपकरण खरीदने के लिए तथा आकस्मिक हानियों को पूरा करने के लिए पूंजी कोष की व्यवस्था इत्यादि सम्मिलित है । इसके अन्तर्गत बैंक कुल पूंजी का 22.5 प्रतिशत के लगभग रखते हैं ।

(स) विनियमक कार्य :

बैंक शाखाएं अपने स्थापना व्यय की आपूर्ति तथा बैंकिंग नियमन एवं विधायन कार्यों को पूरा करने के लिए कुछ पूंजी कोष अपने पास रखती हैं ।

वाणिज्य बैंक पूंजी के स्रोत

वाणिज्य बैंक पूंजी के मुख्य स्रोत इक्विटी पूंजी, समान्य स्टाक, रिजर्व कोष, आकस्मिक रिजर्व एवं आकस्मिक लाभांश है आकस्मिक पूंजी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बैंक सामान्यतया इक्विटी पूंजी से ही वित्त प्राप्त करते हैं । इक्विटी पूंजी की आपूर्ति इक्विटी के आगम और उत्पादकता पर निर्भर करती है। कुछ बैंकें इक्विटी पर अपने लाभांश के बराबर भुगतान करते हैं । देश के बड़े वाणिज्य बैंक वित्त की प्राप्ति के लिए देश के मुद्रा बाजार स्टाक एक्सचेंज से सीधे शेयर पूंजी प्राप्त करते हैं ।

वाणिज्य बैंक अपने जोखिम पूर्ण ऋणों की आपूर्ति के लिए अपने पास रिजर्व पूंजी रखते हैं । तथा इस हानि की क्षति पूर्ति इसी पूंजी से करते हैं ।

वाणिज्य बैंक दीर्घकालीन पूंजी की प्राप्ति के लिए स्टाक बाजार पूंजी नोट्स तथा डिबेंचरों का सहारा लेते हैं। यह बैंक की पूंजी सरंचना का दीर्घकालीन स्थायी स्रोत है । इनकी परिपक्वता अवधि समाप्त होने पर इनकी आपूर्ति पूंजी नोट्स व लाभांसों के दीर्घकालीन निर्गमों में से किया जाता है ।

पूंजी की कमी वाले बैंक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे अपने पासपर्याप्त मात्रा में पूंजी रखे । परन्तु पूंजी की पर्याप्तता निर्धारण की कोई निश्चित सीमा रेखा नहीं निर्मित की जा सकती है । क्योंकि पूंजी कोष भुगतान अनेक कारणों से प्रभावित होता है । जैसे यदि बैंक के ऋण में जोखिम की मात्रा अधिक है तो बैंक को अपने पास अधिक मात्रा में जोखिम पूंजी रिजर्व रखना होगा, जिससे कि वे ऋण के जोखिम की भर पायी कर सके । बैंकिंग व्यवस्था में पूंजी कोष के महत्व को देखते हुए बहुत से विद्वानों ने निश्चित पूंजी निर्धारित करने पर बल

दिया ।

पूँजी पर्याप्तता को मापने के लिए 1971 में कम्प्ट्रोलर मैनुअल पत्रिका के अनुसार पूँजी पर्याप्तता को मापने के लिए एक मानदण्ड निर्धारित किया जो निम्न है ------

1- प्रबन्धन की गुणवत्ता

2- परिसम्पत्तियों की तरलता

3- बैंक के आय-व्यय व ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

4- बैंक के स्वामित्व की गुणवत्ता व चरित्र

5- स्थापना व्यय

6- जमा संरचना के उतार-चढ़ाव

7- बैंक के कार्य की गुणवत्ता ।

8- बैंक की प्रतियोगितात्मक वातावरण में वित्तीय आवश्यकताओं को पूरी करने की क्षमता ।

इसमें से प्रत्येक तथ्य बैंकिंग पूँजी कोष की संरचना को प्रभावित करता है तथा वाणिज्य बैंक प्रत्येक तथ्य के जोखिम के अनुसार इन तथ्यों की अच्छी प्रकार से जांच पड़ताल करके पूँजी निर्धारित करते हैं[32]।

" बैंकिंग नियमन एवं निर्देशन व्यवहार" द्वारा स्थापित समिति" कमेटी फार इन्टरनेशनल सेटिलमेन्ट" जो कुके कमेटी के नाम से जानी जाती है, ने पूँजी

---

32. See: " Commercial Banking" Reed/Cotter/Gill/Smith. Chapter " Management of Capital Funds and safety of Banks" page-391 to 414, by Prentice Hall Inc. Anlewood Cliffs- 1976.

पर्याप्तता को बनाए रखने तथा जोखिम से बचाव के लिए कुछ तथ्य दिये हैं :-

- अन्तर्राष्ट्रीय बैंकिंग व्यवसाय की प्रतिस्पर्धा में कुशलता पूर्वक कार्य करने के लिए बैंक को अपने पास कम से कम 8 प्रतिशत पूंजी कोष अपने पास रखना चाहिए । यह लक्ष्य दो चरणों में 1990 तक 7·75 प्रतिशत तथा 1992 तक 8 प्रतिशत प्राप्त कर लिया जायेगा ।

कुके कमेटी ने बैंक पूंजी को दो भागों में विभाजित किया है -

(अ) मुख्य निर्माण कारी पूंजी: जिसमें इक्विटी पूंजी, रिजर्व कोष जो कि सुरक्षा की प्रथम पंक्ति मानी जाती है, का भाग कुल पूंजी का 50 प्रतिशत अवश्य होना चाहिए ।

(ब) बैंक की पूरक पूंजी: जिसमें अप्रकाशित रिजर्व तथा निश्चित परिसम्पत्तियों और सामान्य कीमत की प्रतिभूतियों जो कि इक्विटी तथा ऋणों दोनों के लक्षण वाले होते हैं, ये कुल पूंजी का 50 प्रतिशत होना चाहिए ।

कुके कमेटी की संस्तुतियों का दूसरा महत्वपूर्ण भाग यह है कि इसने विभिन्न प्रकार की परिसम्पत्तियों के जोखिम को कम करने का सुझाव दिया है । जोखिम की मात्रा प्रत्येक प्रकार की परिसम्पत्तियों पर निर्भर करती है । विभिन्न प्रकार की परिसम्पत्तियों के जोखिम के अनुसार पूंजी कोष में जोखिम उठाने के लिए रिजर्व रखना चाहिए । इससे बैंक जोखिम से उबार सकेगी । कुके कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में मुख्यत: बैंक के जोखिम की स्थिति तथा जमा कर्ताओं के हित की सम्भावनाओं के आधार पर बैंक की स्थिरता को बनाए रखते हुए विकास पर जोर दिया गया है ।

हम बैंक की वास्तविक स्थिति का अनुमान बैंक के वर्तमान परिसम्पत्तियों के पोर्ट फोलियों के आधार पर लगाते हैं। इसमें सबसे विषम स्थिति जोखिम प्रधान ऋणों की निरन्तर बढ़ती हुई मात्रा की है, जो कभी-कभी रिजर्व तथा विशेष परिस्थितियों में स्वयं पूंजी से प्राप्त किये जाते हैं। अतः जमाकर्ता का धन ही मुख्य रूप से अनुमानित किया जाता है।

इन समस्या ग्रस्त ऋणों की मात्रा निरन्तर बढ़ती ही चली जा रही है। एक अनुमान के अनुसार बैंक के ऋणों के पोर्ट फोलियों में इस समस्या ग्रस्त ऋण की मात्रा लगभग 10 से 15% तक है।

यह समस्या ग्रस्त ऋण सभी क्षेत्रों तथा सभी आकारों में बढ़ता चला जा रहा है। चाहे वह सार्वजनिक क्षेत्र हो या निजी क्षेत्र, चाहे वह अल्प ऋण लेने वाला हो अथवा अधिक ऋण लेने वाला हो और चाहे वह औद्योगिक व कृषि क्षेत्र हो या सेवा क्षेत्र, यदि समान नहीं तो एक निर्धारित भाग समस्या ग्रस्त ऋण बन चुके हैं। इस क्षेत्र का राजनैतिक रूप से पुनरूत्थान करना आवश्यक है।

परिसम्पत्तियों के तुलनपत्र के लिए जोखिम भार

क्रम सं0	परिसम्पत्तियों की प्रकृति	जोखिम भार का स्तर (%)
1.	हाथ में नकदी तथा केन्द्रीय बैंक के साथ सन्तुलन	Nil
2.	घरेलू केन्द्रीय सरकारों और दूसरे केन्द्रीय सरकारों को आबंटित प्रतिभूतियां।	Nil
3.	घरेलू केन्द्रीय सरकारों द्वारा पूर्णतया गारण्टेड ऋण	Nil
4.	OECD देशों के बैंकों की केन्द्रीय बैंको और सरकारों पर अधिकार	Nil

5•	विश्व बैंक तथा क्षेत्रीय विकास बैंकों के सर्तकता उद्देश्य के देशों के अधिकार ।	0 to 20
6•	(अ) घरेलू एवं विदेशी बैंकों की कम सेवायें एक वर्ष की परिपक्वता का अधिकार ।	20
	(ब) ऋणों/अधिकृत घरेलू बैंकों की गारण्टी	20
	(स) स्थायीन विदेशी करेन्सी के दायित्वों द्वारा विनियोजित विदेशी केन्द्रीय सरकारों में स्थानीय विदेशी करेन्सी के अधिकार	20
	(द) OECD देशों के बैंकों के अधिकार	Nil
7•	घरेलू सार्वजनिक क्षेत्रों और अधिकृत/ऋणों की अधिकृत गारण्टी इसी प्रकार के संस्थानों द्वारा ।	0 to 20
8•	घरेलू क्षेत्रों के ऋण जो कि स्वत: व्यवसायिक वर्ग के धारकों द्वारा संरक्षित हो ।	50
9•	(ए) निजी क्षेत्र पर अधिकार	50
	(बी) एक वर्ष से अधिक की परिपक्वता पर विदेशी बैंकों को सीमा पार अधिकारों में से ।	100
	(सी) निजी क्षेत्रों द्वारा अधिकृत व्यवसायिक कम्पनियों के अधिकार	20
	(डी) प्रतिज्ञा पत्र, प्लाट तथा दूसरी स्थायी परिसम्पत्तियाँ	4% to 20%
	(ई) दूसरी बैंकों द्वारा आवंटित पूंजीगत उपकरण के अन्तर्गत	8

आफ बैलेन्स शीट के भारित जोखिम का प्रकाशन

क्रम सं0	आफ बैलेन्स सीट के प्रकाशन की प्रकृति	प्रकाशित जोखिम (%)
1.	अल्प कालीन स्वत: तरल व्यापार से सम्बन्धित वस्तुओं से उत्पन्न समानान्तर दायित्व (जैसे साख पत्र)	20
2.	एक वर्ष से अधिक की परिपक्वता वाली अन्तर्लिखित पुर्ननियोजित सुविधाएं (भारतीय सन्दर्भ में भुगतान की गारण्टी के अन्तर)	50
3.	भविष्य, आशाएं तथा स्वेपस जैसे सन्दर्भ	20 to 50

भारतीय बैंको की मुख्य परिसम्पत्तियाँ (घरेलू क्रियाओं में)

परिसम्पत्तियां	कुल परिसम्पत्तियां	भारित जोखिम	पूंजी की आवश्यकताएं
1. हाथ में नकदी तथा दूसरी बैंकों के साथ	15	Nil	Nil
2. विनियोग	32	Nil	Nil
3. अग्रिम	48	10 से 100%	8%
4. प्रतिज्ञा पत्र	1	Nil	Nil
5. दूसरी परिसम्पत्तियाँ जैसे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा की आवश्यकता ब्याज को छोड़कर, अन्तर्बैकिंग समायोजन इत्यादि।	4	Nil	Nil

पर्याप्तता के सन्दर्भ में कुक कमेटी के निर्देशों का कार्यान्वयन

बैंक का नाम	बैंक आफ इण्डिया	पंजाब नेशनल बैंक	बैंक आफ बड़ौदा	कनारा बैंक	सिण्डीकेट बैंक	यूको	भारतीय बैंक		स्टेट बैंक आफ इण्डिया
1• स्वयं के कोष :	164	192	160	242	76	103	72	91	524
पूंजी	84	100	68	42	42	90	37	65	150
रिजर्वस	80	92	92	200	34	13	35	26	374
2• कुल परिसम्पत्तियां	11400	10150	9500	9600	5700	5750	4800	5150	42100
3• पूंजी/परिसम्पत्ति अनुपात	1•4%	1•6%	1•7%	2•5%	1•3%	1•6%	1•5%	1•6%	1•20%
4• पूंजी/जोखिम भारित परिसम्पत्तियों का अनुपात आफ बैलेन्स शीट की मदों को मिलाकर	3•6%	4•6%	4•1%	6•1%	2•6%	4•3%	3•3%	3•9%	3%
5• पूंजी/भारित परिसम्पत्तियों का अनुपात ओ०बी०एस०रहित	2•7%	4•3%	3•6%	4•7%	2•4%	4•1%	3•0%	3•5%	1•1%
6• संस्थापित पूंजी	80	–	17	–	50	–	96	14	1000

आवश्यकता जैसा कि 31 दिसम्बर 1987 को प्राथमिक पूंजी को मिलने पर आवश्यकता का 4%

(करोड़ में)

Note : Figures ratio under column 4,5,6, are only approximate estimates based on the information disclosed in balance sheets actuals may very by 10 to 15%.

Source : The Economic Times : New Delhi, Thursday August 31, 1989, Page Seven.

सार्वजनिक क्षेत्र की बैंक की वर्तमान पूंजीगत स्थिति

भारतीय सार्वजनिक वाणिज्य बैंकें वर्तमान समय में पूंजी की कमी का सामना कर रहे हैं, जिसका मुख्य कारण बैंक परिसम्पत्तियों की रूग्ण स्थिति है । बैंक के बढ़ते ओवर ड्यू एवं खराब ऋणों की क्षतिपूर्ति बैंक को अपने कोष से करनी पड़ती है, जिससे बैंक की पूंजीगत स्थिति दिन प्रतिदिन खराब होती जा रही है ।

लन्दन की पत्रिका ने पूंजी के आकार के आधार पर एक सूची तैयार की, जिसमें विश्व की 1000 बैंक में केवल आठ भारतीय बैंकें सम्मिलित थी, जिसमें से 5 वाणिज्य बैंके थी । भारतीय बैंकों में पूंजीगत स्थिति के आधार पर स्टेट बैंक आफ इण्डिया का सबसे ऊंचा स्थान था, उसका विश्व में 333वां स्थान था, उसके पश्चात कनारा बैंक का 532वां स्थान बैंक आफ इण्डिया का 594वां स्थान, पंजाब नेशनल बैंक का 856वां स्थान और बैंक आफ बड़ौदा का 905वां स्थान था ।

इन पांच बैंक में कनारा बैंक की पूंजी परिसम्पत्ति अनुपात मार्च 1990 में सबसे ऊंचा 3.25 प्रतिशत था । तीन बैंके जिसमें स्टेटबैंक आफ इण्डिया भी सम्मिलित है का पूंजी परिसम्पत्ति अनुपात 2 प्रतिशत से भी कम था ।

भारतीय वाणिज्य बैंक की पूंजी परिसम्पत्ति अनुपात 5.05 प्रतिशत से से 1.2 प्रतिशत के बीच रहा है। मार्च 1990 में 28 सार्वजनिक क्षेत्र की बैंक में से 19 बैंक की पूंजी परिसम्पत्ति अनुपात 2 प्रतिशत से कम रहा है जिसमें से युनाइटेड बैंक आफ इण्डिया का सबसे ऊंचा और स्टेट बैंक आफ इन्दौर का सबसे नीचा अनुपात रहा है ।

काफी नीचा है जो कि इनकी परिसम्पत्तियों में पूंजी की कमी की गम्भीरता को प्रकट करता है । परन्तु निजी क्षेत्र के बैंक पूंजी की आवश्यकता की पूर्ति इक्विटी द्वारा पूरी करते हैं, क्योंकि निजी क्षेत्र के बैंकों को बड़े औद्योगिक समूहों द्वारा संरक्षण प्रदान किया जाता है ।

हाल ही में रिजर्व बैंक ने बैंकिंग उद्योग में नरसिंहम कमेटी की रिपोर्ट को लागू करने का फैसला किया है । इन्होंने अपनी संस्तुतियों में पूंजी पर्याप्तता की व्यवस्था करने और बैंक को उनके बुरे ऋणों से बचाव के लिए सुझाव दिया है । "बैंक शाखाओं को अपने कार्य करने के लिए अधिक स्वायत्तता प्रदान करने तथा उन्हीं बैंकों को नयी शाखाएं खोलने की अनुमति प्रदान की जायेगी, जिसके पास पर्याप्त मात्रा में पूंजी है," की सिफारिश की गयी ।

नरसिंहम कमेटी ने वासल कमेटी की संस्तुतियों के अनुसार सुझाव दिया है कि बैंक की कुल परिसम्पत्तियों का केवल 8 प्रतिशत जोखिम आधारित रखना होगा । इसी सन्दर्भ में सभी वाणिज्य बैंकों को मार्च 1994 तक 8 प्रतिशत पूंजी पर्याप्तता प्राप्त करने का सुझाव दिया गया है।

तृतीय अध्याय - आंकड़ों का एकत्रण

आंकड़ों का एकत्रण

वाणिज्य बैंक विभिन्न प्रकार की वित्तीय सेवाएँ प्रदान करने वाला व्यवसायिक उद्यम है । इस उद्यम के दीर्घकाल तक कुशलता पूर्वक संचालित होने रहने के लिए आवश्यक है कि बैंक लाभदायकता एवं कुशलतापूर्वक कार्य करे । वर्तमान समय में वाणिज्य बैंक द्वारा समाजार्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए ऋण का प्रवाह प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र की ओर जिसमें कृषि छोटे व ग्रामीण उद्योग छोटे परिवहन चालकों, छोटे व्यवसायियों और समाज के कमजोर वर्गों विशेषकर गरीबी रेखा से नीचे रहकर जीवनयापन करने वालों के लिए निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है । इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ऋण देते समय बैंक अपने मूलभूत सिद्धान्त लाभदायकता की उपेक्षा करते हैं, जिससे बैंक का वित्तीय स्वास्थ गम्भीर रूप से प्रभावित हो रहा है । अत: बैंकिंग परिसम्पत्तियों एवं आय-व्यय की 1951 से लेकर 1990 तक की स्थिति के आधार पर बैंकिंग संरचना को ज्ञात करने के लिए प्रस्तुत शोध कार्य का प्रारूप निर्मित किया गया है । इस स्थिति के मूल्यांकन हेतु अनौपचारिक मानकों का प्रयोग किया गया है तथा वस्तु स्थिति का यथासम्भव सैद्धान्तिक व व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए विषय सामग्री एकत्रित की गयी है ।

सांख्यकीय सूचनाओं एवं संमकों पर आधारित तालिकाओं एवं उनके सांख्यकीय निर्वचन की प्रक्रिया में कुछ सामान्य निष्कर्ष ज्ञात किए गए है तथा विशिष्ट प्रकरणों में विशिष्ट कारकों एवं परिमापों का अभिज्ञान करने का प्रयास

किया गया है । निर्वचन की प्रक्रिया के पूर्व कुछ भ्रामक सन्देहास्पद तथा विवादास्पद स्थलों पर अनुसंधित्सु ने अपने विवेक का समुचित प्रयोग करते हुए सांख्यिकीय परिणामों तथा इतर परिणामों में संगति की स्थापना का प्रयास किया है ।

इस प्रकर संशोधित परिमार्जित तथा औचित्यपूर्ण निष्कर्षों एवं परिणामों की भूमिका के साथ इस मूल्यांकन के अर्न्तगत परिसम्पत्तियों से सम्बन्धित निम्नलिखित प्रमुख आंकड़ों का एकत्रण किया गया ------

(अ) वाणिज्य बैंक परिसम्पत्तियों कीस्थिति

1- नकदी परिसम्पत्ति मात्रा व अनुपात

2- विनियोग परिसम्पत्ति मात्रा व प्रतिशत

3- माँग पर मुद्रा परिसम्पत्ति मात्रा व प्रतिशत

4- बिल परिसम्पत्ति मात्रा व प्रतिशत

5- ऋण परिसम्पत्ति मात्रा व प्रतिशत

6- ऋणों का क्षेत्रीय वितरण व प्रतिशत

7- प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के अग्रिम मात्रा

8- प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को अग्रिम प्रतिशत

9- वैभिन्नित ब्याज दर योजना के अर्न्तगत अग्रिम की मात्रा व प्रतिशत

14• सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का पूंजी परिसम्पत्ति अनुपात वर्तमान स्थिति

15• सार्वजनिक क्षेत्र के वाणिज्य बैंकों की आय-व्यय संरचना के कार्यकारी परिणाम ।

सारिणी संख्या - 3.1

वाणिज्य बैंक का रिजर्व नकदी अनुपात एवं वैधानिक तरलता अनुपात

(करोड़ रू0 में)

वर्ष	रिजर्व नकदी अनुपात		वैधानिक तरलता अनुपात
	प्रतिशत	राशि	%
1951	10•99	303	35•26
1952	10•15	306	36•51
1953	9•12	321	38•17
1954	9•62	339	37•77
1955	8•69	370	36•94
1956	8•70	378	37•02
1957	8•00	359	32•08
1958	8•90	384	29•02
1959	8•00	564	36•50
1960	6•80	724	40•60
1961	6•70	558	32•00
1962	6•40	601	31•30
1963	6•20	592	29•00
1964	6•50	639	28•00
1965	6•30	718	27•80
1966	5•94	716	27•50
1967	5•70	967	25•10
1968	6•30	1054	24•30
1969	6•65	1040	22•90

Source: Statistical tables Relating to Banks in India. various issues, R.B.I. Bombay.

वाणिज्य बैंक का रिजर्व नकदी अनुपात एवं वैधानिक तरलता अनुपात

(करोड़ रु0 में)

वर्ष	रिजर्व नकदी अनुपात	वैधानिक तरलता अनुपात	
	प्रतिशत	राशि	%
1970	6•34	1209	22•59
1971	6•49	1478	22•83
1972	5•76	1962	24•67
1973	8•46	2127	22•70
1974	7•82	2569	23•32
1975	6•56	4271	22•56
1976	6•40	4607	32•50
1977	8•50	5536	31•50
1978	9•60	7897	35•60
1979	11•80	9109	33•70
1980	13•40	10619	33•40
1981	13•00	15141	34•70
1982	11•90	18334	35•70
1983	14•40	21246	35•10
1984	11•00	28149	39•00
1985	15•31	29927	85•00
1986	16•00	37180	36•80
1987	16•10	46504	39•40
1988	16•90	53991	38•70
1989	16•30	54662	39•00
1990	15•31	74078	40•14

Source: Statistical Tables Relating to Banks in India, various issues, R.B.I. Bombay.

भारतीय वाणिज्य बैंक का विनियोग

विनियोग जमा अनुपात

(करोड़ रू0 में)

वर्ष	सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोग	अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में विनियोग	विनियोग तथा अनुपात
1951	303•48	-	35•26
1952	306•34	-	36•51
1953	321•29	-	38•17
1954	339•74	-	37•77
1955	370•71	-	36•94
1956	359•35	-	32•80
1957	384•65	-	29•20
1958	564•90	-	36•50
1959	724•64	-	40•60
1960	632•15	-	39•60
1961	558•58	-	32•00
1962	601•39	-	31•30
1963	592•76	-	29•00
1964	639•69	-	28•00
1965	718•18	-	27•80
1966	716•42	-	27•50
1967	967•30	-	25•10
1968	1054•61	-	24•30
1969	1040•73	-	22•94

Source: Statistical tables relating to Banks in India, various issues, R.B.I. Bombay.

सारिणी संख्या - 3.4

भारतीय वाणिज्य बैंक का विनियोग

विनियोग जमा अनुपात

वर्ष	सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोग	अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में विनियोग	विनियोग जमा अनुपात
1970	1209·70	-	22·59
1971	1478·84	-	22·83
1972	1962·05	-	24·67
1973	2127·41	-	22·70
1974	2569·78	-	23·32
1975	2971·30	1300·75	22·56
1976	3283·00	1324·00	32·50
1977	3930·00	1606·00	31·50
1978	5907·00	1990·00	35·60
1979	6621·00	2488·00	33·70
1980	7429·00	3190·00	33·40
1981	10157·00	4984·00	34·70
1982	12078·00	6256·00	35·70
1983	13473·00	7772·00	35·10
1984	18714·00	9435·00	39·00
1985	18924·00	11003·00	35·70
1986	23769·00	13411·00	36·80
1987	30517·00	15987·00	39·40
1988	35881·00	18110·00	38·70
1989	35815·00	18847·00	39·00
1990	49724·00	24354·00	40·14

Source: Statistical tables relating to Banks in India, various issues R.B.I. Bombay.

सारिणी संख्या - 3.5

वाणिज्य बैंक परिसम्पत्तियों में "मांग पर मुद्रा" परिसम्पत्ति का विवरण

(करोड़ रु0 में)

वर्ष	मांग पर मुद्रा	कुल परिसम्पत्ति का प्रतिशत
1951	10·40	1·26
1952	17·26	2·22
1953	15·07	1·81
1954	15·82	2·06
1955	15·62	2·01
1956	16·13	1·63
1957	13·11	1·31
1958	34·91	3·45
1959	48·14	4·26
1960	32·14	2·21
1961	20·78	1·19
1962	37·55	1·95
1963	38·78	1·90
1964	36·89	1·61
1965	36·76	1·42
1966	42·00	1·92
1967	41·37	1·30
1968	49·91	1·40
1969	30·15	0·79

Source: Statistical tables relating to Banks in India, various issues, R.B.I. Bombay.

आरेख संख्या - 3·6

वाणिज्य बैंक परिसम्पत्तियों में माँग पर मुद्रा परिसम्पत्ति

का विवरण

(करोड़ रु० में)

वर्ष	माँग पर मुद्रा परिसम्पत्ति	कुल परिसम्पत्ति का %
1970	18•02	0•42
1971	36•00	0•69
1972	86•00	1•30
1973	36•00	0•46
1974	157•00	1•76
1975	196•00	1•89
1976	214•00	1•51
1977	154•00	0•87
1978	242•00	1•09
1979	192•00	0•71
1980	206•00	0•65
1981	386•00	0•88
1982	670•00	1•30
1983	735•00	1•21
1984	681•00	0•94
1985	1728•00	2•02
1986	2274•00	2•45
1987	1782•00	1•65
1988	1519•00	1•20
1989	3106•00	2•41
1990	4510•00	2•15

Source: Statistical tables relating to Banks in India, various issues R.B.I. Bombay.

वाणिज्य बैंक की बिल परिसम्पत्ति का वितरण

(करोड़ रू0 में)

वर्ष	देशी बिल खरीदे गए एवं भुनाए गए		विदेशी बिल खरीदे गए एवं भुनाए गए		कुल बिलों का प्रतिशत
	मात्रा	प्रतिशत	मात्रा	प्रतिशत	
1951	22	100	—	—	2•76
1952	38	100	—	—	4•96
1953	51	100	—	—	6•17
1954	58	68•73	26	31•27	11•05
1955	74	63•26	43	37•74	14• .5
1956	74	63•26	43	36•74	1[illegible]•30
1957	105	67•78	50	32•22	15•65
1958	116	69•14	52	30•86	16•57
1959	93	70•19	39	29•81	11•81
1960	103	71•65	40	28•35	9•97
1961	159	76• 4	49	23•60	11•95
1962	180	78•18	48	21•17	11•92
1963	222	79• 8	56	20•15	13•65
1964	231	78• 6	65	21•94	12•97
1965	261	77•93	74	22•07	12•99
1966	252	80•74	60	19•26	14•21
1967	410	75•81	130	24•19	17•08
1968	437	72•68	164	27•32	16•87
1969	463	77•44	135	22•56	15•87

नोट : 1953 तक देशी बिलों व विदेशी बिलों को संयुक्त रूप से दर्शाया जाता था ।

Source : Various Issues of Trend and Progress of Banking in India R.B.I, Bombay.

वाणिज्य बैंक की बिल परिसम्पत्ति का विवरण

(राशि करोड़ रु० में)

वर्ष	देशी बिल: खरीदे गए – मात्रा	देशी बिल: खरीदे गए – प्रतिशत	देशी बिल: भुनाए गए – मात्रा	देशी बिल: भुनाए गए – प्रतिशत	विदेशी बिल: खरीदे गये – मात्रा	विदेशी बिल: खरीदे गये – प्रतिशत	विदेशी बिल: भुनाए गए – मात्रा	विदेशी बिल: भुनाए गए – प्रतिशत	बिल का अनुपात
1970	728	32·95	–	–	150	17·5	–	–	20·75
1971	781	32·92	–	–	150	17·09	–	–	18·15
1972	779	81·12	–	–	181	18·88	–	–	14·58
1973	973	77·48	–	–	282	22·52	–	–	15·02
1974	★1196	79·84	–	–	★320	21·11	–	–	16·87
1975	871	40·81	931	38·9	317	14·97	114	5·53	20·49
1976	958	40·76	894	38·04	315	13·45	182	7·75	15·59
1977	627	34·59	529	29·96	399	22·64	208	11·80	10·03
1978	956	42·95	620	27·8	433	19·40	222	9·45	10·05
1979	1030	41·46	636	25·66	550	22·14	268	10·76	9·20
1980	1122	30·08	705	19·9	669	17·93	234	5·27	8·59
1981	1357	41·15	919	27·87	743	22·53	278	8·43	7·54
1982	1955	46·97	1145	29·99	671	17·0	278	7·03	7·69
1983	1977	42·57	1356	32·56	990	15·53	349	8·34	6·89
1984	2032	42·9	1489	31·42	805	16·99	411	8·68	6·57
1985	2021	41·95	1331	29·60	776	17·26	369	8·19	5·23
1986	1983	39·7	1636	32·76	952	19·06	423	4·47	5·39
1987	2219	36·9	1850	30·82	1256	20·92	679	11·29	5·63
1988	2492	33·8	2524	34·24	1582	21·46	774	10·50	5·82
1989	2271	32·3	2049	29·20	1715	24·43	984	14·02	5·46
1990	3030	33·02	2515	28·3	2454	26·32	1743	12·10	6·23

★ नोट:- 1974 से पहले खरीदे गये एवं भुनाये गये बिलों को एक साथ दर्शाया जाता था।

SOURCE:- R.B.I. Bulletin (various issues).

सारिणी संख्या - 3.8

वाणिज्य बैंक की ऋण परिसम्पत्ति का विवरण

वर्ष	ऋण की मात्रा (करोड़ रु० में)	कुल परिसम्पत्ति में ऋण का प्रतिशत	ऋण जमा अनुपात
1951	523	49.73	63.48
1952	461	46.16	59.61
1953	442	44.73	53.21
1954	468	39.50	61.15
1955	514	37.80	63.02
1956	458	40.47	53.60
1957	632	45.66	63.00
1958	781	31.88	71.40
1959	890	39.43	67.70
1960	899	40.42	58.10
1961	1319	48.16	75.60
1962	1407	48.43	73.20
1963	1588	49.25	77.80
1964	1816	50.92	79.50
1965	2033	51.49	78.70
1966	2006	50.39	77.17
1967	3031	50.82	78.60
1968	3396	51.13	78.3
1969	3560	53.35	78.4

Source:- Statistical tables relating to Banks in India, various issues, R.B.I. Bombay.

वाणिज्य बैंक की ऋण परिसम्पत्ति का विवरण

वर्ष	ऋण की मात्रा (करोड़ रु० में)	कुल परिसम्पत्ति में ऋण का प्रतिशत	ऋण जमा अनुपात
1970	4220	49·9	78·82
1971	4765	51·8	73·57
1972	5604	53·68	70·41
1973	6822	52·38	72·80
1974	8171	50·20	74·15
1975	10189	48·47	77·37
1976	10877	43	76·80
1977	13173	49·1	75·00
1978	14939	43·66	67·30
1979	17795	44·59	65·90
1980	21546	43·99	67·80
1981	29681	43·38	67·90
1982	35493	43·41	69·10
1983	41294	42·70	68·20
1984	48439	42·49	67·20
1985	53860	41·73	63·00
1986	60551	39·36	[illegible]0·00
1987	70536	37·25	59·80
1988	80123	37·38	57·50
1989	84719	36·83	60·50
1990	108935	38·43	58·97

Source:- Statistical tables relating to Banks in India, various issues, R.B.I. Bombay.

कुल बैंक ऋणों का क्षेत्रीय वितरण

वर्ष	उद्योग		वाणिज्य		कृषि		व्यक्तिगत एवं व्यवसायिक		अन्य दूसरे		कुल बैंक ऋण	
	राशि	%	मात्रा	%	मात्रा	%	मात्रा	%	मात्रा	%	मात्रा	प्रतिशत
1951	194•3	33•5	305•8	52•8	13•0	2•2	42•5	7•3	24•2	4•2	579•7	100
1952	178•8	35•1	237•5	46•1	21•1	4•1	39•6	7•8	31•8	6•2	508•8	100
1953	182•3	36•4	272•5	49•9	9•5	1•8	48•2	8•8	35•6	6•5	546•2	100
1954	190•9	34•3	277•9	49•9	4•5	0•8	47•6	8•5	36•1	6•5	557•0	100
1955	221•0	34•3	323•2	50•1	11•3	1•8	53•4	8•6	34•1	5•3	644•9	100
1956	279•1	36•2	281•0	36•5	15•6	2•0	71.95	9•4	57•68	7•4	770•23	100
1957	250•77	32•1	301•55	38•6	18•75	2•4	80•74	10•3	129•68	16•6	781•23	100
1958	360•45	40•5	329•85	36•5	16•02	1•8	81•88	9•2	160•8	12•0	890•00	100
1959	325•50	31•6	410•90	39•9	27•81	2•7	75•19	7•3	100•94	9•8	1030•00	100
1960	351•35	29•6	426•10	35•9	78•38	6•6	93•77	7•9	119•88	10•1	1187•00	100
1961	663•70	50•8	373•2	28•6	5•4	0•4	35•1	2•7	87•9	6•7	1306•17	100
1962	881•2	58•43	406•2	26•6	37•5	2•48	75•2	4•9	107•6	7•1	1508•00	100
1963	981•6	58•04	432•3	25•5	10•3	0•60	89•6	5•3	176•2	10•4	1690•00	100
1964	1141•0	59•06	510•5	26•6	36•5	1•9	130•5	6•8	97•6	5•1	1915•00	100
1965	1259•0	58•9	537•2	25•11	45•3	2•1	165•6	7•7	132•1	6•2	2138•00	100
1966	1511•3	64•0	577•1	24•4	5•0	0•2	190•5	8•1	63•2	2•7	2360•70	100
1967	1747•9	64•3	526•6	19•4	9•5	0•4	211•1	7•8	174•9	6•4	2717•20	100
1968	2067•5	67•5	587•6	19•2	67•5	2•2	198•0	6•4	144•5	4•7	3064•30	100
1969	3060•0	68•5	673•5	18•2	88•3	3•2	265•0	7•4	365•2	3•7	3560•00	100

Source : Various Issues of R.B.I Bulletin .

कुल बैंक ऋणों का विवरण

(करोड़ रु० में)

वर्ष	उद्योग		वाणिज्य		कृषि		व्यक्तिगत व व्यवसायिक		अन्य दूसरे		कुल बैंक ऋण	
	राशि	%	राशि	%	राशि	%	राशि	%	राशि	%	राशि	%
1970	2610	63·5	712	17·3	291	7·1	131·46	3·2	495	12·1	4108	100
1971	2833	58·6	8·89	18·4	4·5	9·3	116·26	2·4	·46	11·3	48·34	100
1972	3053	57·6	924	17·4	360	6·8	93	1·8	963	17·2	5300	100
1973	3490	55·1	1176	18·6	572	9·0	204	3·2	891	14·1	6333	100
1974	4555	56·9	1396	17·5	709	8·9	289	3·6	1050	13·1	7999	100
1975	5095	56·5	1500	16·7	969	10·8	319	3·9	1128	12·5	9011	100
1976	5713	48·9	3115	26·7	1214	10·4	356	3·0	1280	11·0	11678	100
1977	6241	46·4	3828	28·4	1400	10·4	401	3·0	1582	11·8	13457	100
1978	7610	47·7	4198	26·3	1961	12·3	486	3·0	1716	10·7	15961	100
1979	9863	47·8	4751	23·0	1929	14·2	1098	5·4	9187	9·6	20638	100
1980	11555	48·8	4653	19·7	3722	15·7	1337	5·6	2460	10·2	23674	100
1981	14048	49·5	4667	16·4	4863	17·1	1764	6·3	3040	10·3	28392	100
1982	16376	48·7	6336	18·7	5639	16·6	2034	6·0	3512	10·4	33897	100
1983	13276	38·5	2353	6·8	5275	15·3	7047	20·4	3576	10·4	34491	100
1984	14621	36·2	2343	5·8	6144	15·2	8755	21·7	4536	11·2	40421	100
1985	15998	33·3	2651	5·5	7657	16·0	10750	22·4	5120	10·7	47953	100
1986	22646·87	32·1	5996·84	8·5	11993·67	17·0	18625·46	26·4	11288·15	16·0	70551	100
1987	20912·10	26·1	8027·68	22·5	15784·23	19·7	22835·06	28·5	2563·94	3·2	80123	100
1988	2132	15·0	3908·07	28·8	12534·00	18·4	25901	20·0	2459	17·8	137104	100
1989	28497·52	18·6	4626·19	22·6	26965·49	17·6	41367·5	27·0	24820·51	16·2	153213	100
1990	35330·73	20·5	4929·67	28·6	27230·51	15·8	37226·52	21·6	28436·93	16·5	172345	100

SOURCE : Report on currency and finance. Various issues.

प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को अग्रिम

(करोड़ रुपये में)

वर्ष	प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को अग्रिम						अप्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र	कुल
	प्रत्यक्ष	अप्रत्यक्ष	कुल	लघु उद्योग	दूसरे	कुल		
1970	240	160	400	469	144	1013	3439	4452
1971	263	132	395	545	163	1103	3949	5052
1972	310	175	485	645	195	1326	4233	5559
1973	423	195	618	859	277	1754	5308	7062
1974	539	242	718	1017	323	2121	5663	7784
1975	725	299	1024	1147	438	2609	6329	8938
1976	1003	332	1335	1421	639	3395	9817	13212
1977	1260	391	1651	1706	780	4137	10713	14850
1978	1665	571	2236	2156	1013	5405	12403	17808
1979	2005	558	2563	2323	1063	5949	14933	20882
1980	3362	939	2915	2715	1351	6981	14565	21546
1981	3546	1021	3779	3400	1773	8952	17432	26384
1982	4060	1227	4060	4464	1246	12342	19202	31544
1983	4902	1325	4859	5300	1628	14707	22413	37120
1984	5970	1374	7344	6537	1894	17378	26325	43703
1985	7361	1377	8738	7829	4131	20544	28820	49364
1986	9160	1485	9160	9127	5464	22134	33424	55558
1987	9284	1361	10645	9198	6245	25407	39128	64534
1988	10700	1411	12285	11164	10240	29230	43521	72751
1989	12920	1449	14146	13697	14256	34874	42825	77699
1990	15283	1151	16921	14127	8089	39649	59544	99193

Source : Various Issues of R.B.I Bulletin , Bombay.

प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के अग्रिमों का प्रतिशत

वर्ष	प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को अग्रिम कृषि						अप्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र	कुल अग्रिम
	प्रत्यक्ष	अप्रत्यक्ष	कुल	लघु उद्योग	दूसरे	कुल		
1970	5·39	3·59	8·98	10·53	3·23	22·75	77·24	100
1971	5·20	2·61	7·81	10·78	3·22	21·83	78·16	100
1972	5·57	3·14	8·72	11·61	3·50	23·85	76·14	100
1973	5·98	2·76	8·75	12·16	3·92	24·83	75·16	100
1974	6·92	3·10	10·03	7·91	4·14	27·24	72·75	100
1975	8·11	3·34	11·45	12·83	4·90	29·18	70·02	100
1976	7·59	2·51	10·84	10·75	4·83	25·69	74·30	100
1977	8·48	2·14	11·12	11·48	5·25	27·85	72·14	100
1978	9·34	3·20	12·55	12·10	5·68	30·35	69·65	100
1979	9·60	2·67	12·27	11·12	5·09	28·48	71·52	100
1980	15·60	4·35	13·52	12·60	6·27	32·40	67·60	100
1981	13·43	3·86	14·32	12·88	6·71	33·92	66·08	100
1982	12·87	3·88	12·87	14·15	3·95	39·12	60·08	100
1983	13·20	3·56	13·08	14·27	4·38	39·62	60·38	100
1984	13·66	3·14	16·80	14·95	4·33	39·76	60·24	100
1985	14·91	2·78	17·70	15·85	8·36	41·61	58·39	100
1986	16·48	2·67	16·48	16·42	9·83	39·83	60·17	100
1987	14·38	2·10	16·49	14·25	9·67	39·36	60·64	100
1988	14·70	1·94	19·44	15·34	14·07	40·17	59·82	100
1989	16·62	1·86	18·20	17·62	18·34	44·88	55·12	100
1990	15·40	1·16	17·05	14·24	8·15	39·97	60·02	100

Source : Trend & Progress of Banking in India R.B.I, Bombay (Various Issues).

सभी अनुसूचित वाणिज्य बैंकों द्वारा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को अग्रिम

वर्ष	मात्रा (करोड़ रुपये में)	अग्रिमों में वृद्धि प्रवृत्ति	सूचकांक वृद्धि	प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र क अग्रिम में वृद्धि		
		कुल का प्रतिशत		मात्रा (करोड़ रु० में)	कुल ऋणों का %	सूचकांक वृद्धि
1970	3340·36	49·82	100	1013	22·8	100
1971	3822·98	51·57	144·44	1103	21·8	108·88
1972	4643·37	53·74	139·02	1326	23·9	130·89
1973	5565·35	52·82	166·62	1734	24·8	173·14
1974	6665·17	50·15	199·55	2121	27·2	209·37
1975	8055·32	48·37	241·14	2609	29·2	257·55
1976	8527·00	43·8	255·29	3395	25·7	335·14
1977	11411·00	49·01	341·64	4137	27·9	408·39
1978	12708·00	43·59	380·47	5405	30·4	533·56
1979	15311·00	44·59	458·41	5949	28·5	587·26
1980	18816·00	43·99	563·35	6981	32·1	689·14
1981	26384·00	43·88	789·94	8952	34·6	883·71
1982	31544·00	43·41	944·43	12342	36·1	1218·36
1983	37120·00	42·40	1111·37	14707	37·3	1451·82
1984	43703·00	42·49	1308·47	17378	41·2	1715·49
1985	49364·00	41·73	1477·96	20544	42·7	2028·03
1986	55558·00	39·36	1663·41	22134	39·83	2508·09
1987	64534·00	37·25	1932·15	25407	45·4	2508·09
1988	72751·00	37·38	2178·17	29230	45·7	2885·48
1989	77699·00	36·83	2326·31	34874	44·6	3442·64
1990	99193·00	37·38	2969·85	39649	42·3	3914·01

Source : Complied from Statistical Tables Relating to Banks in India R.B.I, Bombay(Various issuses).

सारिणी संख्या - 3.16

वैभिन्नित ब्याज दर योजना के अन्तर्गत वाणिज्य बैंक द्वारा प्रदान किया गया अग्रिम

(करोड़ रुपये में)

वर्ष	मात्रा	खातों की संख्या (लाख में)	कुल ऋण का प्रतिशत (%)
1972	087	·26	0·02
1973	10·60	2·30	0·22
1974	13·35	3·30	0·23
1975	20·99	4·60	0·31
1976	47·34	11·50	0·56
1977	67·99	13·92	0·61
1978	90·00	16·20	0·74
1979	140·95	20·76	0·98
1980	193·56	25·10	1·04
1981	258·11	29·25	1·17
1982	305·12	31·25	1·33
1983	369·39	37·46	1·13
1984	441·38	42·72	1·22
1985	486·08	45·51	1·19
1986	505·53	47·13	1·15
1987	597·62	48·14	1·10
1988	629·47	47·10	1·00
1989	665·36	47·01	0·98
1990	708·45	42·87	0·92

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको का पूंजी परिसम्पत्ति अनुपात

मार्च 1990 मे स्थिति

बैंक का नाम	प्रतिशत
इलाहाबाद बैंक	1•50
आन्ध्र बैंक	1•73
बैंक आफ बड़ौदा	1•38
बैंक आफ इण्डिया	2•27
बैंक आफ महाराष्ट्र	2•66
कनारा बैंक	3•25
सेन्ट्रल बैंक आफ इण्डिया	1•40
कार्पोरेशन बैंक	1•62
देना बैंक	2•44
इण्डियन बैंक	1•53
इण्डियन ओवर सीज बैंक	3•70
न्यू बैंक आफ इण्डिया	2•39
ओरिएन्टल बैंक आफ कामर्स	1•64
पंजाब नेशनल बैंक	1•75
पंजाब एण्ड सिन्ध बैंक	2•95
स्टेट बैंक आफ बीकानेर एण्ड जयपुर	1•43
स्टेट बैंक आफ हैदराबाद	1•28
स्टेट बैंक आफ इन्दौर	1•20
यूनियन बैंक आफ इण्डिया	1•71
स्टेट बैंक आफ पटियाला	3•21

2.

बैंक का नाम	मार्च 1990 मे स्थिति प्रतिशत
स्टेट बैंक आफ सौराष्ट्रा	1.71
स्टेट बैंक आफ मैसूर	1.33
स्टेट बैंक आफ ट्रावनकोर	1.51
स्टेट बैंक आफ इण्डिया	1.56
सिन्डिकेट बैंक	1.51
युनाइटेड बैंक आफ इण्डिया	5.05
युनाइटेड कामर्शियल बैंक	2.44
विजया बैंक	1.50

Source: Financial express, New Delhi Wed. 20 May, 1992 page, 7 " Can Indian Banks cope with Capital adquacy norms?" By K.V. Rao.

वाणिज्य बैंकों की आय-व्यय संरचना का कार्यकारी परिणाम

(करोड़ रु0 में)

वर्ष	ब्याज कटौती इत्यादि से कुल आय	जमाओं पर ब्याज इत्यादि पर व्यय		कुल व्यय में स्थापना व्यय		कुल व्यय	कर इत्यादि के पश्चात विशुद्ध लाभ
1951	26·2	9·90	(47·82)	10·8	(52·18)	20·7	5·4
1952	28·3	11·40	(49·35)	11·7	(50·65)	23·1	5·2
1953	28·6	12·00	(50·63)	11·9	(49·37)	23·7	4·9
1954	31·2	9·30	(42·46)	12·6	(57·54)	21·9	5·3
1955	35·0	10·30	(35·15)	19·0	(64·84)	29·3	5·7
1956	64·89	29·53	(57·59)	21·74	(42·40)	51·27	13·62
1957	97·63	27·32	(51·43)	23·12	(48·57)	53·12	11·21
1958	121·00	28·80	(53·33)	25·21	(46·67)	54·01	07·5
1959	134·00	32·90	(51·92)	28·43	(48·08)	61·4	7·4
1960	152·12	34·58	(62·57)	32·02	(37·43)	66·6	9·2
1961	124·00	59·90	(61·57)	35·83	(38·21)	95·73	28·27
1962	120·32	59·9	(61·79)	37·04	(38·42)	96·93	24·92
1963	136·05	68·04	(61·58)	42·94	(38·02)	110·98	26·22
1964	189·71	69·03	(61·98)	58·95	(41·87)	154·92	34·79
1965	242·49	102·12	(58·13)	73·54	(45·33)	175·66	66·83
1966	297·59	115·33	(54·67)	89·88	(43·76)	205·21	92·63
1967	342·72	132·35	(56·24)	110·69	(46·38)	242·04	100·68
1968	382·50	147·48	(53·62)	127·53	(43·84)	275·01	107·40
1969	376·12	165·23	(56·16)	129·08	(45·84)	294·21	126·91

------- कोष्ठक में दिए गए आँकड़े कुल का प्रतिशत प्रदर्शित करते हैं ।

Source : Various Issues of Trend and progress of Banking in India R.B.I, Bombay.

वाणिज्य बैंकों की आय-व्यय संरचना का कार्यकारी परिणाम

(करोड़ रुपये में)

वर्ष	ब्याज कटौती इत्यादि से कुल आय	जमाओं पर ब्याज इत्यादि पर व्यय		कुल व्यय में स्थापना व्यय		कुल व्यय	कर इत्यादि के पश्चात विशुद्ध लाभ
1970	492·22	225·65	(46·98)	190·92	(38·65)	416·57	13·90
1971	615·87	286·45	(47·66)	231·47	(37·69)	517·92	16·99
1972	726·93	344·46	(48·53)	267·50	(41·18)	611·96	17·21
1973	8 00·60	441·93	(56·46)	322·34	(34·30)	782·78	17·90
1974	1249·96	658·68	(53·76)	420·21	(32·62)	1225·15	24·81
1975	1551·54	843·39	(55·47)	495·86	(26·57)	1339·25	31·21
1976	1899.42	1148·73	(61·77)	494·08	(25·82)	1859·64	39·78
1977	2282·37	1420·14	(63·07)	581·37	(25·83)	2251·72	30·65
1978	2610·54	1625·59	(63·13)	665.09	(25·79)	2575·19	35·35
1979	3249·71	2042·53	(63·70)	826·88	(32·82)	3206·68	43·03
1980	4221·66	3143·87	(56·05)	1026·51	(24·61)	4170·38	36·05
1981	5322·96	4045·93	(75·39)	1213·01	(23·07)	5258·94	40·65
1982	6273·60	4827·70	(76·93)	1367·14	(22·07)	6194·84	68·59
1983	7180·75	5511·22	(77·93)	1584·19	(24·08)	7095·41	78·82
1984	8732·15	6321·33	(75·92)	2016·34	(22·33)	8323·41	92·37
1985	10568·63	8017·60	(77·67)	2427·48	(23·25)	10445·08	84·34
1986	12446·63	9515·03	(76·75)	2708·53	(22·16)	12223·55	120·60
1987	14625·32	10239·17	(70·5)	4284·58	(29·5)	14524·95	98·59
1988	18805·93	12731·23	(69·6)	5560·76	(30·4)	18292·87	112·13
1989	22793.25	14692·08	(27·7)	5628·91	(27·7)	20321·35	102·67
1990	23936·67	15850·28	(67·8)	7527·71	(32·2)	23378·21	131·25

xxx कोष्ठक में दिए गए आंकड़े कुल का प्रतिशत प्रदर्शित करते हैं ।

SOURCE : VARIOUS ISSUES OF "TREND AND PROGRESS OF BANKING IN INDIA, R.B.I. BOMBAY.

राष्ट्रीयकरण के पश्चात शाखा विस्तार

वर्ष	वर्ष के अन्त में कुल	वर्ष में खोली गयी शाखा
1970	11194	
1971	12985	1801 (16.1)
1972	14739	1754 (13.5)
1973	16503	1764 (12.0)
1974	18130	1677 (10.2)
1975	20446	2266 (12.5)
1976	23655	3209 (15.7)
1977	26996	3341 (14.1)
1978	29504	2508 (9.3)
1979	31557	2053 (7.0)
1980	32420	863 (2.4)
1981	35707	3287 (9.2)
1982	39177	3470 (3.8)
1983	42079	2902 (6.8)
1984	45332	32.53 (7.10)
1985	48932	3600 (7.3)
1986	52936	4004 (7.56)
1987	53859	923 (1.71)
1988	55015	1156 (2.1)
1989	57698	2683 (4.6)
1990	59769	930 (1.61)

N.B.: Figures in parenthesis indicate the percentage of new branches to the number of existing branches in the previous year.

Source: R.B.I. Bulletin R.B.I. Bombay (various issues.)

बैंक जमाओं में वृद्धि की प्रवृत्ति

सूचकांक - 1951 = 100

वर्ष	जमाएं	वृद्धि
1951	839·58	100
1952	851·55	101·42
1953	872·49	103·91
1954	960·00	114·34
1955	1056·30	125·77
1956	1197·42	142·62
1957	1428·51	170·14
1958	1316·68	156·82
1959	1548·87	184·37
1960	1786·78	212·67
1961	2011·52	239·69
1962	1951·59	232·53
1963	2194·11	261·33
1964	2742·37	326·63
1965	3073·34	366·05
1966	3586·78	427·21
1967	3962·12	471·91
1968	4477·95	533·35
1969	5075·35	604·51

Source:- Statistical tables relating to Banks in India, various issues R.B.I. Bombay.

बैंक जमाओं में वृद्धि की प्रवृत्ति

सूचकांक :- 1970 = 100

वर्ष	जमाएं	वृद्धि
1970	5699	100
1971	6937	121•72
1972	8146	142•93
1973	10087	176•99
1974	11587	203•31
1975	13628	239•12
1976	17564	308•19
1977	21331	374•29
1978	26551	465•88
1979	31463	552•07
1980	32617	572•32
1981	37988	666•57
1982	43733	767•38
1983	51358	901•17
1984	60537	1062•23
1985	74537	1307•89
1986	87773	1540•14
1987	105044	1843•00
1988	121395	2130•11
1989	148693	2609•10
1990	166959	2929•61

Source:- Statistical tables relating to Banks in India, various issues R.B.I. Bombay.

वाणिज्य बैंक की जमाएं

(करोड़ रु० में)

वर्ष	बचत जमाएं		चालू जमाएं		माँग जमाएं		स्थिर समय जमाएं		कुल जमाएं
	राशि	%	राशि	%	राशि	%	राशि	%	
1951	137·85	16·32	462	55·06	599·13	68·3	278·45	31·72	839.58
1952	135·66	15·86	458	53·81	593·73	69·68	290·82	34·07	851·55
1953	138·05	15·82	408	46·78	546·23	62·61	309·26	35·43	872·49
1954	142·14	14·79	384	40·00	526·75	54·79	328·26	34·16	960·00
1955	152·14	14·39	428	40·53	580·92	54·92	376·38	35·60	1056·30
1956	156·03	12·50	567	45·43	723·90	57·93	514·03	41·18	1248·42
1957	190·61	13·30	548	38·37	738·55	51·60	649·00	45·45	1428·51
1958	208·14	15·80	512	38·90	720·17	54·71	608·83	46·20	1316·68
1959	228·78	14·72	510	32·94	738·10	47·67	833·14	53·81	1548·87
1960	253·36	12·91	493	25·16	746·77	38·08	1185·00	60·49	1959·00
1961	327·98	17·27	467	24·66	794·82	41·94	1135·00	59·95	1893·00
1962	333·70	15·78	499	23·66	832·17	39·45	1271·00	60·26	2109·00
1963	428·98	18·71	572	25·01	1000·00	43·72	1287·00	56·27	2287·00
1964	570·78	22·20	620	24·15	1190·00	46·35	1377·00	53·64	2567·00
1965	677·83	23·36	662	22·84	1339·00	46·20	1539·00	52·76	2898·00
1966	821·81	24·50	744	22·21	1565·00	46·72	1785·00	53·28	3350·00
1967	945·30	23·85	811	20·46	1756·00	44·32	1997·00	56·48	3962·00
1968	1079·56	24·10	824	18·41	1903·00	42·51	2322·00	51·86	4477·00
1969	1111·52	21·89	1088	21·43	2199·00	43·33	2741·00	54·01	5075·00

माँग जमाएं = बचत जमाएं + चालू जमाएं   समय जमाएं = स्थिर जमाएं ।

Source : Trend & Progress of Banking in India and R.B.I Bulletin (Various Issues)

वाणिज्य बैंक की जमाएँ

(करोड़ रुपये में)

वर्ष	बचत जमाएँ		चालू जमाएँ		माँग जमाएं		स्थिर समय जमाएं		कुल जमाएं
	मात्रा	प्रतिशत	मात्रा	प्रतिशत	मात्रा	प्रतिशत	मात्रा	प्रतिशत	
1970	1290	22·63	1037	19·19	2327	40·9	3372	59·2	5699
1971	1524	21·96	1467	21·14	2991	43·1	3949	56·9	6937
1972	1997	23·05	1571	19·29	3459	42·5	4699	57·5	3146
1973	2225	22·05	2002	19·84	4227	41·9	5980	59·1	10097
1974	2679	23·11	2217	19·13	4395	42·2	6692	57·9	11597
1975	3019	22·69	2539	19·99	5690	41·7	7943	59·3	13629
1976	4395	25·02	2799	15·93	7194	41·0	10370	59·0	17564
1977	5499	25·72	3204	15·02	9692	40·7	12639	59·3	21331
1979	6273	23·62	4032	15·37	10355	39·0	16196	61·0	26551
1979	7069	22·45	4461	14·17	11530	36·6	19933	63·4	31463
1990	8603	26·37	3994	11·93	12501	39·32	20116	61·67	32617
1991	9213	24·25	2595	6·90	11719	31·07	26196	66·63	37999
1992	10427	23·3	7693	17·10	3393	30·4	35350	59·6	45733
1993	11940	22·6	9986	17·00	9999	39·6	41374	60·2	51359
1994	14056	22·6	10680	17·20	11354	39·9	49192	60·3	60537
1995	16990	22·9	13310	19·00	14905	40·9	59732	60·33	74537
1996	19113	21·9	14529	16·70	16320	40·9	71453	59·10	37773
1997	22370	21·3	17471	16·60	19557	39·62	95497	61·39	105044
1999	31997	26·7	17551	14·70	21130	37·41	100266	62·59	121395
1999	36911	24·9	25142	16·90	23342	41·45	116909	59·55	149693
1990	39734	33·2	30870	13·49	69604	41·69	139103	59·31	166959

ASSETS OF JAPANESE CITY BANKS. TOTAL AND SELECTED CATEGORIES

(AMOUNT IN BILLION YEN)

YEAR ENDING DEC.	CASH & DEPOSITS WITH OTHERS	CALL LOANS	SECURITIES	LOANS AND ADVANCES	COSTUMER LIABI-LITIES FOR ACCEPT-ANCE.	TOTAL ASSETS
1980	109	21	167	713	115	1228
1981	107	36	174	788	109	1312
1982	113	49	177	871	114	1419
1983	132	62	192	964	112	1557
1984	148	50	201	1081	114	1702
1985	155	73	221	1235	132	1940
1986	172	94	262	1412	139	2205
1987	214	87	310	1606	158	2510
1988	261	88	371	1771	166	2818
			PERCENT OF TOTAL			
1980	8.9	1.7	13.6	58.1	9.4	100
1981	8.2	2.7	13.3	60.1	8.3	100
1982	8.2	3.5	12.5	61.4	8.0	100
1983	8.5	4.0	12.3	61.9	7.2	100
1984	8.7	2.9	11.8	63.5	6.7	100
1985	8.0	3.8	11.4	63.7	6.8	100
1986	7.8	4.3	11.9	64.0	6.3	100
1987	8.5	3.5	12.4	64.0	6.3	100
1988	9.3	3.1	13.2	62.8	5.9	100

1. The amounts of yen and percentages do not sum to tables because some smaller categories were ommitted.

Source:- Federal Reserve Bulletin Feb, 1990, page 43 to 50. Economic Statistics monthly, Bank of Japan.

1951 में सार्वजनिक क्षेत्र के वाणिज्य बैंकों की परिसम्पत्तियों की स्थिति
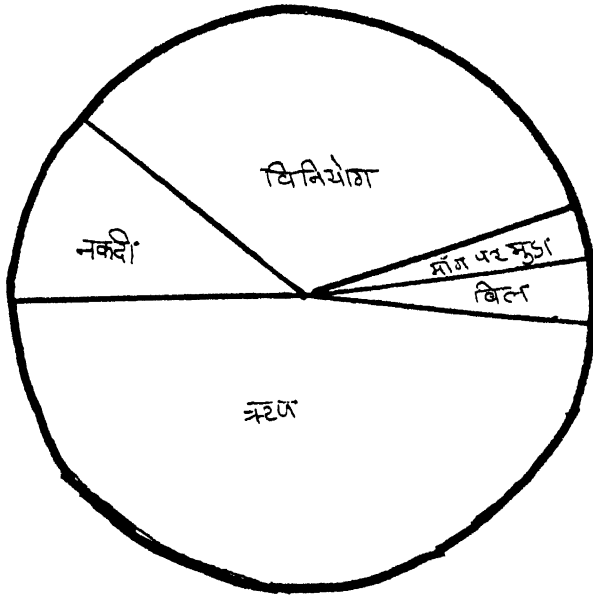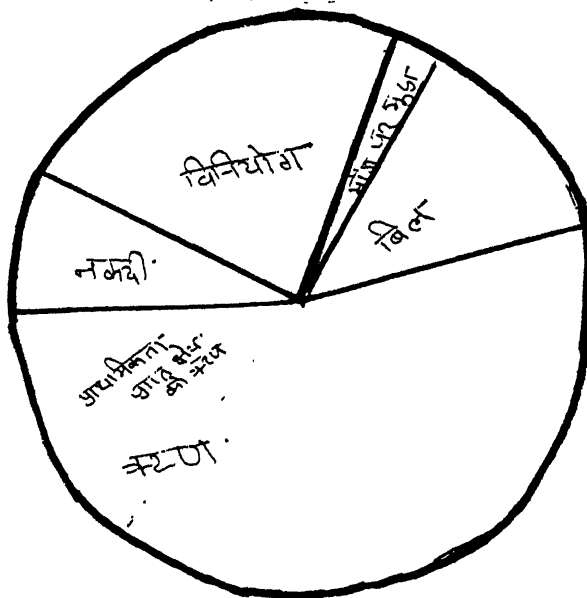
1969 में सार्वजनिक क्षेत्र के वाणिज्य बैंकों की परिसम्पत्तियों की स्थिति

1990 में सार्वजनिक क्षेत्र के वाणिज्य बैंकों की परिसम्पत्तियों की स्थिति
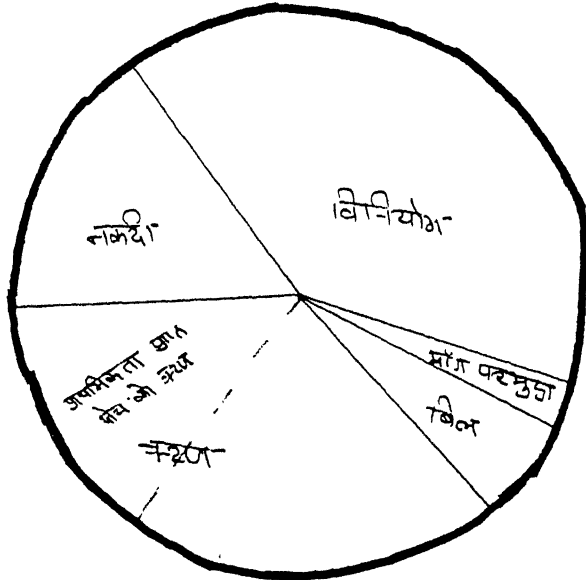
रेखाचित्र संख्या 5.5

परिसम्पत्ति	प्रतिशत
नकदी	15•31
विनियोग	40•14
माँग पर मुद्रा	2•41
बिल्स	5•46
ऋण	38•88

1970 में निजी क्षेत्र के वाणिज्य बैंकों की परिसम्पत्तियों की स्थिति

विनियोग
नकदी
मांग पर मुद्रा
बिल
ऋण
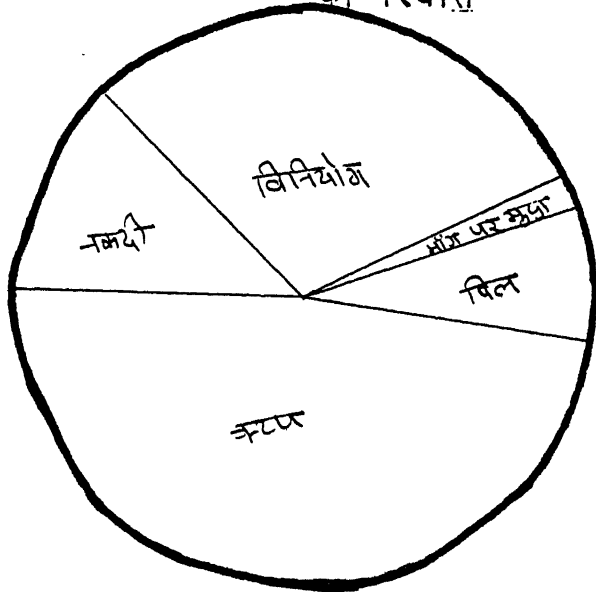
परिसम्पत्ति	प्रतिशत
नकदी	12.31
विनियोग	29.78
मांग पर मुद्रा	1.90
बिल्स	8.80
ऋण	47.22

रेखाचित्र संख्या 3.4

1990 में निजी क्षेत्र के वाणिज्य बैंकों की परिसम्पत्तियों की स्थिति
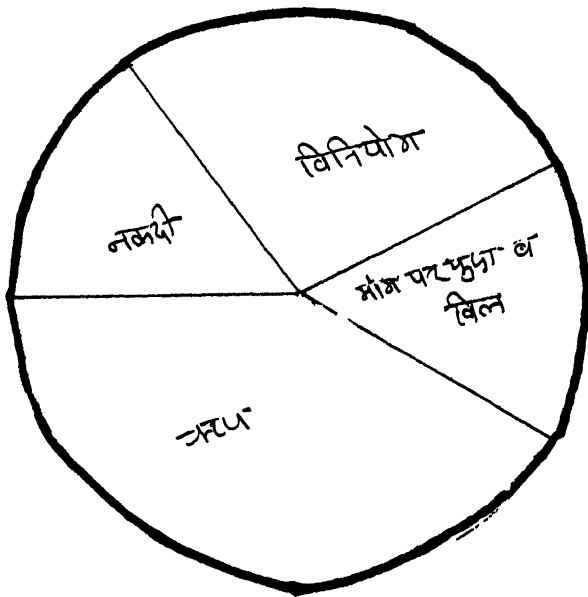
परिसम्पत्ति	प्रतिशत
नकदी	14.67
विनियोग	27.26
मांग पर मुद्रा व बिल्स	17.30
ऋण	40.77

रेखाचित्र संख्या 3.5

1980 में जापानी बैंकों की परिसम्पत्तियों की स्थिति

विनियोग
बिल
मांग पर मुद्रा
नकदी
अन्य परिसम्पत्तियां
ऋण

परिसम्पत्ति	प्रतिशत
नकदी	8•9
मांग पर मुद्रा	1•7
विनियोग	13•6
ऋण	58•1
बिल्स	9•4
अन्य	8•3

रेखाचित्र संख्या - 5· 6

1988 में जापानी बैंकों की परिसम्पत्तियों की स्थिति

परिसम्पत्ति	प्रतिशत
नकदी	9•3
मांग पर मुद्रा	3•1
विनियोग	13•2
ऋण	62•8
बिल्स	5•9
अन्य	5•7

रेखाचित्र संख्या - 5· 7

अध्याय - चार

आँकड़ो का विश्लेषण

वर्तमान समय में बैंक देश की सम्पूर्ण आर्थिक संरचना में प्रविष्ठ हो चुके हैं। देश के सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए बनायी गयी योजनाओं को लागू करने में बैंकों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि बैंकों ने राष्ट्रीयकरण के उद्देश्यों को न केवल प्राप्त किया है बल्कि लक्ष्यों से अधिक कार्य करके नई उँचाइयों को छुआ है। विगत दो दशक में बैंकों ने भौगोलिक विस्तार करके अपना कार्य क्षेत्र विस्तृत किया है। जिसमें उपेक्षित कृषि व ग्रामीण क्षेत्रों में विकास गतिविधियों के लिए एक सन्तुलित ऋण नीति आरम्भ हुई। बैंक जहाँ एक ओर ग्रामीण क्षेत्रों के दूर दराज इलाकों में पहुँचकर जनता को बैंकिंग से परिचित करा रहे हैं वहीं आधुनिक बैंकिंग नए क्षेत्रों में प्रवेश करके देश की आर्थिक गतिविधियों को महत्वपूर्ण सहयोग दे रहे हैं।

बैंक विगत में मात्र लाभ कमाने के संस्थान के रूप में कार्यरत थे जिस कारण इनकी लाभप्रदता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। परन्तु राष्ट्रीयकरण के पश्चात बैंकों के दृष्टिकोण तथा कार्यशैली में परिवर्तन आने से पिछले वर्षों में इनकी लाभ प्रदता में गिरावट आयी।[1] वाणिज्य बैंक के लिए अपने लाभों में वृद्धि करने का कार्यक्षेत्र बहुत छोटा हो गया है। इस सन्दर्भ में हम बैंकिंग परिसम्पत्तियों से सम्बन्धित समकों का वर्णनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करके वास्तविक स्थिति को ज्ञात कर रहे हैं।

नकदी परिसम्पत्ति

हाथ में नकदी और दूसरे बैंक के साथ सन्तुलन सबसे अधिक तरल परिसम्पत्ति है। रिजर्व बैंक की सम्पूर्ण साख नियंत्रक नीति की पूरी संरचना का आधार रिजर्व नकदी अनुपात पर ही निर्भर है।

1-See- Birla Institute of Scientific Research Banks since Nationalisation New Delhi. Allied Publications

हाल के वर्षों में बैंको ने अपने रिजर्व नकदी अनुपात में काफी वृद्धि की है। जिससे वाणिज्य बैंक की तरलता की स्थिति बहुत सुदृढ़ हुई है। परन्तु समस्या यह है कि नकदी पूर्णतया तरल परिसम्पत्ति है जो कि किसी भी प्रकार की आय उत्पन्न नही करती है। बैंक द्वारा अपनी वास्तविक आवश्यकता से थोड़ी सी भी अधिक मात्रा में नकदी रखना वास्तव में बहुत अधिक मँहगा पड़ता है क्योंकि बैंक के लिए आदर्श नकदी अनुपात को बनाए रखने की अवसर लागत बहुत अधिक होती है।

1951 से लेकर 1969 तक बैंक के रिजर्व नकदी अनुपात में निरन्तर कमी आती गयी है। 1951 में रिजर्व नकदी अनुपात 10.99 प्रतिशत था जो 1952 में कम होकर 10.15 प्रतिशत हो गया। रिजर्व नकदी अनुपात 1953 से कम होकर 9.12 प्रतिशत व 1954 में 9.62 प्रतिशत रहा, 1955 में इसमें 1 प्रतिशत की कमी आयी और यह 8.69 प्रतिशत रह गया। इसमें निरन्तर कमी आने का कारण बैंक की लचीली साख नीति रही।

1956 में रिजर्व नकदी अनुपात 8.7 प्रतिशत रहा अगले वर्ष अर्थात 1957 में इसमें .7 प्रतिशत की कमी आयी और यह 8 प्रतिशत हो गया। 1958 में इसमें .9 प्रतिशत की वृद्धि हुई और यह 8.9 प्रतिशत हो गया। 1959 में यह पुनः 8 प्रतिशत हो गया परन्तु अगले वर्ष इसमें 1.2 प्रतिशत की कमी आयी और 1960 में रिजर्व नकदी अनुपात घटकर 6.8 प्रतिशत हो गया। रिजर्व नकदी अनुपात में कमी की प्रवृत्ति जारी रही और यह 1961 में 6.7 प्रतिशत हो गया, 1962 में यह कम होकर 6.4 प्रतिशत हो गया इसी क्रम में यह निरन्तर गिरता रहा और 1963 में कम होकर 6.2 प्रतिशत हो गया। 1964 में यह 6.5 प्रतिशत हो गया अगले वर्ष रिजर्व नकदी अनुपात घटकर 6.3 प्रतिशत हो

गया जो पिछले वर्ष से .2 प्रतिशत अधिक था । 1966 में यह कम होकर 5.94 प्रतिशत हो गया । 1967 में यह अपने न्यूनतम स्तर 5.7 प्रतिशत हो गया । 1968 में रिजर्व नकदी अनुपात बढ़कर 6.3 प्रतिशत हो गया जो 1969 में बढ़कर 6.65 प्रतिशत हो गया ।

1969 में 14 बड़ी वाणिज्य बैंक के राष्ट्रीयकरण के पश्चात बैंक ने परिसम्पत्तियों की सरचना में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किए । राष्ट्रीयकरण से पूर्व बैंक का लक्ष्य सामाजार्थिक कल्याण न होकर केवल लाभ कमाना था अस्तु वे अपने पास उतनी ही मात्रा में रिजर्व नकदी रखते थे जितनी कि उनकी सुरक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक होता था । अत: इन वर्षो में रिजर्व नकदी अनुपात काफी नीचा रहा । राष्ट्रीयकरण के पश्चात बैंक रिजर्व नकदी अनुपात व वैधानिक तरलता अनुपात उपकरण का प्रयोग स्फीति नियंत्रण के एक उपकरण के रूप में करने लगे । अत: रिजर्व नकदी अनुपात में निरन्तर वृद्धि आयी । 1970 में रिजर्व नकदी अनुपात में लगभग 1 प्रतिशत की वृद्धि हुई और यह बढ़कर 6.65 प्रतिशत हो गया 1971 में यह बढ़कर 6.49 प्रतिशत हो गया । 1972 व 1976 को छोड़कर वाणिज्य बैंक के रिजर्व नकदी अनुपात में निरन्तर वृद्धि आती गयी । राष्ट्रीयकरण के समय वाणिज्य बैंक का रिजर्व नकदी अनुपात 6.65 प्रतिशत था जो 1973 में बढ़कर 8.46 प्रतिशत हो गया अगले तीन वर्षो 1974 से 1976 तक इसमें निरन्तर गिरावट आयी और 1976 में यह कम होकर 6.4 प्रतिशत हो गया । 1977 के पश्चात रिजर्व नकदी अनुपात में निरन्तर वृद्धि हुई । 1978 में बढ़कर यह 9.6 प्रतिशत हो गया । 1979 में यह बढ़कर 11.2 प्रतिशत हो गया । इसमें वृद्धि की प्रवृत्ति निरन्तर जारी रही और 1980 में यह बढ़कर 13.4 प्रतिशत हो गया जो 1982 में कम होकर 11.9 प्रतिशत रह गया । परन्तु

कम होकर 11 प्रतिशत से 16.7 प्रतिशत तक रहा । 1990 में रिजर्व नकदी अनुपात 15.31 प्रतिशत हो गयी । इस समय वैधानिक तरलता अनुपात भी अधिकतम अर्थात 38 प्रतिशत रहा है ।

इस प्रकार वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों में नकदी परिसम्पत्ति की संरचना में आए परिवर्तन से बैंक की तरलता की स्थिति सुदृढ़ हुई साथ ही बैंक की सुदृढ़ता एवं विश्वसनीयता में भी वृद्धि हुई है । अत: रिजर्व नकदी अनुपात परि-सम्पत्ति के विश्लेषण से स्पष्ट है कि जहाँ राष्ट्रीयकरण से पूर्व बैंक लाभदायकता पर किसी प्रकार का दबाव नहीं था वहीं राष्ट्रीयकरण के पश्चात बैंक ने अपनी विश्व-सनीयता को बनाए रखने तथा ग्राहकों के माँग करने पर तुरन्त नकदी की आपूर्ति के लिए नकदी परिसम्पत्तियों निरन्तर वृद्धि की है । नरसिंहम कमेटी[2] ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि रिजर्व बैंक को इस उपकरण को मौद्रिक नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अधिक लोचपूर्ण बनाना चाहिए तथा रिजर्व नकदी अनुपात के उंचे अनुपात को कम करने का सुझाव दिया ।

<u>विनियोग पोर्टफोलियो प्रबन्धन</u> - वाणिज्य बैंक के विनियोग में अधिकांश भाग केन्द्रीय एवं राज्य सरकार की प्रतिभूतियाँ, संशोधित प्रतिभूतियाँ ट्रेजरी एवं ट्रेजरी बिलों के रूप में होते हैं । औद्योगिक शेयर और प्रतिभूतियों के रूप में विनियोग कुल विनियोग का 2 प्रतिशत से अधिक होता है । विनियोग जिसमें तरल नकदी अर्न्तबैंक जमाएं अथवा केन्द्रीय बैंक के साथ रिजर्व सम्मिलित है एक निश्चित दर पर आय उत्पन्न करते है । लेकिन सरकार अपने उधारों पर सहायिकियों जैसी ब्याज पर प्रदान करती है जो कि स्थिर जमाओं पर प्रदान की जाने वाली ब्याज दर से भी कम होती है फिर भी बैंक इन प्रतिभूतियों में विनियोग करते हैं । क्योंकि रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित वैधानिक तरलता अनुपात बनाए रखना आवश्यक होता है । इस प्रकार निम्न व्याज दर के बावजूद सरकार

2- See, The Financial system" Report by M.Narasimham, ANABHI PUBLICATION". DELHI-1992 Page.3

अपनी प्रतिभूतियों के लिए एक आकर्षक बाजार का निर्माण कर लेती है । सामान्यतया बैंक सरकारी और दूसरी संशोधित प्रतिभूतियों में विनियोग वैधानिक आवश्यकताओं के लगभग ही करते हैं, क्योंकि कम लाभदायक होने के बावजूद ऐसा करने के अनेक कारण होते हैं । ये विनियोग पूरी तरह से सुरक्षित होते हैं । यदि साख की माँग कम है तो सरकारी प्रतिभूतियों मे विनियोग करके इसकी भरपायी कर लेते हैं ।

पंचवर्षीय योजनाओं में शामिल किए गए उच्च प्राथमिकता वाले सरकारी क्षेत्र के निवेश के वित्तपोषण मे बैंक का योगदान काफी महत्वपूर्ण है । चूँकि हमारी विकास प्रक्रिया मे सरकारी क्षेत्र की स्थिति सर्वोच्च है, अतः बैंकिंग तन्त्र द्वारा जुटाई गयी बचत का कुछ अंश महत्वपूर्ण सरकारी क्षेत्र के निवेशों के वित्तपोषण में लगना स्वाभाविक है । इस प्रकार आजकल सांविधिक चलनिधि अनुपात अपेक्षाओं के अन्तर्गत अनुसूचित वाणिज्य बैंक की निर्बल माँग और मियादी देयताओं का 37 प्रतिशत अंश केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार की प्रतिभूतियों तथा अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियो में लगाया जाता है । वाणिज्य बैंक मियादी ऋण देने वाली संस्थाओं के शेयरों,/ डिबेंचरों / बाण्डों में अभिदान करते हैं और मियादी ऋण देने वाली संस्थाएं कृषि तथा उद्योग में निजी और सरकारी क्षेत्र के निवेश के वित्त पोषण हेतु निधियों का मुख्य साधन है । साथ ही बैंक उद्योग बड़े मझोले और लघु उद्योग तथा कृषि को भी मियादी ऋण प्रदान करके उनके निवेशों का सीधा वित्त पोषण करते हैं ।

1951 के पश्चात से वाणिज्य बैंक के निवेश संविभाग में बहुत अधिक परिवर्तन आए है। 1951 में कुल बैंकिंग परिसम्पत्तियों में निवेश का भाग 35.26 प्रतिशत रहा। 1951 से लेकर 1975 तक अनुसूचित वाणिज्य बैंक के द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों में किया जाने वाला निवेश कुल निवेशों में सम्मिलित करके ही दर्शाया जाता रहा। 1952 में निवेशों में लगभग 1 प्रतिशत की और वृद्धि हुई और निवेश अनुपात बढ़कर 36.51 प्रतिशत हो गया। अगले वर्ष 1953 मेकुल निवेशों में 1.66 प्रतिशत की वृद्धि हुई और यह बढ़कर 38.17 प्रतिशत हो गया। सरकारी प्रतिभूतियों में अधिक निवेश करने के कारण बैंक को अपनी लाभदायकता और सुरक्षा में सामन्जस्य स्थापित करने की आवश्यकता हुई। अत: निवेश अनुपात में 40 प्रतिशत की कमी हुई और कुल निवेश अनुपात 1954 में 37.77 प्रतिशत हो गया। निवेश में घटने की प्रवृत्ति जारी रही और 1955 में कुल परिसम्पत्तियों में निवेश अनुपात घटकर 36.94 प्रतिशत रह गया।

निवेशों में 1956 से 1960 तक काफी उतार चढ़ाव आए। जहाँ 1956 में कुल बैंकिंग परिसम्पत्तियों में निवेश का भाग 36.9 प्रतिशत था, वही 1957 में घटकर केवल 32.8 प्रतिशत रह गया अर्थात निवेशों में लगभग 4 प्रतिशत की कमी आयी। 1958 में इसमें 3.6 प्रतिशत की और कमी हुई अर्थात यह 29.2 प्रतिशत रह गया। इन दो वर्षों में ही निवेशों में 8 प्रतिशत की कमी हुई, परन्तु अगले दो वर्ष निवेश में आश्चर्यजनक ढंग से 7 प्रतिशत की वृद्धि हुई अर्थात कुल निवेश अनुपात पुन: बढ़कर 36.5 प्रतिशत हो गया। इसमें वृद्धि की प्रवृत्ति जारी रही और यह 1960 में 40.6 प्रतिशत हो गया अर्थात भारतीय बैंक का कुल निवेश आदर्श निवेश अनुपात का लगभग दुगना हो गया। यह प्रवृत्ति वाणिज्य बैंक द्वारा पूँजी बाजार के विकास में उपयोगी व महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने के कारण आयी।

1961 में निवेशमें काफी कमी आयी औरकुल परिसम्पत्तियों में निवेश का औसत घटकर 32 प्रतिशत रह गया अर्थात केवल एक वर्ष के दौरान 9•6 प्रतिशत की कमी आयी । यह गिरावट की प्रवृत्ति जारी रही और 1962 में घटकर 31•3 प्रतिशत रह गयी । 1963 में यह घटकर 29 प्रतिशत रह गया । निवेशों में कमी का कारण मुख्यत: भारतीय अर्थव्यवस्था पर युद्ध का दबाव था । अत: निवेश 1964 में घटकर 28 प्रतिशत ही रह गए । 1965 में निवेश का अनुपात केवल 27•8 प्रतिशत ही रहा । इस प्रकार 1961 से लेकर 1965 तक बैंकिंग परिसम्पत्तियों के निवेश अनुपात में लगभग 12 प्रतिशत की कमी आयी ।

वाणिज्य बैंको के निवेश में 1966 से 1970 तक निरन्तर कमी आती रही । 1966 में जहाँ बैंकिंग परिसम्पत्तियों में निवेश अनुपात 27•53 प्रतिशत हो गया वही अगले वर्ष 1967 में 2•45 प्रतिशत की कमी हुई अर्थात कुल निवेश का अनुपात घटकर 25•1 प्रतिशत रह गया । 1968 में यह अनुपात 24•3 प्रतिशत था जो कि 1969 में बहुत अधिक घटकर मात्र 22•94 प्रतिशत रह गया । परन्तु अगले वर्ष अर्थात 1970 में कुल निवेशों के अनुपात में कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ और निवेश अनुपात 22•5 प्रतिशत ही रहा ।

जुलाई 1969 में 14 बड़ी वाणिज्य बैंक के राष्ट्रीयकरण के पश्चात भी बैंक की निवेश संरचना में कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ परन्तु यह निवेश अनुपात एक आदर्श अनुपात माना जाता है क्योंकि इस अनुपात में नही तरलता का अनुपात अधिक रहता है एवं न ही लाभदायकता और कम सुरक्षा का । यह अनुपात बैंकिंग परिसम्पत्तियों के समायोजन के बैंकिंग सिद्धान्तो के अनुकूल है ।

परन्तु इन निवेशों में 1971 से 1975 तक कोई विशेष परिवर्तन नही आए ।

1971 में जहाँ निवेश अनुपात 22.83 प्रतिशत रहा वही 1972 में केवल 2 प्रतिशत की वृद्धि हुई और यह 24.67 प्रतिशत हो गया परन्तु 1873 में इसमें पुन: गिरवट आयी और यह घटकर पुन: 22.7 प्रतिशत रह गया। 1974 में निवेश अनुपात 23.32 प्रतिशत ही रहा और यह 1975 में घटकर 22.56 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार स्पष्ट है कि बैंके के निवेश में छोटे मोटे उतार चढ़ाव के अतिरिक्त कोई विशेष परिवर्तन नही आए। 1975 से सरकारी व अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों को अलग अलग दर्शाया जाने लगा। कुल निवेश का 70 प्रतिशत भाग सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोजित किया जाता था तथा शेष 30 प्रतिशत निवेश अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में किया जाता था। यद्यपि वाणिज्य बैंक का राष्ट्रीयकरण तो 1969 में ही हो गया था। परन्तु बैंकिंग परिसम्पत्तियों में निवेशों का व्यवस्थित ढंग से वितरण 1975 से ही प्रारम्भ हुआ और इसे सरल रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा।

वाणिज्य बैंक के कुल निवेश अनुपात मे 1976 से काफी वृद्धि हुई। 1976 में कुल परिसम्पत्तियों मे निवेश का भाग 33.32 प्रतिशत रहा जिसमें से 71.26 प्रतिशत विनियोग सरकारी प्रतिभूतियों मे किया गया शेष अन्य प्रतिभूतियों मे केवल 28.74 प्रतिशत विनियोग किया गया। 1977 में कुल निवेश अनुपात घटकर 31.5 प्रतिशत रह गया। इस वर्ष निवेश प्रतिभूतियों की संरचना में भारी परिवर्तन हुआ इसमे सरकारी प्रतिभूतियों का भाग 61.95 प्रतिशत रहा अन्य प्रतिभूतियों के भाग में पिछले वर्ष की अपेक्षा 10 प्रतिशत वृद्धि हुई और यह कुल प्रतिभूतियों का 39.05 प्रतिशत हो गया। 1978 में कुल निवेश अनुपात में वृद्धि हुई जो कि 35.6% हो गया। जिसमें से सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोग 74.8 प्रतिशत तथा अन्य प्रतिभूतियों मे विनियोग 26.2 प्रतिशत रहा। इस प्रकार निवेश संरचना में उतार चढ़ाव आता रहा। 1979 में कुल परिसम्पत्तियों में निवेश का अनुपात 33.7 प्रतिशत हो गया जिसमें

का भाग केवल 27•32 प्रतिशत ही रहा। अतः स्पष्ट है कि विनियोग संरचना में कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ। परन्तु 1980 में कुल परिसम्पत्तियों में निवेश का भाग 33•4 प्रतिशत रहा जिसमें से सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोग का भाग 69•9 प्रतिशत रहा और अन्य प्रतिभूतियों में निवेश का अनुपात 30•05 प्रतिशत रहा। कुल परिसम्पत्तियों में निवेश के भाग में पिछले 5 वर्षों में कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ।

भारतीय बैंक के विदेश स्थित कार्यालयों को मिलाकर वाणिज्य बैंकों के कुल निवेश मार्च 1985 तक 21868 करोड रूपए से बढ़कर मार्च 1986 में 28183 करोड़ रूपए हो गए। 1981 से 1985 तक निवेश परिसम्पत्तियों की संरचना में कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ। 1981 में कुल परिसम्पत्तियों में निवेश का प्रतिशत 34•7 प्रतिशत रहा जिसमें से सरकारी प्रतिभूतियों का भाग 67•8 प्रतिशत तथा अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों का भाग 32•92 प्रतिशत रहा। 1982 में कुल निवेश अनुपात में 1 प्रतिशत की वृद्धि हुई और यह 35•7 प्रतिशत हो गया जिसमें से सरकारी प्रति-भूतियों में निवेश का भाग 34•13 प्रतिशत ही रहा। 1983 में भी कुल निवेश अनुपात में कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ तथा यह 25•1 प्रतिशत ही रहा जिसमें से सरकारी प्रतिभूतियों का योगदान 63•42 प्रतिशत तथा अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में विनियोग 36•68 प्रतिशत रहा। परन्तु 1984 में बैंक का कुल निवेश 6315 करोड रूपए था जो पिछले वर्ष के 3953 करोड रूपएसे काफी अधिक था 1984 में पुर्वद्धनशील निवेशों में केन्द्र और राज्य सरकारों को प्रतिभूतियों का अंश बढ़कर 73•6 प्रतिशत हो गया पिछले वर्ष यह अंश 56•3 प्रतिशत था। इसी तरह 1984-85 में प्रवर्द्धनशील निवेशों में अन्य देशी प्रतिभूतियों/वाण्डों/शेयरों इत्यादि का हिस्सा घटकर 25•7 प्रतिशत पर आ गया। 1983-84 में यह 40•4 प्रतिशत था। सम्गृत: बैंक के कुल निवेशों में भारत सरकार

की प्रतिभूतियों का अंश 1983-84 के 61·6 प्रतिशत से बढ़कर 64·4 प्रतिशत हो गया इसके ठीक विपरीत अन्य देशी प्रतिभूतियों/बाण्डों/शेयरों आदि का अनुपात 1983-84 के 37·1 प्रतिशत से घटकर 34·5 प्रतिशत पर आ गया ।

1984-85 में भारत सरकार की प्रतिभूतियों में अनुसूचित वाणिज्य बैंक के निवेशों की वृद्धि दर 34·4 प्रतिशत थी जो 1983-84 तथा 1982-83 के क्रमशः 19·7 प्रतिशत तथा 14·9 प्रतिशत की तुलना में काफी अधिक है । इसके ठीक विपरित सभी अन्य देशी प्रतिभूतियों/बाण्डों/ शेयरों आदि में निवेशों की वृद्धि दर 1983 - 83 के 35·4 प्रतिशत से घटकर 20 प्रतिशत पर आ गयी । भारत सरकार की प्रतिभूतियों के उप समूह के अन्तर्गत केन्द्र सरकार की प्रतिभूतियों में निवेशों की वृद्धि दर 1984-85 में 35·2 प्रतिशत हो गयी । इसी अवधि में राज्य सरकार की प्रतिभूतियों में निवेशों की वृद्धि पर भी 25·7 प्रतिशत से बढ़कर 31·9 प्रतिशत हो गयी ।

जहाँ तक अन्य देशी प्रतिभूतियों का सवाल है अन्य न्यासी प्रतिभूतियों में अनुसूचित वाणिज्य बैंक के निवेश 1984-85 में 20·8 प्रतिशत थे ये 1983-84 के 35·6 प्रतिशत से कम थे । संयुक्त स्टाक कम्पनियों के शेयरों और डिबेंचरों के निवेशों में से लगभग इसी प्रकार की प्रवृत्ति पायी गयी । 1983-84 में 19·5 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी इस स्तर से इन निवेशों की वृद्धि दर में तीव्र गिरावट आयी और 1984-85 में वह 3·9 प्रतिशत दर पर पहुँच गयी ।

सरकारी प्रतिभूतियाँ :

अनुसूचित वाणिज्य बैंक केन्द्र और राज्य सरकार की प्रतिभूतियों के प्रमुख निवेशक हैं । केन्द्र सरकार के ब्याज युक्त कुल ऋणों में बैंक के निवेशों का अंश 1984-

-85 मे 36•9 प्रतिशत से बढ़कर 37•8 प्रतिशत हो गया जबकि राज्य सरकार की प्रतिभूतियों में बैंक का निवेश 66•6 प्रतिशत से बढ़कर 74•7 प्रतिशत हो गया ।

1984-85 के दौरान केन्द्र सरकार के ब्याजयुक्त ऋणों में अनुसूचित बैंक के निवेशों में 1794 करोड़ रूपए {18•5 प्रतिशत} की बढ़ोत्तरी हुई जबकि 1983-84 में 1028 करोड़ रूपए {या 11•8 प्रतिशत} की बढ़ोत्तरी हुई थी । इसी प्रकार इस वर्ष के दौरान राज्य सरकार के ब्याज युक्त ऋणों में बैंक का अंश 924 करोड़ रूपये {31•8 प्रतिशत} बढ़ा जबकि एक वर्ष पूर्व यह 595 करोड़ रूपए {25•7 प्रतिशत}था ।

1984-85 के दौरान केन्द्र सरकार के ब्याज युक्त ऋणों के 4108 करोड़ रूपए {या 15•6 प्रतिशत} की बढ़ोत्तरी हुई जबकि इसकी तुलना में पिछले वर्ष 4030 करोड़ रूपए {18 प्रतिशत} की बढ़ोत्तरी हुई थी । 1984 - 85 के दौरान केन्द्र सरकार की प्रतिभूतियों में से 43•7 प्रतिशत प्रतिभूतियाँ वाणिज्य बैंकों ने खरीदी जबकि एक वर्ष पूर्व 25•5 प्रतिशत प्रतिभूतियाँ खरीदी थी । इसी वर्ष के दौरान राज्य सरकारों के ब्याज युक्त ऋणों में बैंकों के अंश में 9•24 करोड़ रूपए की बढोत्तरी हुई ।

सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश का मियादी स्वरूप

बैंक द्वारा खरीदी गयी सरकारी प्रतिभूतियों का झुकाव दीर्घकालीन और मध्यकालीन और प्रतिभूतियों में न होकर अल्पकालीन प्रतिभूतियों की ओर गया है ।

मध्य कालीन {5 से 10 वर्ष}और दीर्घकालीन {15 वर्ष से अधिक} प्रतिभूतियों की खरीद में मामूली गिरावट पायी गयी । मध्यकालीन प्रतिभूतियों की खरीद 16•3 प्रतिशत से घटकर 14 प्रतिशत हो गयी और दीर्घकालीन प्रतिभूतियों की खरीद

49·6 प्रतिशत से घटकर 44·5 प्रतिशत हो गयी । इसी प्रकार बैंक द्वारा अल्पकालीन प्रतिभूतियों (5 वर्ष से कम) की खरीद मार्च 1984 के अन्त में 19·4 प्रतिशत थी जो मार्च 1985 तक 24·3 प्रतिशत हो गयी फिर भी इन प्रतिभूतियों में मार्च 1984 और मार्च 1985 दोनों वर्ष में मध्य दीर्घकालीन (10 से 15 वर्ष) प्रतिभूतियों का हिस्सा 16·7 प्रतिशत पर अपरिवर्तित रहा । अल्पकालीन प्रतिभूतियों की खरीद बढ़ने का मुख्य कारण था बैंक द्वारा खजाना बिलों का अधिक संख्या में धारण । यदि इसे निकाल दिया जाए तो अल्पकालीन प्रतिभूतियों का निवेश घटकर 9 प्रतिशत पर आ जाएगा । जबकि पिछले वर्ष यह 12·1 प्रतिशत था ।

अन्य न्यासी प्रतिभूतियाँ

अन्य न्यासी प्रतिभूतियों में बैंक के कुल निवेश में 1984 - 85 के दौरान 16·32 करोड़ रुपए की (20·8 प्रतिशत) की बढ़ोत्तरी हुई जबकि पिछले वर्ष इसमें 1598 करोड रुपए की बढ़ोत्तरी (25·6 प्रतिशत) हुई थी । अखिल भारतीय निकायों[1] में बैंक का निवेश वर्ष के दौरान क्रमशः 9·2 करोड रुपए तथा 719 करोड़

1- अखिल भारतीय स्वरूप के निकायों में ये शामिल है— भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, नाबार्ड, यूनिट ट्रस्ट आफ इण्डिया, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, विद्युतीकरण निगम, राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम, भारतीय औद्योगिक पुर्निनर्माण निगम, भारतीय औद्योगिक ऋण और निवेश निगम, तथा आवास एवं शहरी विकास निगम । अन्य न्यासी प्रतिभूतियाँ-राज्य वित्त निगम, राज्य विद्युत बोर्ड, राज्य आवास विकास निगम भूमि विकास निगम । इस श्रेणी में नगर पालिकाएँ तथा पोर्ट ट्रस्ट भी शामिल किए गएहै ।

रूपए बढ़ा । इसके परिणाम स्वरूप अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों के अधीन बैंक द्वारा लिए गए कुल निवेशों में अखिल भारतीय निकायों की प्रतिभूतियों का अनुपात बढ़ता रहा । यह मार्च 1983 में 51 प्रतिशत था जो बढ़कर 1984 में 51.7 प्रतिशत हो गया तथा 1985 में 52.5 प्रतिशत पहुँच गया । इस बढ़ोत्तरी का मुख्य कारण इन संस्थाओं द्वारा बाजार से अधिक मात्रा में ऋण लेना था । इसी के अनुरूप राज्य स्तरीय निकायों की "अन्य न्यासी प्रतिभूतियों" में बैंक के निवेशों का जो अनुपात मार्च 1983 में 49 प्रतिशत था घटकर 1984 में 48.3 प्रतिशत और 1985 में 47.5 प्रतिशत हो गयी ।

अन्य निवेश

उपर्युक्त प्रतिभूतियों के अतिरिक्त बैंक के पास निवेशों के रूप में संयुक्त पूँजी कम्पनियों के डिबेंचरों और शेयर भी हैं फिर भी इस प्रकार के निवेश मार्च 1985 के अन्त तक बैंक के कुल निवेश का केवल .6 प्रतिशत था । इस वर्ष के दौरान शेयर और डिबेंचरों में बैंक का निवेश 175 करोड़ रुपए तथा इसमें केवल 6.5 करोड रूपए की बढ़ोत्तरी हुई जबकि 1983-84 में 27 करोड़ रूपए की बढ़ोत्तरी हुई कम्पनी डिबेंचरों में बैंक के निवेश में 4 करोड़ रूपए की बढ़ोत्तरी हुई और शेष 2.5 करोड़ रूपए की बढ़ोत्तरी शेयरों में हुई । 1986 से 1990 तक निवेश परिसम्पत्तियों के अनुपात में निरन्तर बढ़ोत्तरी हुई । कुल परिसम्पत्तियों में निवेश का अनुपात 36.8 प्रतिशत रहा जिसमें से सरकारी प्रतिभूतियों का योगदान 63.93 प्रतिशत तथा अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में विनियोग 36.7 प्रतिशत रहा । इसका मुख्य कारण वाणिज्य बैंक द्वारा निजी कम्पनी क्षेत्र के शेयर तथा डिबेंचरों में विनियोग की वृद्धि करना है । 1987 में कुल परिसम्पत्तियों में निवेश का भाग बढ़कर

प्रतिशत अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में विनियोजन का होना है । 1988 में वाणिज्य बैंक का कुल निवेश 38.7 प्रतिशत रहा जिसमें से सरकारी प्रतिभूतियों का भाग 66.46 प्रतिशत रहा और अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों का भाग 33.54 प्रतिशत हो गया । इसी प्रकार से 1989 में बैंक के कुल निवेश का भाग 39 प्रतिशत रहा जिसमें से सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोग का भाग 34.48 प्रतिशत रहा । अतः स्पष्ट है कि बैंकिंग परिसम्पत्तियों में निवेश का भाग अन्य देशों के निवेश के भाग से काफी अधिक रहा है । इसमें निवेश के अनुपात में 1951 के पश्चात 1970 तक लगातार कमी आती रही तथा 1975 के पश्चात इसमें निरन्तर वृद्धि की प्रवृत्ति दिखायी दे रही है इसका मुख्य कारण देश की अर्थव्यवस्था में शेयरों तथा निजी पूँजी कम्पनियों में बैंक द्वारा विनियोग की बढ़ती हुई मात्रा है । अनुसूचित वाणिज्य बैंक केन्द्र और राज्य सरकार की प्रतिभूतियों के सबसे बड़े निवेशक है ।

नरसिंहम कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों की लाभदायकता को बनाए रखने के लिए वैधानिक तरलता अनुपात को 39 प्रतिशत से कम करके 20 प्रतिशत तक करने का सुझाव दिया । उन्होंने यह भी कहा कि इसमें कमी करने की प्रक्रिया इसी वर्ष से प्रारम्भ कर दी जानी चाहिए तथा अगले तीन वर्षों में बीस प्रतिशत के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया जाना चाहिए । इसी प्रकार की परिसम्पत्तियों पर दिये जाने वाले अत्यन्त निम्न ब्याज दर को बढ़ाकर कम से कम उसे बैंक के औसत ब्याज दर के बराबर किया जाना चाहिए । इससे वाणिज्य बैंक की अवरूद्ध परिसम्पत्तियों में गतिशीलता आएगी तथा इन पर दिए जाने वाले ब्याज दर में वृद्धि से राजकोषिय घाटे में महत्वपूर्ण कमी आएगी साथ ही संसाधनों के अधिकतम उत्पादक उपयोग के लिए लाने का सुझाव दिया गया है । इसमें इसी वर्ष से सुधार लाने के लिए वर्ष 1992-93 के बजट में वैधानिक तरलता अनुपात को

घटाकर 30 प्रतिशत कर दिया ।

माँग पर मुद्रा

वाणिज्य बैंक की अल्पकालीन परिसम्पत्तियों में माँग पर मुद्रा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । भारतीय वाणिज्य बैंक के सन्दर्भ में इनकी कुल परिसम्पत्तियों में माँग पर मुद्रा का अनुपात आदर्श अनुपात से काफी कम रहा । यह 1951 में कुल वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों का मात्र 1·26 प्रतिशत रहा जिसमें अगले वर्ष 1 प्रतिशत की वृद्धि हुई और यह 2·22 प्रतिशत हो गया । 1953 में वाणिज्य बैंक की कुल परिसम्पत्तियों से भाग पर मुद्रा का भाग केवल 1·81 प्रतिशत रहा जो अगले वर्ष 1954 में बढ़कर 2·06 प्रतिशत हो गया, परन्तु 1955 में इसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ और यह 2·04 प्रतिशत रहा । वाणिज्य बैंक की कुल परिसम्पत्तियों में माँग पर मुद्रा के अनुपात में इतनी अधिक कमी का मुख्य कारण केवल हमारी अर्थ व्यवस्था की विकासशील प्रवृत्ति है । अल्पविकसित देशों में अविकसित पूँजी बाजार के कारण अल्पकालीन ऋणों की माँग बहुत कम होती है । अत: माँग पर मुद्रा के अनुपात में इतनी अधिक कमी का कारण अविकसित पूँजी बाजार है ।

1956 से 1960 तक वाणिज्य बैंक की कुल परिसम्पत्तियों में माँग पर मुद्रा के अनुपात में उल्लेखनीय परिवर्तन आया जिसका कारण द्वितीय पंचवर्षीय योजना में औद्योगिकरण को प्रोत्साहित करना था । 1956 में माँग पर मुद्रा का अनुपात 1·63 प्रतिशत रहा जो 1957 में 1·31 प्रतिशत और 1958 में 3·34 प्रतिशत हो गया । इसमें 1959 में पुन: वृद्धि हुई और यह 4·26 प्रतिशत हो गया । परन्तु 1960 में यह पुन: कम होकर 2·21 प्रतिशत हो गया ।

1961 से 1965 तक वाणिज्य बैंक के माँग पर मुद्रा के अनुपात में कोई विशेष परिवर्तन नही आया। 1961 में माँग पर मुद्रा अनुपात 1·19 प्रतिशत तथा 1962 में बढ़कर 1·95 प्रतिशत हो गया। 1963 में इसमें कोई परिवर्तन नही हुआ। यह 1·9 प्रतिशत ही रहा। 1964 में यह 1·61 प्रतिशत हो गया जो 1965 में यह कम होकर 1·41 प्रतिशत हो गया।

1966 से 1970 तक वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों में माँग पर मुद्रा अनुपात में सर्वाधिक कमी आयी। 1966 में माँग पर मुद्रा कुल बैंकिंग परिसम्पत्तियों का केवल 1·19 प्रतिशत ही रहा जो कि 1967 में घटकर 1·3 प्रतिशत तथा 1968 में 1·4 प्रतिशत रहा। इसी क्रम में इसके घटने की प्रवृत्ति जारी रही तथा यह 1969 में ·79 प्रतिशत हो गया परन्तु 1970 में यह अपने निम्नतम बिन्दु पर पहुँच गया तथा 42 प्रतिशत हो गया। माँग पर मुद्रा अनुपात में सर्वाधिक कमी आयी। 1966 से माँग पर मुद्रा परिसम्पत्ति को निरन्तर गिरता हुआ अनुपात का कारण यह था कि वाणिज्य बैंक का विकास बैंक में परिवर्तित होना रहा है।

1971 से 1975 तक वाणिज्य बैंक की परिसम्पत्तियों में माँग पर मुद्रा अनुपात में कोई विशेष संरचनात्मक परिवर्तन नही हुए। 1971 में यह ·69 प्रतिशत रहा जो 1972 में बढ़कर 1·31 प्रतिशत हो गया परन्तु 1973 में इसमें फिर कमी हुई और यह ·46 प्रतिशत हो गया। अगले वर्ष इसमें 1·3 प्रतिशत की वृद्धि हुई तथा यह बढ़कर 1·76 प्रतिशत हो गया। 1975 में इसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ तथा यह 1·89 प्रतिशत ही रहा।

1976 से 1980 के दौरान भी माँग पर मुद्रा परिसम्पत्ति के अनुपात में

कोई विशेष उतार चढ़ाव की प्रवृत्ति दिखायी नही देती । इसका मुख्य कारण अल्प विकसित पूँजी बाजार ही है तथा केन्द्रीय बैंक का वाणिज्य बैंक को प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के लिए ऋण देने सम्बन्धी दबाव है । अत: 1976 में माँग पर मुद्रा का अनुपात कुल परिसम्पत्तियों का 1•5 प्रतिशत ही रहा जो अगले वर्ष 1977 में घटकर •87 प्रतिशत हो गया । 1978 में यह 1•09 प्रतिशत हो गया । 1979 में यह गिरकर •81 प्रतिशत तथा 1980 में यह मात्र •65 प्रतिशत रह गया ।

1981 से 1985 के वर्षों में वाणिज्य बैंक के माँग पर ऋण के अनुपात में गिरावट की प्रवृत्ति ही दिखाई पड़ी । हालाँकि इससे बैंक की लाभदायकता पर तो कोई प्रभाव नही पड़ा परन्तु तरलता में गिरावट अवश्य आयी है क्योंकि बैंक की अल्पकालीन परिसम्पत्तियों को नकदी परिसम्पत्तियाँ जितना ही श्रेष्ठ माना जाता है अत: बैंक की तरलता की स्थिति में सुधार करने के लिए कुल वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों में से न्यूनतम् 7 प्रतिशत भाग पर मुद्रा परिसम्पत्ति में अवश्य सम्मिलित होना चाहिए । 1981 में माँग पर मुद्रा परिसम्पत्ति •88 प्रतिशत रही जो 1982 में 1•3 प्रतिशत तथा 1983 में 1•2 प्रतिशत हो गया । इसी घटते क्रम में 1984 में यह •94 प्रतिशत तथा 1985 में 2•02 प्रतिशत हो गया ।

1986 में माँग पर मुद्रा परिसम्पत्ति अनुपात बढ़कर 2•45 प्रतिशत हो गया परन्तु अगले दो वर्ष में इसमें फिर गिरावट आयी और यह गिरकर 1987 में 1•65 प्रतिशत रह गया इसी क्रम में यह 1988 में गिरकर 1987 में 1•65 प्रतिशत रह गया इसी क्रम में यह 1988 में गिरकर मात्र 1•2 प्रतिशत रह गया परन्तु अगले वर्ष इसमें 1•22 प्रतिशत की वृद्धि हुई तथा यह बढ़कर 2•4 प्रतिशत हो गया ।

बिल्स

भारतीय वाणिज्य बैंक की कुल परिसम्पत्तियों में बिल परिसम्पत्ति का आदर्श अनुपात 10 से 15 प्रतिशत के बीच माना गया है। भारत में बिल बाजार के अव्यवस्थित होने के कारण स्वतंत्रता के पश्चात प्रारम्भ के वर्षों में बिलों का भाग बहुत कम था। 1951 में कुल वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों में से केवल 2.67 प्रतिशत हिस्सा बिलों का था जो 1952 में बढ़कर 4.96 प्रतिशत हो गया। इसी क्रम में यह बढ़कर 6.17 प्रतिशत हो गया। 1954 से देशी एवं विदेशी बिलों को अलग अलग करके दर्शाया जाने लगा। कुल बैंकिंग परिसम्पत्तियों में बिलों का अनुपात बढ़कर 11.5 प्रतिशत हो गया जिसमें से 68.73 प्रतिशत देशी बिल एवं 31.27 प्रतिशत हिस्सा विदेशी बिलों का था। 1955 में कुल परिसम्पत्तियों में बिलों का अनुपात बढ़कर 14.5 प्रतिशत हो गया जिसमें से देशी बिलों का प्रतिशत कुल बिलों का 63.26 प्रतिशत एवं विदेशी बिलों का भाग 36.74 प्रतिशत था। इस प्रकार बिल बाजार के संगठित क्षेत्र में प्रवेश कर जाने से बहुत अधिक परिवर्तन आए।

1956 में कुल परिसम्पत्तियों में बिलों का हिस्सा 12.3 प्रतिशत था जिसमें से देशी खरीदे गए बिल एवं भुनाए गए बिल दोनों का सम्मिलित प्रतिशत 63.26 प्रतिशत था तथा विदेशी बिलों का प्रतिशत 36.74 प्रतिशत रहा। 1957 में कुल बिलों का प्रतिशत बढ़कर 15.65 प्रतिशत हो गया जिसमें देशी खरीदे गये एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत कुल बिलों का 67.78 प्रतिशत था तथा विदेशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 32.22 था। इसी क्रम में 1958 में कुल परिसम्पत्तियों में बिलों का अनुपात 16.57 प्रतिशत था जिसमें से देशी खरीदे गए भुनाए गए बिलों का अनुपात 69.14 तथा विदेशी खरीदे गये भुनाए गये बिलों का प्रतिशत 30.86 रहा। 1959 में कुल परिसम्पत्तियों

में से बिलों के अनुपात में गिरावट आयी तथा यह घटकर मात्र 11.81 प्रतिशत रह गया यद्यपि इसकी संरचना में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया तथा कुल बिल खाते में देशी खरीदे गए भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 70.19 तथा विदेशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 29.81 प्रतिशत रहा §1960 में कुल परिसम्पत्तियों में बिलों का योगदान घटकर 9.97 प्रतिशत रह गया जिसमें देशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 71.65 तथा विदेशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 28.35 रहा। इस प्रकार से पिछले पाँच वर्षों में कुल बिल के प्रतिशत में तो परिवर्तन हुआ परन्तु बिलों के संस्थागत संरचना में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

1961 में कुल वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों में बिलों का अनुपात 11.95 प्रतिशत रहा जिसमें से 76.4 प्रतिशत देशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का हिस्सा था तथा शेष 21.17 प्रतिशत विदेशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का हिस्सा। इसी प्रकार 1962 में बिलों का कुल अनुपात 11.92 प्रतिशत रहा जिसमें से देशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का अनुपात 78.82 प्रतिशत तथा विदेशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का अनुपात मात्र 21.17 प्रतिशत रहा। 1963 में बिलों के प्रतिशत में कुछ बढ़ोत्तरी हुई तथा यह बढ़कर 13.65 प्रतिशत हो गया। इसमें से देशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 79.85 रहा तथा विदेशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का अनुपात 20.15 प्रतिशत रहा। 1964 में कुल परिसम्पत्तियों में बिलों का भाग 12.97 प्रतिशत रहा जिसमें से देशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 78 था तथा विदेशी खरीदे गए एव भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 22 रहा। 1965 में बैंकिंग परिसम्पत्तियों में बिलों का प्रतिशत 12.99 रहा, जिसमें से देशी खरीदे

गए एवं भुनाए गए बिलों का अनुपात 22.07 प्रतिशत रहा ।

1966 से 1970 तक बिलों के कुल अनुपात में निरन्तर वृद्धि हुई । 1966 में वाणिज्य बैंक के कुल परिसम्पत्तियों में बिलों का हिस्सा 14.21 प्रतिशत रहा जिसमें से कुल देशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 80.70 प्रतिशत रहा तथा शेष 19.3 प्रतिशत विदेशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का भाग रहा । 1967 में कुल बिल परिसम्पत्ति का भाग बढ़कर 17.08 प्रतिशत हो गया जिसमें से 75.81 प्रतिशत भाग देशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का रहा तथा विदेशी खरीदे गए तथा भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 24.19 रहा । इसी प्रकार से 1968 में कुल वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों में बिलों का अनुपात 16.87 प्रतिशत रहा इसमें देशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का अनुपात 72.68 प्रतिशत रहा जबकि विदेशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 27.32 रहा । 1969 में बिलों का कुल परिसम्पत्ति में भाग 15.87 प्रतिशत था । इसमें से देशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 77.44 रहा तथा विदेशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 22.56 हो गया । परन्तु 1970 में कुल वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्ति में कुल बिल अनुपात बढ़कर 20.75 प्रतिशत हो गया । परन्तु इसमें से देशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 82.85 हो गया । तथा विदेशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 17.15 रहा । बिल परिसम्पत्ति में इतने अधिक परिवर्तन का मुख्य कारण भारत सरकार द्वारा वाणिज्य बैंक का राष्ट्रीयकरण तथा बिल बाजार का पूर्णतया संगठित क्षेत्र में प्रवेश करना था ।

1971 में कुल वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों में बिल का भाग 18.15

प्रतिशत रहा तथा इसमें देशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 92.72 प्रतिशत रहा जबकि विदेशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत मात्र 17.08 था । 1972 में कुल बिलों का अनुपात घटकर 14.58 प्रतिशत हो गया जिसमें से देशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 91.12 था तथा विदेशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 18.88 रहा । 1973 में कुल बिलों का अनुपात बढ़कर 16.02 प्रतिशत हो गया । जिसमें से देशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 77.5 था तथा विदेशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत बढ़कर 22.5 हो गया । 1974 में कुल बिलों का अनुपात बढ़कर 16.87 प्रतिशत हो गया जिसमें से देशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 21.11 रहा । 1975 में कुल वाणिज्य बैंक की परिसम्पत्तियों में बिलों का अनुपात बढ़कर 2_.47 प्रतिशत हो गया । इन बिलों में से देशी खरीदे गए बिलों का प्रतिशत 40.81 रहा तथा देशी भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 38.75 प्रतिशत रहा । विदेशी खरीदे गए बिलों का प्रतिशत 14.87 रहा तथा देशी भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 5.33 रहा । 1975 से ही वाणिज्य बैंक द्वारा खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों को अलग अलग दर्शाया जाने लगा ।

1976 से वाणिज्य बैंक की परिसम्पत्तियों में बिल अनुपात में निरन्तर कमी आती गयी । 1976 में कुल बिल अनुपात बढ़कर 16.57 प्रतिशत रहा । इसमें से देशी खरीदे गए बिल 40.76 प्रतिशत देशी भुनाए गए बिल 38.04 प्रतिशत विदेशी खरीदे गए बिल 13.45 प्रतिशत तथा विदेशी भुनाए गए बिल 7.75 प्रतिशत हो गया । परन्तु 1977 में कुल बिल अनुपात 10.03 प्रतिशत रह गया । जिसमें से देशी बिलों का कुल प्रतिशत 65 हो गया व देशी खरीदे गये बिल 35.28 प्रतिशत [illegible] देशी भुनाए गए बिल 29.76 प्रतिशत विदेशी

खरीदे गए बिल 22.64 प्रतिशत तथा विदेशी भुनाए गए बिल मात्र 11.8 प्रतिशत था। 1978 में हालांकि बिल अनुपात 10.05 प्रतिशत हो गया। इनमें से देशी खरीदे गए बिल 42.85 प्रतिशत तथा भुनाए गए बिलो का हिस्सा 27.8 प्रतिशत तथा विदेशी खरीदे गए बिलों का हिस्सा 19.40 तथा विदेशी भुनाए गए बिलों का हिस्सा घटकर 9.95 प्रतिशत रह गया। 1979 में यह 9.2 प्रतिशत हो गया इसमें से देशी खरीदे गए बिलों का अनुपात 41.46 प्रतिशत, भुनाए गए देशी बिलों का अनुपात 25.6 प्रतिशत विदेशी खरीदे गए बिलों का अनुपात 22.14 प्रतिशत तथा विदेशी भुनाए गए बिलों का अनुपात 10.79 प्रतिशत हो गया। 1980 में कुल बिल अनुपात 1976 की अपेक्षा लगभग आधा रह गया और कुल परिसम्पत्तियों में बिलों का अनुपात 8.59 प्रतिशत रह गया। इसमें से देशी खरीदे गए बिलों का अनुपात 30.08 प्रतिशत, देशी भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 18.9 तथा विदेशी खरीदे गए बिलों का प्रतिशत 17.93 व विदेशी भुनाए गए बिलों का प्रतिशत मात्र 6.27 प्रतिशत रहा।

1981 में कुल वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों में बिलों का भाग 7.54 प्रतिशत रहा। इसमें देशी खरीदे गए बिलों का प्रतिशत 41.15 रहा तथा देशी भुनाए गए बिलो का प्रतिशत 27.87 रहा। विदेशी खरीदे गए बिल 22.53 प्रतिशत तथा भुनाए गए बिल 8.43 प्रतिशत रहे। इसी प्रकार 1982 मे कुल बिल अनुपात 7.69 अनुपात रहा, इसमें देशी खरीदे गए बिलों का प्रतिशत 46.97 तथा भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 28.99 रहा। विदेशी बिलों में खरीदे गए बिलों का प्रतिशत 17 तथा भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 7.03 रहा। 1983 में कुल वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों में बिल का अनुपात 6.89 प्रतिशत रह गया लेकिन इसके संरचनात्मक वितरण में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। कुल बिल परिसम्पत्ति में देशी खरीदे गए बिल का अनुपात 42.57 प्रतिशत तथा देशी भुनाए गए बिलों का अनुपात 32.56 प्रतिशत रहा। विदेशी खरीदे गए बिलों का प्रतिशत 16.53 तथा विदेशी भुनाए गए बिलों

का अनुपात 8•34 प्रतिशत रहा । 1984 में कुल बिल परिसम्पत्ति 6•57 प्रतिशत रही, इसमें से देशी खरीदे गए बिलों का प्रतिशत 42•9, देशी भुनाए गए बिलों का अनुपात 31•42 प्रतिशत रहा । विदेशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का अनुपात 25•67 रहा । 1985 में कुल बिलों का अनुपात 5•25 प्रतिशत रह गया, जिसमें से देशी खरीदे गए बिलों का अनुपात 44•95 प्रतिशत तथा देशी भुनाए गए बिलों का अनुपात 29•6 प्रतिशत रहा । इसमें से विदेशी खरीदे गए बिलों का अनुपात 17•26 प्रतिशत तथा विदेशी भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 8•18 रहा । इस प्रकार से इन पांच वर्षों में बिल परिसम्पत्ति की संरचना मे कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ ।

1986 में कुल परिसम्पत्तियों मे बिल अनुपात 5•39 प्रतिशत हो रहा, इसमें से 39•7 प्रतिशत देशी खरीदे गए बिलों का भाग रहा तथा देशी भुनाए गए बिलों का भाग 32•76 प्रतिशत रह गया । विदेशी खरीदे गए बिलों का भाग 19•06 प्रतिशत तथा विदेशी भुनाए गए बिलों का भाग 4•47 प्रतिशत रहा । इसी क्रम में 1987 में कुल बिल परिसम्पत्ति का भाग मात्र 5•60 प्रतिशत रहा, जिसमें से देशी खरीदे गए बिलों का अनुपात 36•95 प्रतिशत रहा तथा देशी भुनाए गए बिल का भाग 30•82 प्रतिशत रहा तथा विदेशी विदेशी खरीदे गए बिलों का भाग 20•92 प्रतिशत तथा विदेशी भुनाए गए बिलों का भाग 11•29 प्रतिशत रहा । 1988 में कुल बिल परिसम्पत्ति का भाग 5•82 प्रतिशत रहा, जिसमें से देशी खरीदे गए बिलों का भाग 33•8 प्रतिशत तथा देशी भुनाए गए बिलों का भाग 34•24 प्रतिशत रहा और विदेशी खरीदे गए बिलों का भाग 21•46 प्रतिशत तथा भुनाए गए बिलों का भाग 10•5 प्रतिशत हो गया । 1989 में भी कुल बिल 5•46 प्रतिशत हो रहे । इसमें देशी खरीदे गए बिलों का अनुपात 32•35 प्रतिशत तथा देशी भुनाए गए बिलों का अनुपात 29•2 प्रतिशत हो गया । कुल बिलों में से विदेशी खरीदे गए बिलों का अनुपात 24•43

प्रतिशत तथा विदेशी भुनाए गए बिलों का अनुपात 74•3 प्रतिशत रहा । इस प्रकार से कुल के अनुपात में निरन्तर गिरावट आयी परन्तु बिल परिसम्पत्तियों की संरचना में सुधार हुआ ।

ऋण परिसम्पत्ति

राष्ट्रीयकरण से पूर्व वाणिज्य बैंकों का मुख्य उद्देश्य केवल लाभ आधार पर ऋण उपलब्ध करवाना था अत: राष्ट्रीय करण से पूर्व कुल बैंकिंग परिसम्पत्तियों में ऋण परिसम्पत्ति का भाग सबसे अधिक था । प्रस्तुत आंकड़ों का विश्लेषण करने के ये तथ्य उभरकर आते है । 1951 में कुल परिसम्पत्तियों में ऋण का भाग 49•73 प्रतिशत था जबकि कुल ऋण जमा अनुपात 63•48 प्रतिशत था एवं 523 करोड रूपये ऋण परिसम्पत्ति में विनियोजित किया गया । 1952 में कुल परिसम्पत्तियों मे ऋण का भाग घटकर 46•16 प्रतिशत एवं ऋण जमा अनुपात 59•61 प्रतिशत रह गया तथा ऋणों की मात्रा भी घटकर 461 करोड रूपये रह गयी । 1953 में कुल ऋणों का प्रतिशत घटकर 44•73 प्रतिशतरह गया तथा ऋण जमा अनुपात 53•21 प्रतिशत एवं कुल ऋणों की मात्रा 442 करोड़ रूपये रह गयी । 1954 में कुल परिसम्पत्तियों में ऋण के प्रतिशत में कमी आयी और यह 39•5 प्रतिशत रह गया जबकि ऋण जमा अनुपात बढ़कर 61•15 प्रतिशत एवं कुल ऋण की मात्रा 468 करोड़ रूपये हो गयी । 1955 मे कुल परिसम्पत्तियों में ऋण की मात्रा 37•86 प्रतिशत रही तथा ऋण जमा अनुपात 63•02 प्रतिशत हो गया व कुल ऋण परिसम्पत्ति 514 करोड़ रूपये हो गयी ।

1956 मे कुल परिसम्पत्तियों में ऋणों का प्रतिशत 40•47 रहा तथा ऋण जमा अनुपात 53•6 प्रतिशत व कुल ऋण की मात्रा मात्र 458 करोड़ रूपये रही 1957 में इसमें वृद्धि हुई तथा कुल ऋणों का प्रतिशत बढ़कर 45•66 ऋण जमा अनुपात

63 प्रतिशत एवं कुल परिसम्पत्तियों में ऋण की मात्रा 632 करोड़ रूपये हो गयी। 1958 में कुल परिसम्पत्तियों में ऋणों का प्रतिशत 31.88 तथा ऋण जमा अनुपात 71.4 प्रतिशत रह गया कुल ऋण की मात्रा 781 करोड़ रूपये रही। 1959 में कुल परिसम्पत्तियों में ऋणों का भाग बढ़कर 39.43 प्रतिशत हो गया तथा ऋण जमा अनुपात 67.7 प्रतिशत रहा व कुल ऋण की मात्रा 890 करोड़ रूपये हो गयी 1960 में कुल ऋणों का प्रतिशत बढ़कर 40.42 प्रतिशत ऋण जमा अनुपात 58.1 प्रतिशत एवं कुल ऋण की मात्रा 899 करोड़ रूपये रह गयी।

1961 में कुल परिसम्पत्तियों में ऋण का भाग 48.16 प्रतिशत हो गया तथा कुल ऋण जमा अनुपात 75.6 प्रतिशत एवं कुल ऋण की मात्रा बढ़कर 1319 करोड़ रूपये हो गयी। 1962 में कुल ऋण परिसम्पत्ति 48.43 प्रतिशत रही जो 1407 करोड़ रूपये थी तथा ऋण जमा अनुपात 73.2 प्रतिशत हो गया। 1963 में कुल परिसम्पत्तियों में ऋण का प्रतिशत 49.25 हो गया जो कि 1588 करोड़ रूपये था तथा ऋण जमा अनुपात 77.8 प्रतिशत था। 1964 में कुल परिसम्पत्ति में ऋण का भाग 50.92 प्रतिशत हो गया जिसकी राशि 1816 करोड़ रूपये थी तथा ऋण जमा अनुपात 79.5 प्रतिशत था। 1965 में ऋणों का प्रतिशत बढ़कर 51.49 हो गया जिसकी मात्रा 2033 करोड़ रूपये थी तथा ऋण जमा अनुपात 78.7 प्रतिशत रहा।

1966 में ऋण परिसम्पत्ति का भाग 50.39 प्रतिशत रहा जो कि 2006 करोड़ रूपये था तथा ऋण जमा अनुपात 77.17 प्रतिशत रहा। 1967 में ऋण परिसम्पत्ति 50.82 प्रतिशत हो गयी। जिसकी मात्रा 3031 करोड़ रूपये थी तथा ऋण जमा अनुपात बढ़कर 78.6 प्रतिशत हो गया। 1968 में कुल परिसम्पत्तियों में ऋण का भाग 51.13 प्रतिशत हो गया। जिसकी कुल राशि 3396 करोड़ रूपये

थी । तथा ऋण जमा अनुपात 78•3 प्रतिशत रह गया । 1969 में कुल परिसम्पत्तियों में ऋण का भाग 53•35 प्रतिशत रहा जिसकी मात्रा 3560 करोड़ रूपये थी तथा इस वर्ष ऋण जमा अनुपात 78•4 प्रतिशत रहा ।

1969 में 14 बड़ी वाणिज्य बैंक के राष्ट्रीयकरण से बैंक ऋण परिसम्पत्ति की संरचना में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है तथा सरकार द्वारा विनियोग परिसम्पत्ति का उपयोग राजकोषिय घाटे की पूर्ति के लिए किये जाने से ऋण परिसम्पत्ति की मात्रा में भी कमी आयी है । 1970 में कुल परिसम्पत्तियों में ऋणों का भाग 49•9 प्रतिशत रहा तथा ऋण जमा अनुपात 78•82 प्रतिशत रहा एवं कुल ऋण की मात्रा 4220 करोड़ रूपये रही । 1971 में ऋण परिसम्पत्ति का भाग 51•8 प्रतिशत हो गया जिसकी मात्रा 4765 करोड़ रूपये थी तथा ऋण जमा अनुपात 73•37 प्रतिशत रहा 1972 में ऋण परिसम्पत्ति 53•68 प्रतिशत रही जो कि 5604 करोड़ रूपये थी । इस वर्ष ऋण जमा अनुपात 70•74 प्रतिशत रहा । 1973 में ऋण परिसम्पत्ति 52•39 प्रतिशत रही जिसकी मात्रा 6822 करोड़ रूपये थी तथा इस वर्ष ऋण जमा अनुपात 72•8 प्रतिशत रहा । 1974 में कुल परिसम्पत्तियों में ऋणों का प्रतिशत 50•2 रहा तथा कुल ऋण की मात्रा 8171 करोड रूपये रही तथा ऋण जमा अनुपात 74•14 प्रतिशत रहा । 1975 में कुल ऋण परिसम्पत्तियों के प्रतिशत में कमी आयी तथा यह 48•47 प्रतिशत हो गया तथा कुल ऋण की मात्रा बढ़कर 10180 करोड़ रूपये हो गयी तथा ऋण जमा अनुपात 74•15 प्रतिशत रहा ।

1976 में कुल परिसम्पत्तियों में ऋण का प्रतिशत 43 रहा तथा यह 10877 करोड रूपये रहा इस वर्ष ऋण जमा अनुपात 70•8 प्रतिशत होरहा । 1977 में कुल परिसम्पत्तियों में ऋण का भाग घटकर 49 प्रतिशत हो गया तथा ऋण की मात्रा 13173 करोड रूपये थी इस वर्ष ऋण जमा अनुपात 75 प्रतिशत रहा 1978 में ऋण परिसम्पत्ति का भाग कम होकर 43•66 प्रतिशत रह गया और इसकी कुल मात्रा

19939 करोड़ रूपये रही तथा ऋण जमा अनुपात 67.3 प्रतिशत रहा । 1979 में कुल ऋण परिसम्पत्तियों का भाग 44.59 प्रतिशत हो गया । जिसकी मात्रा 17795 करोड रूपये थी तथा ऋण जमा अनुपात 65.9 प्रतिशत रहा । 1980 में कुल परिसम्पत्तियों में ऋण का भाग 43.99 प्रतिशत हो गया तथा ऋण की मात्रा 21546 करोड़ रूपये रही तथा ऋण जमा अनुपात 67.8 प्रतिशत रहा ।

1981 में ऋण परिसम्पत्ति का भाग 43.88 प्रतिशत रहा जिसकी मात्रा 29681 करोड रूपये रही और ऋण जमा अनुपात 67.0 प्रतिशत रहा । 1982 में कुल परिसम्पत्तियों में ऋण का भाग 43.41 प्रतिशत रहा तथा ऋण की मात्रा 35493 करोड रूपये रही तथा ऋण जमा अनुपात 69.4 प्रतिशत रहा । 1983 में कुल परिसम्पत्ति में ऋण का भाग 42 प्रतिशत रहा तथा ऋण की मात्रा 41294 करोड रूपये रही एवं ऋण जमा अनुपात 68.2 प्रतिशत हो गया । 1984 में ऋण परिसम्पत्ति का भाग 42.49 प्रतिशत रहा तथा ऋण की मात्रा 48439 करोड़ रूपये रही तथा ऋण जमा अनुपात 67.2 प्रतिशत रहा । 1985 में ऋण परिसम्पत्ति का भाग 41.74 प्रतिशत रहा तथा ऋण की मात्रा 53860 करोड रूपये रही एवं ऋण जमा अनुपात 63 प्रतिशत रहा ।

इसी प्रकार से ऋण परिसम्पत्ति में कमी आने की प्रवृत्ति जारी रही और यह 1986 में घटकर 39.36 प्रतिशत हो गयी। ऋण की मात्रा में कुछ वृद्धि हुई और यह 60551 करोड़ रूपये हो गयी। इस वर्ष ऋण जमा अनुपात 60 प्रतिशत रहा । 1987 में ऋण परिसम्पत्ति घट कर 37.25 प्रतिशत रहा तथा ऋण की मात्रा 70536 करोड रूपये रही व ऋण जमा अनुपात 59.8 प्रतिशत रहा । 1988 में ऋण परिसम्पत्ति 37.38 प्रतिशत रही तथा कुल ऋण की मात्रा 80123 करोड़ रूपये रही इस वर्ष ऋण जमा अनुपात 57.5 प्रतिशत रहा । 1989 में ऋण परि-

हो गयी व ऋण जमा अनुपात 60•5 प्रतिशत रहा । 1990 में ऋण जमा अनुपात 58•97 प्रतिशत रहा तथा कुल परिसम्पत्तियों में ऋण का भाग 38•43 प्रतिशत रहा व ऋण की मात्रा बढ़कर 108935 करोड रूपये हो गयी । इस प्रकार आंकड़ो के विश्लेषण से स्पष्ट है कि ऋण परिसम्पत्ति के प्रतिशत में निरन्तर गिरावट का मुख्य कारण रिजर्व बैंक द्वारा विनियोग एवं नकदी परिसम्पत्ति अनुपात में निरन्तर वृद्धि ही रही है ।

कुल बैंक ऋणों का क्षेत्रीय विवरण

वाणिज्य बैंक की ऋण परिसम्पत्तियों की संरचना में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन आए है । राष्ट्रीयकरण से पूर्व बैंक के कोई सामाजार्थिक उद्देश्य नही थे और वह अपने ऋणों का आवंटन पूर्णतयः लाभ आधार पर करते थे । अतः कृषि क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले ऋणों का भाग बहुत कम था । उद्योग क्षेत्र को 1951 में कुल ऋणों का 33•5 प्रतिशत भाग वाणिज्य क्षेत्र को, 52•8 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र को, 2•2 प्रतिशत भाग व्यक्तिगत एवं अन्य व्यवसायिक क्षेत्र को, 7•3 प्रतिशत भाग तथा अन्य दूसरे क्षेत्रों को 4•2 प्रतिशत भाग प्रदान किया गया । अगले पाँच वर्षों तक इसमें कोई परिवर्तन नही आया । 1965 से ऋण परिसम्पत्ति के वितरण संरचना में कुछ परिवर्तन आया तथा उद्योग व व्यक्तिगत क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले ऋणों में वृद्धि हुई । 1956 में कुल ऋणों में उद्योग क्षेत्र को 36•2 प्रतिशत ऋण वाणिज्य क्षेत्र को 36•5 प्रतिशत ऋण कृषि क्षेत्र को 2 प्रतिशत ऋण व्यक्तिगत एवं व्यवसाय क्षेत्र को 9•4 प्रतिशत ऋण तथा अन्य दूसरे क्षेत्रों को 7•4 प्रतिशत ऋण प्रदान किए गए । ऋण परिसम्पत्ति की संरचना में अगले वर्षों में कोई विशेष परिवर्तन नही आया । 1960 में कुल ऋणों का 29•6 प्रतिशत भाग

उद्योग क्षेत्र को 35•9 प्रतिशत भाग वाणिज्य क्षेत्र को 6•6 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र को 7•9 प्रतिशत भाग व्यक्तिगत एवं व्यवसायिक क्षेत्र को तथा 10•1 प्रतिशत भाग अन्य दूसरे क्षेत्र को प्रदान किए गए । इसके पश्चात के वर्षों में उद्योग क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले भाग में निरन्तर वृद्धि होती गयी । 1961 में कुल ऋणों का 50•8 प्रतिशत भाग उद्योग क्षेत्र को 28•6 प्रतिशत भाग वाणिज्य क्षेत्र को •4 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र को 2•7 प्रतिशत भाग व्यक्तिगत एवं व्यवसायिक क्षेत्र को तथा 6•7 प्रतिशत भाग अन्य दूसरे क्षेत्रों को प्रदान किया जाता था । 1966 में कुल ऋण परिसम्पत्ति में उद्योग का भाग बढ़कर 64•0 प्रतिशत हो गया । वाणिज्य क्षेत्र को 24•4 प्रतिशत कृषि क्षेत्र को •2 प्रतिशत व्यक्तिगत एवं व्यवसायिक क्षेत्र को 8•4 प्रतिशत तथा अन्य दूसरे क्षेत्र को 2•7 प्रतिशत ऋण प्रदान किया जाता था । 1969 में राष्ट्रीयकरण से पूर्व वाणिज्य बैंक की ऋण परिसम्पत्ति में उद्योग का भाग 68•5 प्रतिशत, वाणिज्य क्षेत्र को 18•2 प्रतिशत, कृषि क्षेत्र को 3•2 प्रतिशत, व्यक्तिगत एवं व्यवसायिक क्षेत्र को 7•4 प्रतिशत, तथा अन्य दूसरे क्षेत्र को 3•7 प्रतिशत ऋण प्रदान किए गए। आँकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 60 के दशक में उद्योग क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले ऋणों का प्रतिशत निरन्तर बढ़ता जा रहा था इसका मुख्य कारण स्वतंत्रता के पश्चात देश के उद्योग धन्धों का तेजी से विस्तार होना है ।

राष्ट्रीयकरण के पश्चात वाणिज्य बैंक की ऋण परिसम्पत्ति की संरचना में बहुत अधिक परिवर्तन आए । बैंक के सामाजार्थिक लक्ष्यों के कारण कृषि तथा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को दिए जाने वाले ऋणों की मात्रा में वृद्धि हुई 1970 में उद्योग क्षेत्र को कुल ऋणों का 63•3 प्रतिशत भाग वाणिज्य क्षेत्र को 17•3 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र को 7•1 प्रतिशत भाग तथा अन्य क्षेत्रों को 12•1 प्रतिशत ऋण प्रदान

किया गया । 1975 तक इनके अनुपातों में परिवर्तन हुआ तथा उद्योग क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले ऋणों का भाग घटकर 56.5 प्रतिशत रह गया । वाणिज्य क्षेत्र को मात्र 16.7 प्रतिशत, ऋण कृषि क्षेत्र के ऋणों का भाग बढ़कर कुल ऋणों का 10.8 प्रतिशत, व्यक्तिगत एवं व्यवसायिक क्षेत्र को 3.5 प्रतिशत, तथा अन्य दूसरे क्षेत्रों को 12.5 प्रतिशत ऋण प्रदान किया जाता था । 1980 तक ऋण परिसम्पत्ति संरचना में काफी बदलाव आया तथा उद्योग क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले ऋणों का भाग घटकर 48.8 प्रतिशत रह गया । वाणिज्य क्षेत्र को 19.7 प्रतिशत कृषि क्षेत्र का भाग बढ़कर 15.7 प्रतिशत एवं व्यक्तिगत एवं व्यवसायिक क्षेत्र का 5.6 प्रतिशत व अन्य दूसरे क्षेत्र को 10.2 प्रतिशत ऋण प्रदान किया गया । प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले ऋणों के भाग में वृद्धि के साथ ही ऋण परिसम्पत्ति संरचना में काफी महत्वपूर्ण परिवर्तन आते गए । 1985 में कुल ऋणों का 33.3 प्रतिशत भाग उद्योग क्षेत्र को, 5.5 प्रतिशत भाग वाणिज्य क्षेत्र में, 16 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र में, 22.5 प्रतिशत भाग व्यक्तिगत एवं व्यवसायिक क्षेत्र में, तथा 10.7 प्रतिशत भाग अन्य क्षेत्र को प्रदान किया गया । 1988 में कुल परिसम्पत्तियों का मात्र 15 प्रतिशत भाग उद्योग क्षेत्र में 28.8 प्रतिशत भाग वाणिज्य क्षेत्र में 18.4 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र में 20 प्रतिशत भाग व्यक्तिगत व व्यवसायिक क्षेत्र में तथा 17.8 प्रतिशत भाग अन्य दूसरे क्षेत्रों के लिए प्रदान किया गया । इस प्रकार से राष्ट्रीयकरण के पश्चात के वर्षों में उद्योग एवं वाणिज्य क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले ऋणों में निरन्तर कमी आती गयी तथा कृषि उद्योग स्वरोजगार कार्यक्रमों आदि सामाजिक उद्देश्यों के लिए ऋण का अधिक भाग प्रदान किया जाने लगा था । इन ऋणों पर 25 प्रतिशत सहायिकिया प्रदान किए जाने

एवं शेष 75 ऋणों पर बहुत कम ब्याज दर लिए जाने के कारण बैंक के कुल आगम एवं लाभदायकता में कमी आयी ।

प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले अग्रिम

पिछले अध्याय में दिए गए आँकड़ों का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि 1970 से प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले अग्रिमों में निरन्तर वृद्धि आयी है । 1970 में प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को कुल अग्रिमों का 22.75 प्रतिशत ऋण प्रदान किया गया जिसको कुल मात्रा 1013 करोड़ रूपये थी । इसमें से कृषि क्षेत्र को प्रत्यक्ष रूप से 5.7 प्रतिशत और अप्रत्यक्ष रूप से 3.59 प्रतिशत व कुल 8.98 प्रतिशत ऋण लघु उद्योग क्षेत्र को 10.53 प्रतिशत तथा अन्य दूसरे क्षेत्रों को 3.25 प्रतिशत ऋण प्रदान किया गया । जबकि इस वर्ष कुल ऋणों का 30 प्रतिशत प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को देने का लक्ष्य निर्धारित किया गया । अगले वर्षों में इस क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले ऋणों की मात्रा में निरन्तर वृद्धि होती रही और 1975 में प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले ऋणों की कुल मात्रा बढ़कर 7609 करोड़ रूपये हो गयी जो कि कुल ऋणों का 29.18 प्रतिशत था जो कि निर्धारित लक्ष्य 30 प्रतिशत को काफी निकट था । इस वर्ष कृषि क्षेत्र को कुल ऋणों का 11.45 प्रतिशत ऋण प्रदान किया गया । जिसमें से 8.11 प्रतिशत प्रत्यक्ष रूप से व 3.34 प्रतिशत ऋण अप्रत्यक्ष रूप से लघु एवं कुटीर उद्योग क्षेत्र को 12.88 प्रतिशत ऋण एवं अन्य दूसरे क्षेत्र को 4.9 प्रतिशत ऋण प्रदान किया गया । यदि हम 1970 को आधार वर्ष मानकर चलें तो कुल ऋणों के सूचकांक में 241.14 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले ऋणों के सूचकांक में 257.55 प्रतिशत की वृद्धि हुई । अतः स्पष्ट है कि प्राथ-

मिकता प्राप्त क्षेत्र के सूचकांक में अधिक तीव्र गति से विस्तार हुआ । 1978 तक सभी वाणिज्य बैंकों ने अपने निर्धारित लक्ष्य 30 प्रतिशत ऋण प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को प्राप्त कर लिया । इस क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले ऋणों की मात्रा में निरन्तर वृद्धि आती रही । 1980 तक प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले कुल ऋणों की मात्रा बढ़कर 6981 करोड़ रूपये हो गयी तथा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले ऋणों का सूचकांक बढ़कर 698•14 प्रतिशत हो गया । जबकि कुल ऋणों में वृद्धि सूचकांक में मात्र चार गुना वृद्धि हुई और यह बढ़कर 459•41 प्रतिशत की वृद्धि हुई । प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले कुल ऋणों का प्रतिशत बढ़कर 32•40 प्रतिशत हो गया । जो कि निर्धारित तथ्य से 2•9 प्रतिशत अधिक है । इस वर्ष कृषि क्षेत्र को कुल ऋणों का 13•52 प्रतिशत,लघु उद्योग क्षेत्र को 12•6 प्रतिशत,तथा अन्य दूसरे क्षेत्र को 6•27 प्रतिशत ऋण प्रदान किया गया । 1982 से प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले ऋणों का प्रतिशत बढ़कर 40 प्रतिशत कर दिया गया तथा सभी वाणिज्य बैंकों ने निर्धारित लक्ष्य के इसी वर्ष प्राप्त कर लिया तथा 1982 में कुल ऋणों का 39•12 प्रतिशत ऋण प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को दिया गया । 1985 तक प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले ऋणों का सूचकांक बढ़कर 2028•03 प्रतिशत हो गया अर्थात इन 15 वर्षों में इसमें बीस गुना वृद्धि हुई जबकि कुल ऋण परिसम्पत्ति के सूचकांक में मात्रा 14 गुना वृद्धि हुई और यह बढ़कर 1477-96 हो गया । इस वर्ष प्राथमिकता प्रदान क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले कुल ऋणों की मात्रा बढ़कर 20544 करोड़ रूपये हो गयी तथा कुल ऋणों का 42•7 प्रतिशत ऋण प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को प्रदान किया गया जिसमें से कृषि क्षेत्र को 17•7 प्रतिशत, ऋण लघु उद्योग क्षेत्र को 15•85 प्रतिशत ऋण,तथा अन्य दूसरे क्षेत्र को 9•36 प्रतिशत ऋण

प्रदान किया गया । 1990 तक प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले ऋणों की मात्रा में बहुत गति से वृद्धि हुई तथा कुल ऋणों का लगभग 44 प्रतिशत प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को प्रदान किया गया जिससे कृषि क्षेत्र को 18.2 प्रतिशत ऋण प्रदान किया गया व लघु उद्योग क्षेत्र को 17.62 प्रतिशत ऋण व अन्य दूसरे क्षेत्र को 18.34 प्रतिशत ऋण प्रदान किया गया । प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के ऋण सूचकांक में 40 गुना वृद्धि हुई और इसका सूचकांक बीस वर्षों में बढ़कर 3904 अंक तक पहुँच गया जबकि कुल ऋण सूचकांक में अपेक्षाकृत रूप से धीमी गति से वृद्धि हुई तथा यह 1990 में 2969.85 ही रहा ।

वैभिन्नित ब्याज दर योजना पर ऋण

वैभिन्नित ब्याज दर योजना जनवरी 1972 से समाज के कमजोर व्यक्तियों को लाभान्वित करने के लिए प्रारम्भ की गयी । इस योजना के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में जिनकी वार्षिक आय 20 हजार रूपए तक वार्षिक और शहरी क्षेत्र में तीस हजार रूपए वार्षिक हो कम है वे बैंक से 4 प्रतिशत की न्यूनतम ब्याज दर पर ऋण लेने योग्य है । दिसम्बर 1978 से इस योजना को परिष्कृत किया गया । अब इस योजना के अन्तर्गत कुल अग्रिमों का 1/2 प्रतिशत के स्थान पर 1 प्रतिशत ऋण देने का निर्णय लिया गया । समाज के कमजोर वर्ग के उन व्यक्तियों को इस योजना के अन्तर्गत लाभान्वित करने का लक्ष्य रखा गया जो अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति तथा समाज के कमजोर व पिछड़े वर्ग से सम्बन्धित है ।

1972 में वैभिचित ब्याज पर योजना के अन्तर्गत 2.6 लाख खातों पर .87 करोड रूपये का ऋण प्रदान किया गया जो कि कुल ऋणों का .02 प्रतिशत

था । परन्तु 1973 में उसमे बहुत अधिक वृद्धि हुई और यह बढ़कर 10.6 लाख रूपये हो गया जो कि कुल ऋणों का .22 प्रतिशत है इस प्रकार फिर भी उपलब्धियाँ लक्ष्य से कम हो रही । 1975 में 10 लाख खातों पर 47.34 करोड़ रूपये का ऋण वैभिचित व्याज का योजना के अन्तर्गत प्रदान किया गया जो कि कुल ऋणों का .56 प्रतिशत था 1980 में वैभिन्नित ब्याज दर योजना के अन्तर्गत प्रदान किए जाने वाले चरणों के निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त कर लिया गया तथा 251 लाख खातों पर 193.56 करोड़ रूपये को ऋण प्रदान किया गया जो कि कुल ऋण परिसम्पत्तियों का 1.04 प्रतिशत है । इसके बाद के वर्षों में लगातार लक्ष्य से अधिक मात्रा में ऋण प्रदान किए जाते रहे । 1985 में 485 लाख खातों पर 486.08 करोड़ रूपये का ऋण प्रदान किया गया जो कि कुल ऋणों का 1.15 प्रतिशत था जो कि निर्धारित लक्ष्य से 15 प्रतिशत अधिक है । 1990 में 42.87 लाख खातों पर 708.45 करोड़ रूपये का ऋण प्रदान किया गया जो कि कुल ऋणों का .82 प्रतिशत है ।

इस प्रकार से प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को वाणिज्य बैंक अपनी सबसे अधिक लाभदायक परिसम्पत्ति का विनियोग अत्यन्त निम्न ब्याज पर पर करता है । इससे वाणिज्य बैंक की लाभदायकता बहुत अधिक प्रभावित हुई है । पिछले कुछ वर्षों से वाणिज्य बैंक के ओवरड्यू में अधिक वृद्धि हुई है । ओवर ड्यू तथा बढ़ते हुए बीमार ऋणों से बैंक की आर्थिक स्थिति काफी खराब होती जा रही है । क्योंकि इन सन्देहजनक ऋण परिसम्पत्तियों की क्षतिपूर्ति बैंक के लाभ से ही की जाती है[3] हाल ही के वर्षों में बैंकिंग अर्थशास्त्री डॉ० कुरूप ने अपने एक अध्ययन

3-See- Financial Express, New Delhi sat. Dec. 8, 1990
page-4 "Lending to Priority sector hurts Banks

में बताया कि कुल बैंक ऋणों का लगभग 8 प्रतिशत ओवरड्यू है तथा अकेले प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के आवरड्यू लगभग 26 प्रतिशत है । 17 दिसम्बर 1991 में नरसिंहम कमेटी ने भी अपनी रिपोर्ट में बताया कि कुल ऋणों में खराब एवं जोखिम वाले ऋणों का भाग सबसे अधिक प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के ऋण ही है । अत: कमेटी ने सुझाव भी दिया कि इन खराब परिसम्पत्तियों की संरचना में पुर्न सुधार के लिए एक परिसम्पत्ति पुर्नसंरचना कोष की स्थापना की जाए । जो खराब ऋणों की क्षति पूर्ति एवं शोधन का कार्य करेंगे । कमेटी ने यह सुझाव किए जाने का सुझाव दिए । इसमें कमी इसी वर्ष से प्रारम्भ कर दी गयी है ।

सभी अनुसूचित वाणिज्य बैंक परिसम्पत्तियों का तुलनात्मक विवरण

वाणिज्य बैंकिग परिसम्पत्तियों की संरचना में आए परिवर्तनों का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि परिसम्पत्तियों के वितरण में निरन्तर उतार चढ़ाव की प्रकृति आती रही । 1957 में रिजर्व नकदी अनुपात 10.99 प्रतिशत था जबकि वैधानिक तरलता अनुपात 35.26 प्रतिशत रहा । कुल परिसम्पत्तियों में ऋण का भाग 49.73 प्रतिशत मांग पर मुद्रा का भाग 1.22 प्रतिशत एवं बिल अनुपात 2.96 प्रतिशत रहा । अगले 5 वर्षों में इनकी संरचना में कोई विशेष परिवर्तन नही आया एवं 1956 में रिजर्व नकदी अनुपात 8.7 प्रतिशत रहा जबकि निवेश अनुपात घटकर 36.9 प्रतिशत हो गया तथा ऋणों का भाग भी कम होकर 40.47 प्रतिशत रह गया मांग पर मुद्रा अनुपात 2.03 प्रतिशत हो गया । बिल परिसम्पत्ति के भाग में काफी अधिक वृद्धि हुई और यह बढ़कर 12.65 प्रतिशत हो गया । इन वर्षों में बिल परिसम्पत्ति के अनुपात में निरन्तर वृद्धि का कारण मुद्रा बाजार के विकास होना था । 1961 तक नकदी परिसम्पत्ति में काफी कमी आयी और यह घटकर

6•7 प्रतिशत हो गयी निवेश अनुपात भी घटकर 32 प्रतिशत पर आ गया। जबकि ऋण अनुपात बढ़कर 48•43 प्रतिशत माँग पर मुद्रा अनुपात 1•19 प्रतिशत तथा बिल अनुपात 11•2 प्रतिशत हो गया। 1965 तक रिजर्व नकदी अनुपात बढ़कर 6•3 प्रतिशत निवेश अनुपात घटकर 27•8 प्रतिशत ऋण अनुपात 50•39 प्रतिशत माँग पर मुद्रा अनुपात 1•42 प्रतिशत तथा बिल अनुपात 12•99 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार से 1969 में रिजर्व नकदी अनुपात 6•65 प्रतिशत निवेश अनुपात 22•94 प्रतिशत ऋण अनुपात 49•25 प्रतिशत माँग पर मुद्रा अनुपात •79 प्रतिशत एवं बिल अनुपात 15•87 प्रतिशत रहा। इस समय ऋण परिवर्तन के भाग को निरन्तर बढ़ते रहने की प्रवृत्ति रही क्योंकि बैंक पूर्णतया लाभदायकता आधार पर ऋण विनियोजित कर रहे थे।

जुलाई 1969 में 14 बड़ी बैंके के राष्ट्रीयकरण के पश्चात उनकी परिसम्पत्तियों की संरचना में काफी परिवर्तन आया। परिसम्पत्ति संरचना आँकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 1969 से 1990 तक बैंक परिसम्पत्तियों में नकदी की मात्रा में निरन्तर वृद्धि की प्रवृत्ति रही तथा यह 1970 में634 प्रतिशत थी जो 1990 में बढ़कर 15•31 प्रतिशत हो गयी। रिजर्व नकदी निरन्तर बढ़ती मात्रा से बैंक की लाभदायकता में गिरावट आयी है क्योंकि नकदी से बैंक को किसी प्रकार की आय नही प्राप्त होती है। उल्टे यह बैंक परिसम्पत्ति की लागत में निरन्तर वृद्धि करती है। विनियोग का भाग भी निरन्तर बढ़ता हुआ रहा है। यह 1970 में मात्र 22•50 प्रतिशत था जो कि बढ़कर 1990 में 40•14 प्रतिशत हो गया इन परिसम्पत्तियों पर भी बैंक को पर्याप्त लाभ नही प्राप्त होता है अत: इस वर्ष से इसे नरसिम्हम पैनल कमेटी ने घटाकर 20 प्रतिशत लाने का सुझाव दिया। ऋण परिसम्पत्ति में निरन्तर कमी आती गयी क्योंकि नकदी एवं निवेश परि-

सम्पत्ति में लगातार वृद्धि होती रही थी। इस प्रकार ऋण जो कि 1970 में कुल परिसम्पत्तियों का 49.82 प्रतिशत थे 1990 में घटकर मात्र 38.76 प्रतिशत रह गये। माँग पर मुद्रा परिसम्पत्ति में निरन्तर वृद्धि आती गयी। यह 1970 में .42 प्रतिशत था बढ़ कर 1990 में 2.41 प्रतिशत हो गया। राष्ट्रीयकरण के पश्चात से कुल परिसम्पत्तियों में बिलों का प्रतिशत निरन्तर घटता रहा है। यह 1970 में 20.75 प्रतिशत था जो कि 1990 में घटकर मात्र 5.46 प्रतिशत रह गया। इस प्रकार परिसम्पत्तियों की संरचना में आए परिवर्तन का विश्लेषण करने से स्पष्ट है कि कुल परिसम्पत्तियों में सबसे लाभदायक ऋण परिसम्पत्ति का भाग निरन्तर घटता हुआ रहा है जबकि विनियोग व नकदी जैसी कम आय उपार्जित करने वाली परिसम्पत्तियों का भाग निरन्तर बढ़ता रहा है। इसके अतिरिक्त इन घटते हुए ऋणों में से भी कुल ऋणों का 40 प्रतिशत भाग प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र, को बहुत कम ब्याज पर पर प्रदान करना होता था जिनका अधिकांश भाग ओवर ड्यू व बीमार ऋणों के रूप में था अतः इनसे नगण्य आय प्राप्त होती है। इस प्रकार से कुल परिसम्पत्तियों का मात्र 22 प्रतिशत भाग ही बैंके लाभदायकता आधार पर विनियोजित करने के लिए स्वतंत्र थे। इससे बैंक की लाभदायकता कार्यकुशलता और उत्पादकता बहुत प्रभावित हुई। उसमें बैंक की लागत में निरन्तर वृद्धि होती गयी। एवं उसके आय में कमी आती गयी जिससे उसकी लाभदायकता प्रभावित हुई।

वाणिज्य बैंक परिसम्पत्तियों की आय व्यय संरचना

वाणिज्य बैंक परिसम्पत्तियों व दायित्वों से बैंक के आगम एवं लागत को ज्ञात करने के लिए आय एवं व्यय दोनो मदों को हम दो समूहों ब्याज और

और गैर ब्याज इन दो मदों में विभाजित कर सकते हैं । इन दोनों समूहों से बैंक बहुत अधिक प्रभावित होता है । राष्ट्रीय करण से पूर्व बैंक पूर्ण रूप से लाभ-दायकता आधार पर कार्य करते थे । 1951 में ब्याज बट्टे इत्यादि से कुल आय 26.2 करोड रूपये थी । जबकि कुल व्यय 20.7 करोड़ रूपये था । जिसमें जमाओं पर ब्याज वेतन इत्यादि सेवाया पर व्यय 9.9 करोड एवं कुल व्यय मे स्थापना व्यय 10.8 करोड रूपये था । इस प्रकार कर इत्यादि के पश्चात बैंक को 5.4 करोड रूपये की विशुद्ध आय प्राप्त होती थी । 1960 में कुल आय 152.12 करोड़ रूपये की थी जिसमें से 34.38 करोड रूपये जमाओं पर ब्याज इत्यादि पर खर्च किया गया । 32.02 करोड रूपये स्थापना व्यय के रूप में खर्च किया गया तथा 66.6 करोड रूपये कुल व्यय हुआ एवं कर इत्यादि के पश्चात 9.2 करोड़ रूपये का शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ । 1969 में राष्ट्रीयकरण से पूर्व बैंक को कुल आय 376.12 करोड़ रूपये थी । तथा कुल व्यय 296.31 करोड रूपये था जिसमें से जमाओं इत्यादि पर ब्याज परकुल व्यय 165.23 करोड़ रूपये था तथा कुल स्थापना व्यय 129.08 करोड रूपये था । कर इत्यादि के पश्चात बैंक की विशुद्ध आय 40.37 करोड़ रूपए थी । इन वर्षों में बैंक पर किसी प्रकार का सामाजार्थिक दायित्व नहीं थे अतः बैंके पूर्ण लाभदायकता आधार पर ऋण प्रदान करती थी जिससे बैंक के लागत कम एवं आगम अधिक था । इन वर्षों में बैंक पर नयी शाखाएँ खोलने का कोई विशेष दायित्व न होने के कारण इसका स्थापना व्यय कम था और बैंक शाखाएँ सामान्यतया शहरी क्षेत्रों में ही खोली जाती थी ।

राष्ट्रीय करण के पश्चात वाणिज्य बैंके सामाजार्थिक उद्देश्यों के लिए कार्य करने लगी । सभी व्यक्तियों तक बैंकिंग सुविधा का लाभ पहुँचाने के लिए

बैंक शाखाए ग्रामीण क्षेत्रों में तेजी से खोली जाने लगी । जिससे कुछ स्थानों पर बहुत अधिक शाखाएँ खुल गयी जिससे बैंक के स्थापना व्यय में बहुत अधिक वृद्धि हुई परन्तु बैंक की आय में उस अनुपात से कम वृद्धि हुई जिससे बैंक की लाभदायकता प्रभावित हुई । 1970 में बैंक को व्याज बट्टे इत्यादि से कुल 492•22 करोड़ रूपए की आय प्राप्त हुई तथा कुल जमाओं पर ब्याज इत्यादि पर व्यय 225•65 करोड़ रूपये रहा कुल व्यय में स्थापना व्यय 190•92 करोड रूपये था । इस प्रकार कुल व्यय 480•30 करोड रूपये रहा एवं कर इत्यादि के पश्चात विशुद्ध लाभ 13•90 करोड़ रूपये का ही रहा । दस वर्षो पश्चात 1980 में ब्याज बट्टे इत्यादि से बैंक की कुल आय 4221•66 करोड रूपये थी जबकि बैंक का कुल व्यय 4170•38 करोड रूपये था जिसमें से जमाओ पर ब्याज इत्यादि पर कुल व्यय 3143•87 करोड रूपये था एवं स्थापना व्यय 1026•51 करोड़ रूपए था परन्तु कर इत्यादि देने के पश्चात बैंक को विशुद्ध लाभ 51•28 करोड रूपये रहा ।

1990 मे बैंक की ब्याज बट्टे इत्यादि पर कुल आय 23936.67 करोड़ रूपए था तथा कुल व्यय 23378.21 करोड रूपये था जिसमें से जमाओं पर ब्याज आदि पर कुल ब्यय 15850.28 करोड रूपये था एवं कुल व्यय मे स्थापना व्यय 7527.71 करोड रूपये था । कर इत्यादि के पश्चात बैंक को 131 •25 करोड रूपये का विशुद्ध लाभ प्राप्त हुआ ।

वर्तमान समय मे लगभग 17•4 प्रतिशत ऋण ओवरड्यू है जिसमें से 42 प्रतिशत ऋण गैर प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के हैं । बुरे एवं सन्देहजनक ऋण बैंक की तरलता लाभ दायकता एवं उत्पादकता को प्रभावित करते है ।

जापानी वाणिज्य बैंक की परिसम्पत्तियों का विवरण

बैंकिंग परिसम्पत्तियों के आदर्श वितरण के लिए हम जापानी वाणिज्य बैंक का उदाहरण ले सकते हैं। वर्तमान समय में विश्व में सबसे अधिक परिसम्पत्तियों को धारित करने वाले व सबसे अधिक लाभदायकता प्रदान करने वाले बैंक जापानी बैंक ही है। अमेरिका में भी जापानी वाणिज्य बैंक का स्थान सर्वोच्च है। जापानी वाणिज्य बैंक की कुल परिसम्पत्तियों मे नकदी का भाग 1990 में 9•9 प्रतिशत था जोकि 8 वर्षों के पश्चात 1998 में 9•3 हो गया। इन बैंकों ने सरकारी तथा अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में 1990 में मात्र 13•6 प्रतिशत विनियोग किया जोकि 1998 में 13•2 प्रतिशत हो गया अर्थात् इसमें मात्र •4 प्रतिशत की कमी आयी। इस प्रकार ये बैंक अपने पास मात्र 22•5 प्रतिशत परिसम्पत्तियाँ तरल रूप में रखते हैं जबकि भारतीय वाणिज्य बैंक लगभग 53 प्रतिशत परिसम्पत्तियाँ तरल रूप मे रखते हैं। जापानी बैंकों का माँग पर मुद्रा परिसम्पत्ति का भाग 1990 में कुल परिसम्पत्तियो का 1•7 प्रतिशत था जोकि मुद्रा बाजार में अत्यधिक विस्तार होने के कारण बढ़कर 3•1 प्रतिशत हो गयी। बिल्स परिसम्पत्तियों का भाग 1990 मे 9•5 था जो 1998 में बढ़कर 5•9 प्रतिशत हो गयी। जापानी बैंकों के पास सबसे अधिक लाभदायक ऋण परिसम्पत्ति का भाग सबसे अधिक है अर्थात् कुल परिसम्पत्तियों का 62•8 प्रतिशत भाग ऋण परिसम्पत्ति के रूप में रखते है जबकि भारतीय वाणिज्य बैंक के पास मात्र 38 प्रतिशत परिसम्पत्तियाँ ऋण के रूप में हैं। इस प्रकार से जापानी वाणिज्य बैंक की लाभदायकता का मुख्य कारण लाभदायक परिसम्पत्तियों का अधिक भाग अपने पास रखना है परन्तु इसे हम इनकी लाभदायकता का एक मात्र कारण नहीं मान सकते हैं। जापानी

बैंकों की कार्य कुशलता, इनकी दक्षता, विश्वसनीयता ही मुख्य कारण है, जो कि इनकी सर्वोच्च स्थिति को निर्धारित करते हैं ।

भारतीय वाणिज्य बैंकों की पूँजीगत स्थिति

वर्तमान समय में भारतीय वाणिज्य बैंक पूँजी की कमी का सामना कर रहे हैं । बैंकिंग रेगूलेशन एण्ड सुपरवाइजरी प्रैक्टिसेज द्वारा नियुक्त कमेटी "बैंक आफ इन्टरनेशनल सेटिलमेन्ट ने वाणिज्य बैंकों को पूँजी पर्याप्तता के लिए 8 प्रतिशत पूँजी कोष निर्धारित करने का निर्देश दिया है जबकि भारतीय वाणिज्य बैंकों का पूँजी परिसम्पत्ति अनुपात भिन्न-भिन्न बैंकों में 1•2 प्रतिशत से 5•05 प्रतिशत तक रहा है । इसे हम अत्यन्त गम्भीर स्थिति मान सकते हैं ।

इसी प्रकार से वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों को निजी क्षेत्र की बैंकों एवं विदेशी बैंकों के साथ तुलना पर स्पष्ट होता है कि सार्वजनिक क्षेत्र के वाणिज्य बैंक की परिसम्पत्तियों के वितरण का भी बैंक की लाभदायकता पर बहुत प्रभाव पड़ता है । बैंक के राष्ट्रीयकरण से पूर्व पूर्णतया लाभ आधारित क्षेत्र पर कार्य करते थे । इस समय निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र की बैंक परिसम्पत्ति संरचना में कोई विशेष अन्तर नहीं था । 1951 में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक के पास 10•99 प्रतिशत नकदी, 1•25 प्रतिशत मांग पर मुद्रा, 2•76 प्रतिशत बिल्स, 38•26 प्रतिशत विनियोग एवं 47•73 प्रतिशत ऋण परिसम्पत्ति का भाग था । निजी क्षेत्र की बैंक परिसम्पत्तियों की 1961 में स्थिति इस प्रकार थी 10•12 प्रतिशत नकदी 1•96 प्रतिशत मांग पर मुद्रा 11•38 प्रतिशत बिल्स 30•88 प्रतिशत विनियोग एवं सबसे लाभदायक परिसम्पत्ति ऋण का भाग 61•04 प्रतिशत था । 1969 में सार्वजनिक क्षेत्र के वाणिज्य बैंक के पास 5•94 प्रतिशत नकदी 1•91 प्रतिशत मांग पर मुद्रा 14•21 प्रतिशत बिल्स 27•55 प्रतिशत विनियोग एवं 53•77 प्रतिशत ऋण परिसम्पत्ति थी 1970 में निजी बैंक के पास 12•31 प्रतिशत नकदी, 1•9 प्रतिशत मांग पर मुद्रा, 8•8 प्रतिशत बिल्स, 29•78 प्रतिशत विनियोग एवं 47•22 प्रतिशत बिल्स का भाग था । जबकि 1980 में विदेशी बैंक के पास 8•9 प्रतिशत नकदी, 1•7 प्रतिशत मांग पर मुद्रा, 9•4 प्रतिशत बिल्स, 13•6 प्रतिशत विनियोग, 58•1 प्रतिशत ऋण एवं 8•3 प्रतिशत अन्य परिसम्पत्तियों थी । 1990 में सार्वजनिक क्षेत्र की बैंक के पास 15•31 प्रतिशत नकदी, 2•41 प्रतिशत मांग पर मुद्रा, 5•46 प्रतिशत बिल्स, 40•14 प्रतिशत विनियोग एवं 38•88 प्रतिशत ऋण परिसम्पत्ति का भाग था । 1990 में निजी क्षेत्र की बैंक परिसम्पत्तियों में नकदी का भाग 14•67 प्रतिशत, मांग पर मुद्रा एवं बिलों का भाग 17•3 प्रतिशत, विनियोग का भाग 27•26 प्रतिशत एवं

ऋण का भाग 40•77 प्रतिशत रहा है । विदेशी बैंक की परिसम्पत्तियों की संरचना 1988 में इस प्रकार रही- उसमें 9•88 प्रतिशत भाग नकदी का 3•1 प्रतिशत भाग माँग पर मुद्रा,5•9 प्रतिशत भाग बिल्स,13•12 प्रतिशत भाग विनियोगों,628 प्रतिशत भाग ऋण परिसम्पत्ति एवं 5•7 प्रतिशत भाग अन्य परिसम्पत्तियों में लगा हुआ था । इस प्रकार से स्पष्ठ है कि सार्वजनिक क्षेत्र की वाणिज्य बैंक सामान्यतया दीर्घकाल के लिए ही ऋणों का विनियोजन करती है जो कि वाणिज्य बैंकिंग सिद्धान्त के विरूद्ध है अत: इन्हे अपनी लाभदायकता को बनाए रखने के लिए वाणिज्य बैंक को दीर्घ कालीन परिसम्पत्तियों में अपना अधिक भाग विनियोजित नही करना चाहिए । अत: स्पष्ट है कि निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र की बैंक की लाभदायकता में अन्तर का मुख्य कारण इनकी परिसम्पत्तियों की संरचना में विद्यमान अन्तर को माना गया है ।

भारतीय वाणिज्य बैंक की गिरती लाभदायकता का मुख्य कारण सरकारी और दूसरी संशोधित प्रतिभूतियों में विनियोग से होने वाली निम्न आय है । सरकार प्रतिभूतियों से 1976 में 6•1 प्रतिशत आय प्राप्त होती थी जो 1980 में गिरकर 5•3 प्रतिशत हो गयी । उत्पादकता लाभदायकता कुशलता समिति के चेयरमैन जे०सी० लूथर के शब्दों में "मिश्रित जमाओं की लम्बी परिपक्वता अवधि वाली समय जमाओं में परिवर्तित होने से उनकी लागत में वृद्धि होती है जबकि आय उत्पादकता क्षेत्र में निम्न आय देने वाली परिसम्पत्तियों का औसत बढ़ता गया है और ऋणों पर ली जाने वाली ब्याज दर में भी गिरावट आयी है ।"[4] और भी

4- See: Report of the committee on Productivity efficiency and productivity of commercial Banks in India, R.B.I. Bombay. 1977 XII 2.

बहुत से तत्वों ने लाभदायकता को प्रभावित किया है जिसमें बढ़ता हुआ स्थापना व्यय ऋण देने सम्बन्धी सामाजिक जिम्मेदारियाँ जिसमें कि प्राथमिकता प्राप्त और उपेक्षित क्षेत्रों को संशोधित व रियायती ब्याज दर पर ऋण प्रदान करना और बड़े पैमाने पर शाखा प्रसारण से बढ़ता हुआ वित्तीय दबाव सम्मिलित है ।

इस प्रकार से समको के विश्लेषण से स्पष्ट है कि राष्ट्रीयकरण से पूर्व बैंक के आय व्यय संरचना में सम्पूर्ण व्यय में जमाओं पर ब्याज और स्थापना व्यय लगभग बराबर थे तथा 1951 से 1969 तक जमाओं पर ब्याज इत्यादि पर व्यय में 16 गुना वृद्धि हुई जबकि स्थापना व्यय के भाग में मात्र 12 गुना वृद्धि हुई परन्तु राष्ट्रीयकरण के पश्चात बैंक के द्वारा प्रदान किए जाने वाले जमाओं पर व्यय में निरन्तर वृद्धि होती गयी जबकि स्थापना व्यय के भाग में कुल लाभ की अपेक्षा कम वृद्धि हुई । इसी प्रकार बैंक जमाओं में लम्बी परिपक्वता अवधि वाली जमाओं में निरन्तर वृद्धि हुई है । इन पर बैंको को उच्च ब्याज प्रदान करनी होती है । इससे बैंक के कुल व्यय में बहुत अधिक वृद्धि हुई । बैंक के कार्य क्षेत्र में निरन्तर वृद्धि हुई जिसमें से विशेष रूप से कृषि एवं लघु उद्योगों के क्षेत्र में वृद्धि हुई है । इन ऋणों के प्रबन्धन की लागत बहुत ऊँची होती है जबकि आगम सामान्य से नीचा होता है । इस कारण भी बैंक लागत में तीव्र वृद्धि हुई । ग्रामीण क्षेत्र की कुछ शाखाएँ ऐसी भी हैं जो कि मात्र जमा केन्द्र बन कर रह गयी है । ये शाखाएँ पर्याप्त व्यवसाय नहीं करती है अतः इनकी आय उत्पादकता भी कम होती है ।

भारत में बैंक की गिरती लाभदायकता के कारण बैंक के कार्यकारी कोषों का अनुपात अन्तर्राष्ट्रीय बैंको से काफी कम रहा है । पिछले दशक से बैंक के लाभ में निरन्तर कमी आती जा रही है । वर्ष 1989-90 में बैंको का कुल लाभ उनके

सम्पूर्ण कार्यकारी कोष का मात्र 1.10 प्रतिशत था। अध्ययन के दौरान पाया गया कि कुछ बैंकों का प्रति रुपया कार्यकारी व्यय उसके प्रतिरूपया कार्यकारी आय से अधिक है और वे बैंक लगातार हानि में कार्य कर रहे हैं। बैंकों की कम आय का सबसे प्रमुख कारण है बैंक द्वारा प्रदान किए जाने वाले ऋणों पर निरन्तर रियायती ब्याज दरपर ऋण एवं दीर्घकालीन जमाओं पर दिये जाने वाली उच्च ब्याज दर। इन कारणों से बैंक लाभप्रदता में निरन्तर गिरावट आती गयी है।

इस सन्दर्भ में नरसिंहम कमेटी ने भारतीय बैंक की परिसम्पत्तियों की दोष पूर्ण संरचना में सुधार के लिए अपनी संस्तुतियां प्रस्तुत की। इस कमेटी ने ऋण परिसम्पत्ति संरचना में सुधार के लिए प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रकोप्रदान किए जाने वाले ऋण को घटाकर कुल ऋणों का 10 प्रतिशत करने और जो पूर्ण रूप से सुरक्षित आधार पर प्रदान करने तथा ब्याज दर संरचना का पुर्ननियमन करना इत्यादि वास्तव में वाणिज्य बैंकिंग व्यवसाय में वृद्धि करेगा। भारतीय वाणिज्य बैंक की परिसम्पत्तियों के अवरूद्ध रहने से कार्यात्मक बेलोच बैंकिंग कार्य कुशलता में कमी करता है। परन्तु इसके साथ ही यह तथ्य भी उभर कर सामने आया है कि इन कठिनाइयों के बावजूद कुछ सार्वजनिक क्षेत्र की बैंके लाभदायकता के साथ कार्य कर रही हैं। निजी क्षेत्र के बैंक मँहगे से महंगे विशेषज्ञता लाभ को उठाते है तथा समय रहते पर्याप्त बाह्य संरचना स्थापित करके अपनी संगठनात्मक एवं कार्यात्मक कमियों को दूर करके अधिक कुशलता पूर्वक कार्य करते हैं। अतः सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक को अधिक स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता प्रदान किया जाय जिससे वे अधिक कुशलता पूर्वक कार्य करें।

1- See- Financial System. "Report by M. Narsimham-ANABHI PUBLICATION-1992 chapter-2 Two decates of Progress" Page 22-28.

पंचम् अध्याय - बैंकिंग परिसम्पत्तियों की क्रियाओं में आए नवीन परिवर्तन

बैंक परिसम्पत्तियों व क्रियाओं में नवीन परिवर्तन

हाल के वर्षों में वित्तीय बाजार में आए महत्वपूर्ण बदलाव से बैंक और दूसरी वित्तीय संस्थाओं दोनों में ही महत्वपूर्ण परिवर्तन आए। नए बाजार का केन्द्र है उत्पादन क्षेत्र और पूँजी बाजार। उत्पादन क्षेत्र अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नयी वित्तीय सेवाओं की मांग करते हैं। बैंक एवं वित्तीय संस्थाए दोनों ही नवोंमेषीकरण के तहत नए-नए वित्तीय उपकरणों द्वारा घरेलू बचतों को अपनी ओर आकर्षित करके उन्हे पूँजी बाजार की उन योजनाओं में विनियोजित करते है जिनसे उत्पादकों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। उत्पादक क्षेत्र द्वारा लगातार साख की कीमत घटाने के लिए बढ़ती हुई खोज उन्हे धीरे धीरे वित्तीय मध्यस्थों से दूर कर रही है जिससे उद्योगपति व विनियोगकर्ता दोनों प्रत्यक्ष रूप से बचत कर्ताओं से सम्पर्क स्थापित करके संसाधन प्राप्त कर रहे है। इन संसाधनों का जोखिम बहुत कम होता है तथा आगम से पूर्ण सुरक्षित होने के कारण वित्तीय मध्यस्थों का महत्व कम हुआ है। इन नयी संस्थाओं के प्रायोजक जो कि पूँजी बाजार के सम्बन्ध में गहन जानकारी रखते है आज के वित्तीय सेवा बाजार में एक ऐसे क्षेत्र का निर्माण कर रहे है जो मध्यस्थता की प्रवृत्ति को दूर कर रहा है और परम्परागत वित्तीय संस्थानों का विकास बहु सेवा बाजार के रूप में कर रहा है।

वर्तमान समय में भारतीय वाणिज्य बैंक का आगम नीचा होता जा रहा है। जबकि लागत निरन्तर बढ़ती जा रही है जो कि वाणिज्य बैंक के सम्पूर्ण साख विस्तार को प्रभावित कर रहे हैं। कर्मचारियों के कार्य करने की दशाओं में सुधार के लिए एवं उनके वेतन में वृद्धि के लिए ट्रेड यूनियनों द्वारा बैंक पर निरन्तर दबाव गैर मध्यस्थता एवं मशीनीकरण की प्रक्रिया में तेजी भारतीय बैंक की गिरती

लाभदायकता के लिए जिम्मेदारहै । प्रशासनिक ब्याज दर संरचना, प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को अत्यन्त रियायती ब्याज दर पर ऋण, तेजी से बढ़ते जा रहे छोटे परिमाप के ऋणों की उँची सेवा लागत, वैधानिक तरलता अनुपात तथा रिजर्व नकदी अनुपात का निरन्तर बढ़ता हुआ भाग, बैंक के ओवर ड्यू में निरन्तर वृद्धि, बीमार खातों तथा बिना तैयारी के ऋणों का निरन्तर बढ़ता हुआ भाग जिनकी क्षतिपूर्ति बाद में बैंक लाभ में से ही कीजाती है, वैभिन्त्रित ब्याज दर योजना के अन्तर्गत 4 प्रतिशत ब्याज दर पर कुल ऋणों का लगभग 1 प्रतिशत ऋण देना इत्यादि कुछ तत्व वाणिज्य बैंक की गिरती हुई लाभदायकता के लिए उत्तरदायी है । जमाओं पर चुकायी जाने वाली ब्याज एवं ऋणों पर प्राप्त होने वाली ब्याज दर में अन्तर निरन्तर कम होता जा रहा है । वित्तीय गैर मध्यस्थता की प्रक्रिया अर्थव्यवस्था में पूरी तरह से स्थापित हो गयी है । इन तत्वों के परिणामस्वरूप बैंक की लाभदायकता में निरन्तर गिरावट आती गयी है और उनकी गिरती लाभ दायकता में उसे परम्परागत कार्यों की अपेक्षा लाभदायक वित्तीय उपकरणों की तरफ प्रोत्साहित किया है ।

जबकि सभी वाणिज्य बैंक की लाभदायकता गिर रही है प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को विशेष रूप से ऋण प्रदान किया जा रहा है । उत्पादन और व्यापार क्षेत्र के ऋण जो बैंकिंग लाभ के मुख्य क्षेत्र है का भाग निरन्तर गिरता जा रहा है, से दूसरे संसाधनों में वित्तीयन की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई । उत्पादन क्षेत्र पूँजी बाजार में अपनी मुद्रा को बढ़ाने को प्राथमिकता देता है । इसलिए वाणिज्य पत्रों बाण्ड, जमा प्रमाण पत्रों इत्यादि जिनकी सम्पूर्ण लागत बैंक साख से अपेक्षाकृत रूप में कम पड़ती है का विकास हुआ । अत: गैर मध्यस्थता की प्रवृत्ति इनकी

लाभदायकता को समाप्त कर रही है ।

कोषों पर आधारित वित्तीयन कार्यों की गिरती हुई लाभदायकता ने बैंक कोषों के वैभिन्निकरण के लिए दबाव डाला है । इन कोषों का लेन देन शुल्क आधारित होता है । इसलिए ये नयी वित्तीय सेवा बाजार का लाभ उठाते है । भारत में इनका विकास बहुत तीव्र गति से हो रहा है । रिजर्व बैंक ने भी वैभिन्निकरण कार्यों के अच्छी प्रकार से संचालन के लिए सहायता दी ।

सैद्धान्तिक रूप से निजी क्षेत्र के बैंक और विदेशी बैंक लाभ ढूढने वाली संस्था है जबकि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक के पास देश के सन्तुलित आर्थिक विकास का उत्तरदायित्व भी है जिसमेंसमाज के अपेक्षाकृत पिछड़े क्षेत्रों प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र तथा समाज के गरीब वर्ग का उत्थान सम्मिलित है । इस प्रकार के विकास की भूमिका की लागत बहुत अधिक है जिनकी आपूर्ति दूसरे लाभदायक विनियोग के लाभ में से की जाती है । वास्तव में यदि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक विकास की भूमिका को अच्छी प्रकार से निभाते है तो भी उनके लिए लाभदायक विनियोग करना बहुत आवश्यक है क्योंकि तभी वे अपने विकास कार्यक्रमों को सुचारू रूप से संचालित कर सकेंगे । इस कारण से बैंकिंग आर्थिक परिदृश्य में बहुत बड़े परिवर्तन हुए है उनमें से कुछ मुख्य है -

बाजार में नए वित्तीय उपकरणों का प्रयोग

वाणिज्य पत्र, जमा प्रमाण पत्र, म्युच्युअल फण्ड इत्यादि कुछ प्रमुख वित्तीय उपकरण है । बैंक केवल मध्यम कालीन एवं अल्पकालीन ऋण देने वाले संस्थान ही नही रह गये है बल्कि कुछ उपकरण बड़े उत्पादकों को भी ऋण देने के लिए अधिक उपयुक्त है । जमा प्रमाण पत्र एक नया वित्तीय उपकरण है जिस पर बहुत ऊँची ब्याज

दर प्राप्त हो रही है जबकि पहले अल्पकालीन जमाओं पर बहुत कम आय प्राप्त होती थी । उत्पादक घरेलू क्षेत्र से सीधे सम्पर्क स्थापित करके प्रत्यक्ष रूप से शेयरों व बाण्डों के माध्यम से ऋण प्राप्त करने लगे हैं । इस प्रकार से वाणिज्य बैंक की भूमिका सिमट रही है और उनकी जमाओं की वृद्धि दर गिर रही है । वर्ष 1989-90 में कुल पूँजीगत विनियोग 2793 करोड़ रुपया था जिसमें लगभग 800 करोड़ रूपए म्युच्युअल फण्ड द्वारा प्राप्त किए गए । इस प्रकार बैंक के व्यवसाय चक्र तथा लाभ दायकता को इन नवीन वित्तीय उपकरणों ने बहुत अधिक प्रभावित किया है ।

बाजार में नए वित्तीय संस्थानों का प्रवेश

बाजार में अनेक नए वित्तीय संस्थानों जैसे यूनिट ट्रस्ट आफ इण्डिया, बीमा कम्पनियों वित्तीय एवं पट्टेदारी कम्पनियों इत्यादि के उदय से वाणिज्य बैंक का वित्तीय एकाधिकार समाप्त हो रहा है । आज जनता के पास अपनी बचतों को विनियोजित करने और ऋण प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार की वित्तीय संस्थाएं है ।

- कुल विनियोगों पर निश्चित कर लाभ की सुविधा भी उपलब्ध है जैसे यूनिट्स, म्युच्युअल फण्ड इत्यादि । इन उपकरणों के प्रचलन से बैंक को बहुत हानि हुई है । इसी प्रकार से पट्टेदारी परिसम्पत्तियों की घिसावट पर भी कर लाभ सुविधा उपलब्ध है जिसने बैंक के अग्रिम पोर्टफोलियों को बहुत अधिक प्रभावित किया है ।

- बहुत से गैर बैकिंग विनियोगों पर ऊँचे आगम के कारण जमाकर्ता बैंक से दूर होते जा रहे हैं ।

- देश के आर्थिक विकास के साथ नए आर्थिक उपकरण जो व्यक्तियों को

आवश्यकता विशेष के अनुसार निर्मित हो रहे हैं । बैकिंग उपकरणों की अपेक्षा लोगों में अधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं अत: इन नवीन आर्थिक उपकरणों के प्रचलन से बैंक से लोगों की दूरी निरन्तर बढ़ती जा रही है ।

लाभ उत्पादकता

किसी भी व्यवसायिक संस्था का लक्ष्य लाभ प्राप्त करना होता है । अत: वाणिज्य बैंके भी केवल अपने गिरते हुए लाभ की आपूर्ति ही नही करना चाहती बल्कि अपने लाभ को अधिकतम करना चाहती है । नवीन आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तनों और समाज को उँचा उठाने के उत्तरदायित्व से जुड़ जाने के कारण यह परिकल्पना और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गयी है । बैंक की उत्पादकता योजना की प्रक्रिया में इसलिए लाभ योजना को सबसे पहले रखा गया है ।

वैभिन्नीकरण

बैंक को अपनी लाभदायकता को बनाए रखने के लिए वैभिन्नीकरण करना आवश्यक होता जा रहा है क्योंकि बैंक के पास इसके अतिरिक्त कोई और विकल्प नही है । आज का विकसित आर्थिक बाजार लाभदायकता को बनाए रखने के अवसर प्रदान करता है जैसे मर्चेन्ट बैंकिंग जिसमें निर्गत प्रबन्धन भी सम्मिलित है । ऋण का प्रबन्धन, परियोजनाओं के लिए सम्मति देना, करो के सम्बन्ध में सम्मति देना, पोर्टफोलियो प्रबन्धन, पट्टेदारी, साहस पूँजी, फैक्टोरिंग (आढ़तिया सेवाएँ), क्रेडिट कार्ड इत्यादि । इसके अतिरिक्त कुछ सहायक सेवाएँ है जैसे लाकर इत्यादि किराए पर देना जैसी सेवाओं के बारे में जागरूकता बढ़ाकर इन सेवा क्षेत्रों का बहुत अधिक विस्तार किया जा सकता है ।

इसके बावजूद भी बैंक इन वैभिन्निकरण कार्यों को अत्यन्त सावधानी पूर्वक कर रहे है क्योंकि बैंक अलाभदायक कार्यों को अपने व्यवसाय से नही जोड़ते है । बैंक को इस बात पर विशेष रूप से विचार करना होगा कि एक विशेष वैभिन्नीत कार्यकलाप उस बैंक विशेष की संरचना क्षमता और दूसरे संसाधनों के अनुकूल होगी या नही तभी उसे इन साहसपूर्ण अनछुए क्षेत्र में विनियोग की अनुमति देनी चाहिए अन्यथा नही ।

वैभिन्नीकरण कार्यों को करते समय कुछ मुख्य निर्गत निम्नलिखित है -

1- मानवीय संसाधनों पर विनियोग

यह एक प्राकृतिक मानवीय मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि कोई भी संगठन प्रारम्भ में कोई नया कार्य करने से हिचकिचाता है तथा अपने कर्मचारियों को उन नवीन कार्यों को सिखाने में कई बार निष्क्रियता का सामना करता है । इसलिए संगठन सर्व प्रथम विशेषज्ञ कर्मचारियों की भर्ती करता है अथवा अपने कर्मचारियों में कुशलता विकसित करने के लिए उन्हे प्रशिक्षण प्रदान करवाता है । इसे हम अतिरिक्त लागत कहते है ।

2- संगठन की स्थापना पर व्यय

नए कार्यों को करने के लिए संगठन की कुछ अतिरिक्त आवश्यकताएँ होती है जो कि नवीन कार्यकलापों के संगठन के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है जैसे कि नए कार्यालय खोलना अथवा नए विभाग जोड़ना । इसके लिए अतिरिक्त व्यय की आवश्यकता होती है ।

3- मशीनरी और उपकरणों पर व्यय

नए कार्यकलापों को करते समय कुछ अतिरिक्त पूँजी व्यय की आवश्यकता है । पुनश्च वर्तमान इलेक्ट्रानिक बैकिंग के युग में मँहगे कम्प्यूटर / इलेक्ट्रानिक उपकरण इनकी गति को बनाए रखने के लिए आवश्यक है । इससे लोगों की तुरन्त सेवा आवश्यकता की पूर्ति होती है वे अन्य बैंकों के साथ प्रतियोगिता कर सकते है ।

वैभिन्नीकरण पर दबाव

वर्तमान आर्थिक परिदृश्य में बैंक के पास अपनी लाभदायकता को अधिकतम करने के लिए वैभिन्नीकरण के अतिरिक्त कोई विकल्प नही है परन्तु इन नए कार्यों को करते समय बैंक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह इन नए विनियोगों पर प्राप्त होने वाले आगम को पहले से ज्ञात कर ले । इन जोखिम पूर्ण विनि-योगों को करते समय वे इनकी लागत के प्रति पूर्णत: सतर्क रहते है जिससे कि बैंक को हानि न हो । कुछ कार्यों में प्रारम्भ में हानि की सम्भावना होती हैं परन्तु बैंक के कुशलता पूर्वक संचालन के लिए यह आवश्यक है कि बैंक को इससे दीर्घकाल में आवश्यक रूप से लाभ प्राप्त हो । अत: बैंक को चयनित क्षेत्र में तुल-नात्मक रूप से अधिक लाभदायक कार्यों में विनियोग करना चाहिए । छोटे बैंक इस प्रकार के वैभिन्नीकरण कार्यों को अधिक कुशालता और लाभदायकता से करते है वैभिन्नीकरण वाले अधिकांश वित्तीय कार्यकलाप साख आधारित होते है और उन्हे सुचारू रूप से संचालित करने के लिए बड़े कोष की आवश्यकता हो सकती है । एक बैंक इन नए कार्य कलापों को अपने हाथ में लेने से पूर्व अपनी व्यावसायिक कार्य

कुशलता अपनी क्षमता और संसाधनो का अनुमान लगाता है । पुनश्च इन विशेष कार्यों के सम्बध मे पूर्व कानूनी एवं वैधानिक व्यवस्था के अनुकूल पूर्ण विचार विमर्श आवश्यक होता है । उदाहरणार्थ विकसित देशों में अदृतिया सेवाएँ (फैक्टरिंग) प्रारम्भ करने से पूर्व कुछ कानूनी प्रक्रियाएँ पूरी करनी आवश्यक होती है । दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य जिसका परीक्षण करना आवश्यक है वह यह है कि प्रत्येक बैंक यदि एक समान कार्य कलाप करते है तो इन बहुत सारी बैंको के बीच अनुत्पादक प्रतियोगिता उत्पन्न होगी और इसके लिए समय की मॉग है कि हमे चयनात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए । इस सन्दर्भ मे रिजर्व बैंक सलाहकारी और नियमन कारी भूमिका निभा रहा है ।

भारत मे नवीन वित्तीय सेवा बाजार का प्रारम्भ

भारत का नवीन वित्तीय सेवा बाजार बैंक और गैर बैंकिग वित्तीय संस्थाओं दोनों को अपनी तरफ समान रूप से आकर्षित करता बैंक और बैंकिग वित्तीय संस्थाओं मे दिनो दिन प्रतियोगिता और तीव्र होती जा रही है । अत: इस क्षेत्र मे वाणिज्य बैंक को अत्यन्त सतर्कता पूर्वक कार्य करना है । वित्तीय सेवा बाजार में इस समय अनेक नवीन वैभिन्नीकरण वित्तीय उपकरणों मर्चेन्ट बैंकिग विनियोग बैंकिग क्षेत्र पट्टेदारी वित्तीयन, म्युच्युअल फण्ड आवास वित्त पोर्ट फोलियो प्रबन्धन ग्राहक साख सेवा और क्रेडिट कार्ड इत्यादि का प्रयोग दिनों दिन निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है ।

मर्चेन्ट बैंकिग

भारतीय पूँजी बाजार के लिए वरदान स्वरूप मर्चेन्ट बैंकिग कार्यों का

प्रारम्भ वाणिज्य बैंक द्वारा 80 के दशक से प्रारम्भ किया गया। यह नवीन कार्य उस समय सुरू किया गया जब भारतीय अर्थ व्यवस्था अस्त व्यस्त हो रही थी तथा वाणिज्य बैंक की लाभदायकता में निरन्तर गिरावट आ रही थी। मर्चेन्ट बैंकर पूँजी धारकों तथा पूँजी का प्रयोग करने वाले के बीच वित्तीय मध्यस्थ के रूप में कार्य करते है। मर्चेन्ट बैंकिग कार्यकलापों में अनेक कार्य आते है जैसे सार्वजनिक निर्गमों का प्रबन्धन ऋणों का प्रबन्धन वित्तीय एवं प्रबन्धकीय परामर्शी सेवाएँ परियोजनाओं के लिए सम्मति देना नवीन योजनाओं का मूल्यांकन और तकनीकी परामर्श देना व नवीन तकनीक के लिए विनियन समेकीकरण और विलयन, विनियोग प्रबन्धन, पोर्ट फोलियो प्रबन्धन इत्यादि करना। इस प्रकार से इसका मुख्य गुण केवल वित्तीय सहायता प्रदान करना ही नही होता बल्कि सभी प्रकार की नवोन्मेषीकृत वित्तीय सेवाओं तकनीकी विशेषज्ञता इत्यादि के लिए निर्गमन भी करना होता है जो कि नवीन औद्योगिक इकाईयों के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भारत में मर्चेन्ट बैंकिग का विकास देश के पूँजी बाजार से गहन रूप से जुड़ा हुआ है। आने वाले वर्षो में मर्चेन्ट बैंकिग द्वारा भारतीय अर्थ व्यवस्था का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करने के लिए अग्रसारित करने के लिए देश के तकनीकी आधार को सुधारने में घरेलू ससाधनों का प्रयोग पूरक के रूप में किया जाएगा।

अन्तर्राष्ट्रीय बैंकिग कार्यो के लिए मर्चेन्ट बैंकिग के कार्यो को अत्यन्त सीमित रूप में उधार देने वाली वित्तीय संस्थाओं जैसे भारतीय औद्योगिक विकास बैंक भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम तथा आयात निर्यात बैंक के द्वारा किया जाता रहा है। वाणिज्य बैंक में से स्टेट बैंक आफ इण्डिया, बैंक

आफ इण्डिया तथा बैंक आफ बड़ोदा भी अन्तर्राष्ट्रीय मर्चेन्ट बैंकिंग कार्यों में लगे हुए है तथा इनके पास विदेशी पूँजी का एक बड़ा भाग है । भारतीय उद्यमियों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में ससाधन उपलब्ध करवाना इनका मुख्य कार्य है ये निर्यात साख ऋण प्रबन्धन यूरो बाण्ड और अनेक प्रकार के विनियमय नोटो द्वारा ससाधन उपलब्ध करवाते है । बैंकर का दूसरा मुख्य सक्रिय क्षेत्र है विदेशों में भारतीय इक्विटियों में विनियोग करके भारत के कोष में वृद्धि का कार्य अपने हाथ में लेना ।

इस समय यह अनुमानित किया गया है कि भारत में लगभग 75 मर्चेन्ट बैंकर है और उनमें से लगभग 15 सक्रिय मुद्रा बाजार में कार्य करने वाले मर्चेन्ट बैंकर है । हाल में भारतीय प्रत्याभूति विनिमय बोर्ड द्वारा नियुक्त सैम्पल सर्वे के अनुसार सात मुख्य मर्चेन्ट बैंकर स्टेट बैंक आफ इण्डिया कैपिटल मार्केट लिमिटेड भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम कैन बैंक फायनेन्सियल सर्विसेज लिमिटेड, जे०एम० फारानेन्सियल एण्ड कन्सल्टेन्सी सर्विसेज लिमिटेड डी०सी०पी० फायनेन्सियल कन्सल्टेन्ट्स हाककांग बैंक, और बैंक आफ इण्डिया के खातों से प्राथमिक बाजार के संसाधनों में 70 प्रतिशत वृद्धि हुई है । 1990-91 के लिए अनुमानित किया गया कि मर्चेन्ट बैंकिंग का कुल कार्य कलाप इस वर्ष लगभग 5000 करोड़ रूपये से अधिक का रहा । आज मर्चेन्ट बैंक पूजी बाजार में वित्तीय मध्यस्थ के रूप में सफलता पूर्वक कार्य कर रहे है । स्वस्थ पूँजी बाजार के विकास एवं विनियोग के संरक्षण के लिए उँची व्यवसायिक क्षमता तथा उनके स्तर में निरन्तर सुधार सेवाओं के अधिक अच्छे स्तर के लिए आवश्यक है । अत: भारत सरकार के वित्त मंत्रालय में मचेन्ट बैंकर्स प्राधिकरण की भूमिका उनके कार्य और उत्तरदायित्व का विश्लेषण करने के लिए कुछ निर्देश जारी किए ।

आज मर्चेन्ट बैंकिंग द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं में बहुत अधिक वृद्धि हुई है जिसमें निर्गम प्रबन्धन ऋण प्रबन्धन सरकार से समन्वय कम्पनियों की स्थिर जमाओं को स्वीकार करना पोर्ट फोलियो प्रबन्धन और इसी प्रकार की अनेक सेवाएं प्रदान करना । मर्चेन्ट बैंकिंग संस्थाओं के कार्यों का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है :-

अ- दीर्घकालीन ऋणों इक्विटी पूँजी में वृद्धि करके योजनाओं का मूल्यांकन उनका वित्तीयन करना व उन्हें प्रोन्नत करना ।

ब- उत्पादन क्षेत्र को वित्तीयन विनियोग पूँजी और संरचना के प्रबन्धन के बारे में सलाह देना ।

स- विनियोगियों को सलाहकारी सेवाएँ प्रदान करके उनकी उन्नति में सहयोग देना तथा व्यक्तिगत सामाजिक और ट्रस्ट इत्यादि के पोर्ट फोलियो का प्रबन्धन करना ।

द- सरकारी अर्द्धसरकारी, सार्वजनिक और व्यक्तिगत एजेन्सियों को वित्तीय सहायता प्रदान करके उनसे लगातार सम्बन्ध बनाए रखना ।

भारत में इस प्रकार के मर्चेन्ट बैंकर की भूमिका को जनता में सामान्य ढंग से विनियोग करने के दृष्टिकोण से इसे सार्वजनिक निर्गमन प्रबन्धक के रूप में परिभाषित किया जा सकता है । हाल ही में ताजे निर्गमों में वृद्धि के अतिरिक्त भारतीय मर्चेन्ट बैंक को पूँजी विनियोग करने वाले एवं पूँजी की खोज करने वाले दोनों के बीच वित्तीय मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के प्रयासों में सफलता प्राप्त हुई । यह साख प्रबन्धन एवं साख निर्देशन की सेवाएँ भी प्रदान करने लगे हैं । यह उन व्यक्तियों के लिए विशेष निर्देशनकारी हैं जो पूँजी बाजार के निर्गमय सम्बधी

जटिलताओं से अपरिचित है । जिन व्यक्तियों को इनका कुछ ज्ञान एवं अनुभव है उन्हें यह पूरक सेवाएँ प्रदान करते है । इस प्रकार से मर्चेन्ट बैंकिंग बीमार औद्योगिक साहस को सफल परियोजनाओं में परिवर्तित करने की संस्था बन गयी है । वस्तुत: मर्चेन्ट बैंकिंग की भूमिका के दो चरण है प्रथम औद्योगिक प्रतिभूतियों के लिए विनियोग करना तथा उनके कोष के नवीन संसाधनों में वृद्धि करना दूसरे कोषों के विकास के लिए उनमें वृद्धि करना । इन दोनों को प्रोत्साहित करने एवं वृद्धि करने के लिए तथापि इन्हें एक साथ रखा जाता है । इन दोनों में अन्तर केवल समय की सीमा रेखा का है ।

मर्चेन्ट बैंकिंग संस्था अब उद्यमियों उत्पाद क्षेत्र और विनियोगियों के संरक्षण और संवर्द्धन के लिए जाना जाता है । इनके कार्यों का मूल्यांकन इनके द्वारा किए जाने वाले विनियोग और वित्तीय संस्थाओं के साथ कार्य द्वारा किया जाता है । घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में मर्चेन्ट बैंकिंग स्वयं ही संरक्षक बैंक के रूप में सहायक संस्थाओं का सहयोग करती है ।

मर्चेन्ट बैंकिंग के सभी कार्यकलाप जिसमें विनियोग बैंकिंग भी सम्मिलित है पर्याप्त नहीं है । भारतीय मर्चेन्ट बैंक एक पूर्ण रूप से विकसित मर्चेन्ट बैंक की अपेक्षा केवल एक निर्गमन गृह की ही भाँति कार्य कर रहे है । वास्तव में एक उद्योग के अन्तर्गत कार्य करने वाली फर्म की स्थापना पूर्णत: निर्गमन प्रबन्धन पर ही निर्भर करता है । जब तक कम्पनियों के शेयर और लाभांशों में निजी क्षेत्र का हिस्सा है परियोजनाओं के सहयोग के लिए एजेन्सी की बहुत अधिक कमी है । अत: इस कमी को मर्चेन्ट बैंकिंग संस्थाओं को पूरा करने का प्रयास करना चाहिए । मर्चेन्ट बैंक ने वित्तीय कमी का सामना कर रही परियोजनाओं को प्रोत्साहित करने का कार्य

चुनौती के रूप में स्वीकार किया और सार्वजनिक विनियोग के क्षेत्र में लोगों के विश्वास को बढ़ाकर इसे पुर्नजीवन प्रदान किया ।

मर्चेन्ट बैंक की भूमिका पूँजी विनिर्माण को प्रोत्साहित कर अर्थव्यवस्था का अत्यन्त तीव्र गति से विकास करना है । वास्तव में केवल पूँजी की कमी ही विनियोग कार्यों में अवरोध नहीं है बल्कि उपलब्ध कोषों को भी लाभदायक ढंग से विनियोग करने के ज्ञान का लोगों में अभाव है इसलिए कुछ ऐसी कम्पनियाँ जिनके पास आदर्श नकदी कोष अतिरेक के रूप में था वे भी अनुत्पादक थी । वही दूसरी तरफ कुछ ऐसी वित्तीय कम्पनियाँ भी थी जो वित्तीय कमी के कारण अपने चालू कार्यों को भी कठिनता से कर रही थी । वास्तव में विनियोग प्रबन्धन अभी हमारे देश में बिलकुल प्रारम्भिक स्थिति में है यहाँ छोटी और मध्यम आय समूह वाले हजारों व्यक्ति है जो अपने कोषों का प्रबन्धन करने मे असमर्थ है अत: मर्चेन्ट बैंक इस कार्य को कुशलता पूर्वक कर सकता है ।

मर्चेन्ट बैंकिंग बाजार के विकास में माँग पक्ष पर ध्यान संकेन्द्रित करने की आवश्यकता है । उनके संसाधनों का गतिशीलन लाभदायक विनियोगों में हो इसके इसलिए विनियोग के सन्तुलित विकास का उत्तरदायित्व उठाना चाहिए । भारत में छोटे पैमाने के उद्योगों तथा बड़े पैमाने की सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनियों के बीच बहुत बड़ा अन्तर विद्यमान है । छोटे पैमाने के उद्योग केन्द्र और सरकारी एजेन्सियों से पर्याप्त मात्रा में ऋण प्राप्त करते हैं । जबकि बड़े पैमानेके उद्योग अपने में वृद्धि के लिए वित्तीय संस्थाओं और सार्वजनिक निर्गमन कम्पनियों से ऋण प्राप्त करते हैं । अत: मर्चेन्ट बैंकिंग संस्थाए इस उत्तरदायित्व को उठाएँ । विनिर्माणकारी संस्थाए अनेक कारणों से अपनी क्षमता से कम कार्य करती है । ये इकाईयाँ परम्परागत सरंचनात्मक प्रबन्धन और तकनीक का प्रयोग करती है अत: उतार चढ़ाव वाले

बाजार की चालू वित्त की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमेशा चालू वित्त की माँग करती है। इस प्रकार की वित्तीय सहायता अल्पकालीन एवं मध्यकालीन बैंकिंग/गैर बैंकिंग संस्थाए अच्छी प्रकार से कर सकती है।

मर्चेन्ट-बैंकिंग संस्थाओं को अपने कार्यों को अच्छी प्रकार से संचालित करने के लिए अनुभवी कुशल एवं विशेषज्ञ व्यक्तियों की आवश्यकता है। अधिक सुदृढ़ वित्तीय परियोजनाओं को संचालित करने के लिए इन विशेषज्ञ व्यक्तियों का सहयोग अत्यन्त आवश्यक है।

मर्चेन्ट बैंक को पूर्ण क्षमता से कुशलता पूर्वक संचालित करने के लिए वित्तीय संस्थाओं और विनियोग संस्थाओं दोनों में कुशलता पूर्वक समन्वय होना आवश्यक है।[1] इसके लिए बहुआयामी कार्यकारी दल की आवश्यकता नहीं बल्कि कार्य से सम्बन्धित निर्णय लेने की पर्याप्त स्वतन्त्रता प्रेरणा और संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सबसे अधिक प्रभावशाली और कुशलता पूर्वक संयोजन अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान समय में मर्चेन्ट बैंके किसी वाणिज्य बैंक के संरक्षण में कार्य नहीं कर रही है बल्कि ये पूर्ण स्वायत्त संस्था के रूप में कार्य कर रही है। इस समय इनके लिए आवश्यक हो गया है कि हमारे देश की मर्चेन्ट बैंक दूसरे देशों के साथ वित्तीय उपकरणों को खरीदने और बेचने के कार्य को कुशलता पूर्वक संचालित करें।

See. Financial Express New Delhi Wed. July 3, 1991.

वाणिज्य पत्र

मुद्रा बाजार से सम्बन्धित कार्यकारी दल ने वाणिज्य पत्र शुरू करने की सिफारिश की थी । उच्च स्तरीय कम्पनी उधारकर्ता और अधिक स्रोतों से उधार प्राप्त कर सकें तथा निवेशकों को एक अतिरिक्त लिखित प्राप्त हो सके, इसके लिए वाणिज्य पत्र लागू करने का निर्णय लिया गया है । इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित बाते महत्वपूर्ण हैं --

(क) वाणिज्य पत्र एक ऐसे गैर जमानती बचत पत्र के रूप में होगा, जो अन्य किसी विशेष लेन देन से सम्बद्ध नही होगा । बैंकों अथवा अन्य वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से इसे निजी रूप में निवेशकों (अनिवासियों को छोड़कर) को प्रस्तुत किया जाएगा ।

(ख) केवल ऐसी कम्पनियाँ वाणिज्य पत्र बाजार में प्रवेश कर सकेंगी जिनकी शुद्ध हैसियत कम से कम 10 करोड रू0 की हो, कम से कम 25 करोड रूपये का जिनका अधिकतम अनुमत बैंक वित्त हो तथा जो शेयर बाजार की सूची में हो । शेयर बाजार की सूची में होने सम्बन्धी शर्त सरकारी क्षेत्र की कम्पनियाँ पर लागू न होगी ।

(ग) वाणिज्य पत्र जारी करने वाली कम्पनी को भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अनुमोदित किसी एजेन्सी से हर छः माह पर उत्कृष्ट स्तर का निर्धारण (रेटिंग) प्राप्त करना होगा । स्तर निर्धारण करने वाली कम्पनी संगत मानदण्ड निर्धारित करेगी जैसे कि नकदी एवं लाभदायकता की स्थितियों सहित उनके वित्तीय स्वास्थ्य के अनुरूप होना चाहिए । जारी करने वाली कम्पनी के वित्तीय निष्पादन से सम्बन्धित संगत विवरणों को प्रकट करने के बारे में विशिष्ट बातें निर्धारित की जाएगी ।

§घ§ वाणिज्य पत्र की पूर्णता अवधि 91 दिन से लेकर 6 माह तक हो सकती है ।

§ड•§ किसी निर्गम की न्यूनतम राशि एक करोड तक होने की शर्त के साथ वाणिज्य पत्र 25 लाख रूपए के गुणकों में जारी किए जाऐंगे ।

§च§ वाणिज्य पत्र अन्तिम मूल्य से कम मूल्य पर जारी किया जाएगा तथा कटौती की दर स्वतंत्र रूप में निर्धारित की जाएगी । छ: वाणिज्य पत्रों के निर्गम को हामीदारी देने अथवा सह स्वीकृति देने की अनुमति बैंकों को नहीं दी जाएगी । यह बैंकों द्वारा प्रदत्त अपनी सुविधा निर्गम की राशि से अधिक नहीं होना चाहिए ।

§ज§ जारी करने वाली कम्पनियों से यह अपेक्षित होगा कि वह डीलरों से शुल्क पर निर्धारण §रेटिंग§ करने वाली एजेन्सी को अपनी सुविधा प्रभार तथा अन्य सुविधाएँ वहन करेगी ।

§झ§ किसी कम्पनी के अधिकतम अनुमान बैंक वित्त के 20% की सीमा तक अधिकतम राशि के वाणिज्य पत्र प्राप्त करने की अनुमति देगी ।

§ञ§ समुचित समय पर बारी आ जाए इस बात को सुनिश्चित करने के लिए आर बी0आई0 निर्गमों का समय प्राधिकृत करेगा । निर्गत के लिए एक बार कट देने सम्बन्धित बैंक से यह अपेक्षा की जाएगी कि वह अधिकतम अनुदेय बैंक वित्त का उपयुक्त संयोजन करें ।

§ट§ वाणिज्य पत्र का निर्गम स्टाम्प शुल्क के अधीन होगा ।

(ठ)+ वाणिज्य पत्र पृष्ठांकन तथा सुपुर्दगी तथा स्वतंत्रता पूर्वक अन्तरणीय होगा ।

कम्पनियों द्वारा वाणिज्य पत्र जारी किए जाने से पूर्व सरकार से कतिपय प्राप्त की जानी चाहिए । भारतीय बैंक संघ के साथ परामर्श करके आर0बी0आई0 द्वारा विस्तृत मार्ग दर्शी सिद्धान्त जारी किए जाने के पश्चात वाणिज्य पत्र जारी किए जाने से सम्बन्धित योजना लागू होगी ।

See:- R.B.I.Balletin Aug, 1975, R.B.I.Publication

पोर्टफोलियो प्रबन्धन

वाणिज्य बैंक अपने अतिरिक्त कोषों के प्रबन्धन के कार्य को पोर्टफोलियो प्रबन्धन के अन्तर्गत रखते है । वे अपने उत्पादक उपभोक्ताओं के साथ इस प्रकार का प्रत्यक्ष अथवा मर्चेन्ट बैंकिंग के सहयोग से अप्रत्यक्ष रूप से विनियोगकर्ताओं के साथ इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करते है जिससे उनके दोहरे उद्देश्य तरलता एवं लाभदायकता दोनों की पूर्ति हो । परिसम्पत्तियों से प्राप्त होने वाले लाभ मुख्यत: विनियोगों से प्राप्तायाँ, तरलता और परिसम्पति जोखिम के क्रम में ठीक प्रकार से संयोजन पर निर्भर करता है । यद्यपि कुशल पोर्ट फोलियो प्रबन्धन बैंक जमाओं की वृद्धि को प्रभावित करता है । रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने इस व्यवसाय पर अनेक प्रकार के नियन्त्रण लगाये है ।

पट्टेदारी

पट्टेदारी औद्योगिक कम्पनियों द्वारा स्थिर परिसम्पत्तियों के कोष का वैकल्पिक तरीका है । भारत में लगभग 350 पट्टेदारी कम्पनियां कार्यरत है, इनमें से 22 से 26 तक अखिल भारतीय स्तर पर कार्य कर रही है। 50 से अधिक कम्पनियां विभिन्न स्टाक एक्सचेन्जों मे दर्ज है । इस उद्योग का व्यापार 950 करोड़ रूपये से अधिक है और 1987 के अन्त में 700 करोड़ रूपये की पट्टेदारी की गयी। 70 के दशक से पूर्व बहुत सी पट्टेदारी कम्पनियों ने इस बाजार में प्रवेश किया और इन्होंने बैंको के साथ अत्यन्त तीव्र प्रतियोगिता का सामना किया । पट्टेदारी के प्रचलन में आने से किराए पर देने की प्रवृत्ति में गिरावट आयी । हाल ही में कुछ मर्चेन्ट बैंकिंग संस्थाओं ने पट्टेदारी के कार्य को अच्छी प्रकार से कुशलता पूर्वक संचालित करना प्रारम्भ कर दिया है ।

भारत में अनेक दशकों से किराया खरीद वित्तपोषण प्रचलित है किन्तु पट्टेदारी केवल अचल सम्पदातक ही सीमित थी । 1983 से धीरे धीरे औद्योगिक और पूँजीगत उपस्करों के क्षेत्र में भी इसे स्वीकार किया जा रहा है । बहुत सी किराया खरीद कम्पनियों और अन्य वित्तीय कम्पनियों ने उपस्कर पट्टा व्यवसाय प्रारम्भ करने की दृष्टि से नयी कम्पनियाँ जारी की है और कुछ कम्पनियों ने इस उद्देश्य से पुराने बैंकरों को अपने बोर्ड में ले लिया है । वाणिज्य बैंक को भी पट्टा व्यवसाय प्रारम्भ करने की अनुमति दे दी गयी है परन्तु बैंक को सीधे अर्थात् अपने विभाग के माध्यम से व्यवसाय करने की अनुमति नही दी गयी । उन्हे निर्देश दिया गया कि वे रिजर्व बैंक से पूर्व अनुमति लेकर पट्टा व्यवसाय करने के लिए सहायक संस्था खोले जिसका कम से कम 15 प्रतिशत शेयर बैंक के पास हो । यह सहायक संस्था इस पट्टा कम्पनियों को वित्त नही प्रदान कर सकती है और न ही वह किराया खरीद व्यवसाय कर सकती है । बैंक पट्टा कम्पनियों के शेयरों में अपने संविभाग से निवेश कर सकते है परन्तु स्वयं ऐसी कम्पनियों का प्रवर्तन नही कर सकते । नयी पट्टा कम्पनियों के लिए यह आवश्यक होगा कि शेयर पूँजी का कम से कम 40 प्रतिशत उद्यमियों के समूह का योगदान हो और ऐसे शेयरों का शेयर आबंटन तारीख से तीन वर्ष की अवधि के लिए हस्तान्तरित नही होगा ।

भारत में पट्टेदारी का विकास उपस्कर वित्त पोषण के महत्वपूर्ण पूरक संसाधन के रूप में हुआ है और उद्योग क्षेत्र में इसे उत्तरोत्तर स्वीकारा जा रहा है । पट्टेदार के लिए पट्टे से प्रमुख लाभ किराया है जो कर प्रयोजनों के लिए एक व्यवसायिक व्यय है । पट्टा कम्पनियों को निधियाँ उपलब्ध कराने की सम्भावनाओं में (1) शेयर पूँजी, (2) डिबेंचर, (3) बैंक वित्त और (4) जमा

राशियाँ है । इसके अतिरिक्त आन्तरिक जमाराशियाँ और आय है ।

कोई भी उपस्कर पट्टा कम्पनी जिसका मुख्य कारबार उपस्कर पट्टे पर देना या ऐसी गतिविधियों का वित्तपोषण करना है उसे 6 से 36 महीने तक की अवधि के लिए जमाराशियाँ स्वीकार करने की अनुमति है । 14 अप्रैल 1987 से उपस्कर पट्टा कम्पनियों को जमाराशियों पर 14 प्रतिशत की उच्चतम ब्याजदर अदा करने की अनुमति है । उपस्कर पट्टा कम्पनी द्वारा जनता से स्वीकृत कुल राशि तथा डिबेंचर द्वारा प्राप्त राशि और बैंक / संस्थानिक ऋण आदि से प्राप्त राशि सब मिलाकर उनके निजी स्वामित्व की निधियों से 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए । उपस्कर पट्टा कम्पनियों से यह आशा की जाती है कि अनुसूचित वाणिज्य बैंक के पास न्यूनतम नकदी परिसम्पत्तियाँ रखे अथवा एक ऐसी राशि अनुमोदित प्रतिभूतियों में निवेश करें जो उनके दिन प्रतिदिन की बकाया जमाराशियों से 10 प्रतिशत से कम न हो जैसा कि किराया खरीद अथवा आवास वित्तपोषक कम्पनी के मामले में होता है । उपस्कर पट्टा कम्पनियाँ भारतीय रिजर्व बैंक के निरीक्षण के अधीन है । उपस्कर पट्टा कम्पनियों से यह अपेक्षित है कि वे जनता से जमा राशियां मांगने से पूर्व विज्ञापन भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत विज्ञापन नियमावली के अनुसार जारी किए जाने चाहिए ।

शुरू शुरू में पट्टा कम्पनियों की बाढ़ सी आने लगी थी अब कम हो गयी है । संस्थाओं और बैंक का व्यवसाय के इस क्षेत्र में उतरना सबके लिए हितकर है । स्वस्थ प्रतियोगिता के अतिरिक्त इससे व्यवसाय को विकास के लिए ऋण आधार भी मिलेगा । पट्टा कारबार की कार्य पद्धति और परिपाटियों का अभी तक मानकीकरण नहीं हो पाया है । पट्टा खाने के हिसाब किताब रखने

का कोई औपचारिक तरीका नही है और न ही इस सम्बध में कोई विशेष कानून ही है। अब पट्टा व्यवसाय के सम्बन्ध मे एक अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्ड है और यह प्रयास किया जा रहा है कि विश्व स्तर पर पट्टे से सम्बन्धित समान कानून हो।

पट्टा कम्पनियों द्वारा जमाराशियाँ ग्रहण करने के सम्बध में रिजर्व बैंक के जो भी निर्देश है वे जमाकर्ताओं की हित रक्षा को ध्यान में रखते हुए है जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा करना जमाराशि ग्रहण करने वाली कम्पनियों का पहला उत्तरदायित्व है। अत: प्रबन्धतंत्र का यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि जिन प्रयोजनों के लिए संसाधन एकत्र किए जाते है उनका उन्ही प्रयोजनों के लिए कुशलता पूर्वक उपयोग किया जाना चाहिए। जिन प्रयोजनों के लिए संसाधन जुटाए गए है कम्पनी के कार्यकलाप के दायरे से बाहर उनसे इतर प्रयोजनो अथवा अहितकर व्यवसाय के लिए संसाधनों के उपयोग से जमाकर्ताओं के विश्वास को ठेस लग सकती है और परिणाम स्वरूप इसका असर संसाधन जुटाने के कार्यक्रम पर पड़ सकता है। इसलिए यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि कम्पनी का काम काज साफ सुथरा हो और जनता के साथ अपने कार्यों को सही परिणामों का सहभागी बने। अत: पट्टा कम्पनियों को अपने प्रकाशित खातों की प्रस्तुति पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

पट्टाकर्ताओं को उपलब्ध लाभों में से एक लाभ यह है कि उन्हे कर से बचत होती है और इससे वे पहले वर्ष से ही उच्च स्तर के लाभ घोषित करने और लाभांश देने में सफल रहते है। इसका कारण यह अनुमानित किया गया है कि पट्टा व्यवसाय में निर्माणावधि तो होती नही है और इसलिए यह सम्भव है कि

किराये के बड़े हिस्से को जरूरत से अधिक आय माने । बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि लाभ को किस अवधि में स्वीकार किया जाता है । पट्टा अवधि के अन्त में या शर्त के पहले हिस्से के निवेश अवधि क्रियावधि में सही हिसाब किताब रखने की क्रियावधि पट्टेदार और पट्टेदाता दोनो के लिए हितकर है । पट्टा अनुबन्धो के मानक खाता बही के सम्बन्ध में एक्सपोजर ड्राफ्ट के नाम से इन्स्टीटयूट आफ चार्टेड एकाउन्टस आफ इण्डिया ने एक प्रारूप मार्गदर्शी सिद्धान्त जारी किया है । इन मार्गदर्शी सिद्धान्तो से यह सुविधा होगी कि पट्टा उद्योग के ढाँचे का सूक्ष्म विश्लेषण हासिल होगा । अवधारणा यह है कि प्रचलित हिसाब किताब रखने की भ्रामक परिपाटि की खामियो को दूर किया जाए ताकि इस नवजात उद्योग के स्वस्थ विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियो का निर्माण किया जा सके । इनके अनुसार वित्तीय पट्टे-दारी ऐसी पट्टेदारी है जिसके द्वारा परिसम्पत्तियो के स्वामित्व से सम्बधित सभी प्रकार के जोखिमो और लाभो का अन्तरण हो जाता है ।

वार्षिक पूँजी वसूली प्रभार का हिसाब पट्टेदारी किराए में से वित्तीय आय को घटाकर लगाया जाना चाहिए । इस वार्षिक प्रभार में न्यूनतम सावधिक मूल्य ह्रास और विशेष पट्टा मूल्यह्रास शामिल होना चहिए । और उन्हे लाभ हानि खाते में अलग से दर्शाया जाना चाहिए । वित्तीय पट्टे के सम्बध में आय को परिसम्पत्तियो में पट्टादाता के बकाए निबल निवेश पर लाभ की स्थायी आवाधिक दर के रूप में गिना जाना चाहिए ।

पट्टेदारी व्यवसाय की भारत में विकास की भारी सम्भावना है । भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रचुर विशाखन हो चुका है और समग्रता में इसके विकास भी काफी तीव्र हो चुके है । 1980 - 81 से 1984-85 के दौरान सकल राष्ट्रीय

उत्पाद में 5.3 प्रतिशत की वार्षिक औसत दर से वृद्धि हुई । 1985-86 में इसमें 4.9 प्रतिशत 1986-87 में 4.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई और 1987-88 में 1.2 प्रतिशत की वृद्धि होने की सम्भावना है । 1987-88 में कृषि उत्पादन में आयी गिरावट की वजह से कृषि उत्पादन में 7 से 10 प्रतिशत की गिरावट थी 1980-81 से 1986-87 के दौरान औद्योगिक उत्पादन में 1971-72 के 4.2 प्रतिशत की तुलना में 7.6 प्रतिशत की चक्रवृद्धि वार्षिक की दर से वृद्धि हुई । नौवें दशक में अर्जित की गयी वृद्धि दर की प्रवृत्ति पिछले तीन दशकों में देखी गयी 6 प्रतिशत की वृद्धि दर से अधिक है । खान विनिर्माण और विद्युत उत्पादन में भी नौवें दशक के दौरान महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है । औद्योगिक क्षेत्र की वृद्धि दर भी काफी प्रभावशाली है । मूल भूत उद्योगों और पूंजीगत वस्तुओं में जिनका संयुक्त भार 55.85 प्रतिशत होता है, 1986-87 के दौरान 1985-86 की तुलना में 9.4 प्रतिशत और 18.2 प्रतिशत की उच्चतर वृद्धि दरें परिलक्षित हुई है । 1986-87 में 21.7 प्रतिशत की सकल देशी उत्पाद के प्रतिशत के रूप में देशी बचत कर काफी ऊँची है । 1986-87 में सकल पूँजी निर्माण की दर 20.4 प्रतिशत थी । 1986-87 में विदेशों से आने वाली पूँजी पर निर्भरता 1.7 प्रतिशत रही जबकि 1985-86 में यह सकल देशी उत्पाद का 2.4 प्रतिशत थी । अत: अर्थ व्यवस्था की मूल शक्ति को देखते हुए आने वाले वर्षों में पट्टा व्यवसाय का विस्तार होना ही चाहिए । सावधानी यह बरतनी होगी कि इस वित्तीय संसाधन से उपयोग-कर्ताओं को लाभ मिले और बाजार से संसाधन जुटाने वाली कम्पनी में बचत-कर्ताओं का विश्वास बना रहे ।

आफ बैलेन्स शीट बैंकिंग

भारतीय वाणिज्य बैंक निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमियों के लिए गैर वाणिज्यिक उधार की व्यवस्था करते हैं । इसी सन्दर्भ में ये बैंक उन्हें सलाहकारी सेवाएं प्रदान करके बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं । अतः वाणिज्य बैंक द्वारा प्रदान की जाने वाली गैर मौद्रिक सेवाओं जैसे सलाह-कारी सेवाएं उनके वित्तीय विनियोजन की गुणवत्ता में वृद्धि के लिए सुझाव इत्यादि मदें 'आफ बैलेन्स शीट' में सम्मिलित की जाती है । इस प्रकार के "आफ बैलेन्स शीट" के कार्यक्रमों द्वारा भारतीय वाणिज्य बैंकों को अन्तर्रा-ष्ट्रीय बाजार में अन्तर्राष्ट्रीय बैंकों की प्रतियोगिता में खड़े होने योग्य बनाया जा रहा है ।

यद्यपि आफ बैलेन्सशीट कार्यक्रमो से बहुत अधिक लाभ है, लेकिन ये लाभ जोखिम से रहित नहीं है । इससे उत्पन्न होने वाले लेन-देन से सम्बन्धित जोखिम में कार्यात्मक जोखिम तरलता और कोष के जोखिम स्थिति जोखिम और साख जोखिम सम्मिलित है । वित्तीय सेवाए जैसे सलाहकारी और विनियोग सेवाएं जिसमें व्यापार के जोखिम भी सम्मिलित हैं से बैंकों की छवि प्रभावित होती है । आफ बैलेन्स शीट कार्यक्रमों का बैंक अपरिमित रूप से प्रसार नहीं करती है और अपने सभी दायित्वो को पूरा करने की स्थिति में होती है । आफ बैलेन्स शीट कार्यकलापों से सम्बन्धित लेन-देन और उनमें चयन करने की स्वतन्त्रता के कार्य इतने अधिक जटिल हैं कि बैंक के दायित्वो, अन्तर्बैंकिंग उधारों, परिसम्पत्तियों की बिक्री और बैंक के कोषो की लागत में वृद्धि करने वाली दूसरी परिसम्पत्तियो के सम्बन्ध मे सलाहकारी सेवाएं प्रदान

करके ये उनकी सहायता करते हैं । उदाहरणार्थ

वाणिज्य बैंक के ब्याज और विनिमय दर मे बहुत अधिक उतार चढ़ाव से बैंक के समक्ष जोखिम को स्थिति उत्पन्न हो सकती है । जिसे कि पहले से ज्ञात नहीं किया जा सकता है। इस सम्बन्ध मे बैंक अर्न्तबैंकिंग लेन-देन द्वारा इस उधार को क्षतिपूर्ति कर सकती है ।

आफ बैलेन्सशीट कार्यकलापों में सबसे बड़ा जोखिम उपभोक्ता साख जोखिम के दोष हैं क्योंकि उपभोक्ताओं के दायित्व में सबसे अधिक अनिश्चितता होती हैं । समय पर वादे के अनुसार न चुकाए गए अनिश्चित दायित्व आफ बैलेन्स शीट के दायित्वों में परिवर्तित हो जाते हैं, क्योंकि-बैंक को इस दायित्व को मौद्रिक क्षतिपूर्ति तो करनी ही होगी । भारतीय वाणिज्य बैंकों के जोखिम को न्यूनतम करने और उनका अच्छी प्रकार से विकास करने के लिए भविष्य में मौद्रिक बाजार की प्रवृत्तियों को अच्छी प्रकार से समझना होगा इससे ही बैंकिंग विकास तीव्र गति से हो सकता है । इस बदलते सन्दर्भ में भविष्य को बाजार प्रवृत्तियों को ज्ञात करने और मौद्रिक बाजार की सूचनाओं का सूक्ष्मतम विश्लेषण करने के लिए वित्तीय इंजीनियरिंग तकनीकी का विकास करना होगा । लगातार आर्थिक बाजार के सर्वेक्षण लगातार मौद्रिक बाजार के सम्बन्ध में शोधकार्य एवं नवीनतम प्रवृत्तियों को ज्ञात करके भी आफ बैलेन्स शीट बैंकिंग को सफलता का कार्य अत्यन्त सरल बना सकते हैं । व्यक्तिगत उपभोक्ताओं को उपभोक्ता वस्तु आवश्यकताओं के लिए जब वित्तीय सेवाओं की अधिक मात्रा मे आपूर्ति की जाने लगी तो उनके सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता हुई । वित्तीय कार्यों के विश्लेषण और प्रक्रिया के लिए उपभोक्ताओं को शीघ्र ही सेवाएं प्रदान के लिए भारत में कम्प्यूटर नेटवर्क

कार्यक्रम को संचालन और तेज संचार व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है । प्रशिक्षित कर्मचारी, विशेषज्ञों का समूह जिन्हें बाजार की प्रवृत्तियों को पूरी जानकारी हो की आवश्यकता "आफ बैलेन्स शीट कार्यक्रमों के सफलतापूर्वक कार्यान्वयन के लिए आवश्यक हैं । इसी प्रकार से आफ बैलेन्स शीट बैंकिंग की सफलता के लिए इनके अनिश्चित दायित्वों के साथ ही इनके घोटाले की सम्भावना को पूरी तरह से समझना बैंक के उत्पादक क्षेत्र और उपभोक्ताओं के बारे में पूरी जानकारी और पूँजी पर्याप्तता आवश्यक है ।

आफ बैलेन्स शीट सेवाओं की व्यवस्था बैंकिंग चैनल से न करके इसके लिए अलग से बैंकिंग सहायक संस्था की स्थापना की आवश्यकता है इसलिए कुछभारतीय वाणिज्य बैंक ने पूँजी बाजार की अनेक सहायक संस्थाओं की स्थापना की । अत: इसलिए यह आवश्यक होगा कि किसी भी प्रकार की वैभिन्नीकरण सम्बन्धी नवीन वित्तीय सेवाओं की व्यवस्था इन सहायक संस्थाओं द्वारा की जाए । इन सहायक संस्थाओं को बाद मे कम्प्यूटराइज्ड किया जा सकता है और इसे घरेलू संचार साधनों के द्वारा घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय बाजार से सीधे जोडा जा सकता है जोकि मुख्य वित्तीय सेवा बाजार के उपभोक्ताओं से प्रत्यक्ष रूप से सम्पर्क स्थापित कर सकता है । इन कार्यों के सफलतापूर्वक संचालन के लिए यह आवश्यक होगा कि इसके लिए घरेलू व अन्तर्राष्ट्रीय वित्त बाजार के विशेषज्ञों को अपने यहाँ बुलाया जाए । इस प्रकार की सहायक संस्थाओं का किसी सुदृण केन्द्रीय संगठन द्वारा नियन्त्रित होना अत्यन्त आवश्यक है । प्रशिक्षित विशेषज्ञों के समूह इन वित्तीय सेवाओं को व्यवसायिक ग्राहकों को प्रदान करने में अपना सहयोग प्रदान करते हैं । इन सहायक संस्थाओं में

स्वस्थ प्रतियोगिता होनी आवश्यक है । इससे इनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं की गुणवत्ता बनी रहती है और वे अन्य सहायक संस्थाओं की तुलना में अधिक अच्छी प्रकार से कार्य करने का प्रयास करती हैं । इसके अतिरिक्त "आन बैलेन्स शीट में विद्यमान अनिश्चितता और जोखिम के कारण "आफ बैलेन्स शीट के कार्यों से इनके रिकार्ड में सुधार होगा । इससे वाणिज्य बैंक की स्थिति अधिक सन्तुलित बनी रह सकेगी । इससे वित्तीय विश्लेषण तकनीक में कुशलता आएगी ।

इस प्रकार से आफ बैलेन्स शीट बैंकिंग वाणिज्य बैंक की वित्तीय सेवाओं से अधिक आय उत्पादकता में सहयोग देगी और उनकी लाभदायकता की स्थिति में सुधार करेगी । तथापि आफ बैलेन्सशीट बैंकिंग के कार्यों से न तो बैंकिंग परिसम्पत्तियों की स्थिति प्रतिबिम्बित होती हैं और न ही इनके दायित्वों की ही । इसके कार्यों में बैलेन्स शीट की सीमाएं आड़े नहीं आती हैं और न ही ये बैंकिंग फर्मों के वित्तीय मध्यस्थता के कार्य को सीमित करता है । फिर भी आफ बैलेन्सशीट के कार्यों में कुछ जोखिम बैलेन्स विद्यमान हैं, जिसे कुशलता एवं अनुभव से दूर किया जा सकता है । आफ बैलेन्स शीट बैंकिंग सहायक संस्था के विशेषज्ञों को बाजार की पूरी जानकारी हो तथा सम्भावित अनुमानों तथा गणना और जोखिम में सम्बन्ध में सचेत रहकर इनकी हानियों को न्यूनतम किया जा सकता है। इस प्रकार से आफ बैलेन्स शीट बैंकिंग की कुशलता पर ही इसकी लाभदायकता निर्भर करती है । भारतीय वित्तीय बाजार का सही मूल्यांकन भी इस प्रकार के कार्यों के लिए अधिक अच्छे अवसर प्रदान करता है । अतः अब समय आ गया है कि भारतीय वाणिज्य बैंक अब आन बैलेन्स शीट की वित्तीय मध्यस्थता से आफ बैलेन्सशीट की बाजार योग्य मध्यस्थता की ओर अपनी प्रवृत्तियाँ शुरू करें ।

म्युच्युअल फण्ड स्कीम

वैभिन्नीकरण पोर्टफोलियो के लाभो को उठाने के लिए म्युच्युअल फण्ड स्कीम एकत्रित विनियोग योजना है । इसके अन्तर्गत विशेषज्ञो की सलाह और उनके प्रबन्धन मे बड़े पैमाने पर विनियोगियो के लिए सुरक्षित विनियोग सुविधा प्रदान करता है और सम्पूर्ण जोखिम को एकत्रित करके संस्थागत रूप से उसे संचालित करता है । मार्च 1990 के अन्त तक भारत मे 5 म्युच्युअल फण्ड कम्पनियाँ कार्य कर रही थी । ये है - यूनिट ट्रस्ट आफ इण्डिया म्युच्युअल फण्ड, स्टेट बैंक आफ इण्डिया म्युच्युअल फण्ड, कैन बैंक म्युच्युअल फण्ड, जीवन बीमा निगम म्युच्युअल फण्ड और इण्डियन बैंक म्युच्युअल फण्ड । सभी म्युच्युअल फण्डो को मिला कर वे लगभग 67 लाख विनियोगियो की सेवा कर रहे है । जिसमे से केवल यूनिट ट्रस्ट आफ इण्डिया ही 58 लाख विनियोगियो की सेवा कर रहा है । भारत मे सभी म्युच्युअल फण्डो के विनियोग योग्य कोष मार्च 1990 के अन्त मे 18000 करोड़ रूपये अनुमानित किया गया जिसमे से यूनिट ट्रस्ट आफ इण्डिया ने ही लगभग 15892 करोड़ रूपये का व्यापार किया । म्युच्युअल फण्ड अप्रत्यक्ष रूप से देश मे इक्विटी संस्कृति को विकसित करने मे सहायता कर रहा है ।

अक्टूबर 1989 मे रिजर्व बैंक ने निर्देश दिया कि म्युच्युअल फण्ड के क्षेत्र आन्तरिक कार्यकलाप इनको देखभाल और प्रबन्धन इनमे विनियोग करने के उद्देश्य व नीतियो का विश्लेषण बाह्य सीमाओ का निर्धारण मूल्याकन और इनकी विवरण सम्बन्धी आवश्यकताओ वित्तीय आवश्यकताओ व इनकी वार्षिक रिपोर्टो के सम्बन्ध मे विस्तृत निर्देश पत्र जारी किए । भारत सरकार ने हाल ही मे म्युच्युअल फण्डो के लिए निर्देश जारी किए जिसके अनुसार सभी नए एवं पुराने

म्युच्युअल फण्डो को रिजर्व बैंक के द्वारा जारी निर्देशो के अनुसार कार्य करना होना । वाणिज्य बैंको के लिए रिजर्व बैंक द्वारा जारी हाल के निर्देशो के अनुसार म्युच्युअल फण्ड को वाणिज्य बैंक के एक विभाग द्वारा न किया जाकर वाणिज्य बैंक को एक सहायक संस्था खोलनी चाहिए जो केवल म्युच्युअल फण्ड व्यवसाय को ही करे । परन्तु सहायक संस्था के 15 प्रतिशत शेयर वाणिज्य बैंक के होने चाहिए । स्टेट बैंक आफ इण्डिया म्युच्युअल फण्ड के अतिरिक्त दूसर बैंको को भी म्युच्युअल फण्ड सहायक संस्थाऐं प्रारम्भ करनी चाहिए ।

भारत मे म्युच्युअल फण्ड विनियोगियो को सुरक्षा तरलता एवं लाभदायकता प्रदान करता है । ये चालू बचत एवं विनियोग प्रत्याभूतियो की सुरक्षा के साथ आय मे वृद्धि करते है । ये फण्ड शेयर कीमतो मे स्थिरता लाते है तथा विनियोगियो के ससाधनो को बढ़ाने की व्यवस्था करते हैं । अतः इस प्रकार से भारतीय अर्थ व्यवस्था की संवृद्धि मे म्युच्युअल फण्ड एक महत्वपूर्ण कड़ी होगा अतः इस सन्दर्भ मे इस नए उपकरण के प्रति विनियोगियो मे आत्मविश्वास एवं सफलता का विश्वास आवश्यक है । तभी इसका विकास तीव्र गति से होगा भारतीय पूँजी बाजार के विकास के सन्दर्भ मे छोटे विनियोगियो के लिए भी म्युच्युअल फण्ड महत्वपूर्ण है । इक्विटी के प्रसारण मे म्युच्युअल फण्ड केन्द्रीय भूमिका निभाता है । फण्ड द्वारा प्रस्तुत उत्पादो / सेवाओ का विस्तृत क्षेत्र पूँजी बाजार मे विनियोगियो को गुणवत्ता के प्रति सचेत करेगा ।

आज म्युच्युअल फण्ड कोष वाद विवाद का मुख्य विषय बन गए है । सामान्य रूप से बैंक को म्युच्युअल फण्ड कोषो को कुछ यूनिटो पर भारी लाभांश और कुछ यूनिटो पर घाटा होता है अर्थात बैंक के बैभिन्नीकरण सिद्धान्त

"सभी अण्डे को तरह एक ही टोकरी मे नही रखने चाहिए" के सिद्धान्त पर कार्य करते हुए बैंक को लाभ प्राप्त होता है । लेकिन कभी कभी ऐसा भी हो सकता है कि बैंक को अपने सभी यूनिटों पर लाभांश प्राप्त न हो यदि ऐसा हुआ तो बैंक को लाभदायकता को स्थिति पर दबाव पड़ेगा । इस प्रकार से इसमें लाभदायकता के साथ जोखिम तत्व विद्यमान रहने के कारण यह बैंक के मूल भूत कार्यकारी सिद्धान्त के विरूद्ध है । इसी प्रकार से वाणिज्य बैंक को अपनी परिसम्पत्तियों का विनियोग दीर्घकालीन प्रतिभूतियों में नही करना चाहिए वाणिज्य बैंक एक अल्पकालीन ऋण देने वाली संस्था है जबकि म्युच्युअल फण्ड कोषों में विनियोग एक दीर्घकालीन विनियोग है । अत: वाणिज्य बैंक कोषों को म्युच्युअल फण्ड जारी करने का कार्य विकास बैंकिंग के साथ मिलाकर नहीं करना चाहिए । दीर्घकालीन विनियोग से वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियाँ अवरूद्ध होती है । अत: वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों के प्रवाह को बनाए रखने के लिए इन्हे म्युच्युअल फण्ड कोष में विनियोग नहीं करना चाहिए ।

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के निर्देशो के अनुसार बैंक को अपनी कुल परिसम्पत्तियों के 5 प्रतिशत से अधिक का विनियोग म्युच्युअल फण्ड में नहीं करना चाहिए ।

ग्राहक साख और क्रेडिट कार्ड

देर से ही सही वाणिज्य बैंक के ग्राहको को अधिक वित्तीय सुविधाए प्रदान करने के लिए ग्राहक साख का बहुत तेजी से प्रसारण कर रहे है । बैंक क्रेडिट कार्ड व्यवसाय में प्रवेश कर रहे है । इसकी कड़ी अन्तर्राष्ट्रीय नेट

वर्क कार्यक्रम मास्टर कार्ड अथवा वीजा से जुड़ेगी । यद्यपि यह ऐसा क्षेत्र है जिसकी लागत बहुत अधिक है और व्यक्तिगत खातों के लेन देन में इसके प्रवाह को बनाए रखने के लिए कम्प्यूटराइजेशन अत्यन्त आवश्यक है । भारत एक विकासशील देश होने के कारण यह व्यवसाय विशेष प्रतिफल देने वाला नहीं हो सकता है ।

फैक्टरिंग §अवढ़तिया सेवा§

वित्तीय सेवाओं के रूप में फैक्टरिंग विकसित देशों में बहुत अधिक लोकप्रिय है । आर्थिक रूप से विकसित देशों में पूर्तिकर्ताओं को वित्तपोषण और प्राप्त राशि की वसूली में सहायक साधन के रूप में फैक्टरिंग सेवाओं को पिछले तीन दशकों के दौरान व्यापक स्तर पर और अधिकाधिक इस्तेमाल किया जा रहा है । देशी बिक्री के सम्बध में फैक्टरिंग द्वारा छः प्रकार की सेवाएँ उपलब्ध करायी जाती है । §1§ पूर्व फैक्टरिंग §2§ प्रथम फैक्टरिंग §3§ परिपक्वता फैक्टरिंग §4§ उच्चतर फैक्टरिंग §5§ अव्यक्त फैक्टरिंग §6§ बीजक भुनादी ।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में निर्यात फैक्टरिंग व आयात फैक्टरिंग होता है । इसके अन्तर्गत निर्यात फैक्टर में निर्यातक को उपेक्षानुसार वित्तपोषण तथा अन्य सेवाएं उपलब्ध करायी जाएगी आयात फैक्टर से निर्यातकों को साख का मूल्यांकन किया जाएगा । यथा सम्भव उनके पक्ष में ऋण सुविधाओं को व्यवस्था करना प्रश्रय बिलों को अपने हाथ मे लेना तथा प्राप्त बकाया वसूली के लिए आवश्यक हर उपाय करना । भारत में फैक्टरिंग के प्रारम्भ होने से निर्यातकों को एक अतिरिक्त सुविधा उपलब्ध होगी । इससे फैक्टरिंग कारोबार व्यापा-

पारिक दृष्टि से समझ्य हो जाएगा । भारत में 60 प्रतिशत निर्यात साख पत्र के बिना होता है । साख पत्र प्राप्त करने वाले निर्यातकों को भी निर्यात फैक्टरिंग अधिक लाभदायक हो जाएगी । सन्तुलित विवरण और जोखिमों के लिए फैक्टर को चाहिए कि वे सभी उद्योगों और अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों को अपनी सेवाएँ उपलब्ध कराएँ अत: सभी क्षेत्रों के जोखिम का पूर्वानुमान लगाना आवश्यक होता है ।

फैक्टरिंग द्वारा विभिन्न सेवाओं का मूल्य ग्राहक की साख उनका पिछला रिकार्ड, परिफोलियो की गुणवत्ता, कुल बिक्री बोझ औसत आदि का पता लगाना आवश्यक होता है । फैक्टर को चाहिए कि निधियों के विभिन्न स्रोतों का मिलाजुला रूप अपनाए जिससे निधियों की लागत कम से कम रहे और किसी भी स्थिति में 13.5 प्रतिशत वार्षिक से अधिक न हो ताकि उन्हें उचित मार्जिन मिले । रिजर्व बैंक फैक्टरिंग संगठनों को भारतीय बिल बाजार तथा अन्य अनुमोदित वित्तीय संस्थाओं से बिल पुर्नभुनाई योजना के अन्तर्गत संशोधित क्रिया विधि के अनुरूप आढत के प्राप्त बिलों वाले मियादी विनिमय बिलों पर निधियाँ जुटाने की अनुमति देने पर विचार कर सकता है ।

फैक्टर कम्प्युटर से तथा त्वरित एवं विश्वसनीय संचार साधनों के बिना अपनी सेवाएं सक्षम, कारगर और मितव्ययी ढंग से प्रदान नहीं कर सकते । अत: लेखा रखने अनुवर्ती कार्यवाई, प्रेषणों तथा फैक्टरिंग कारोबार की गतिविधियों के लिए देश के विभिन्न भागों में स्थित शाखाओं/एजेन्टों को परस्पर जोड़ने वाले कम्प्युटर तन्त्र की व्यवस्था करनी चाहिए ।

केन्द्रीय सरकार और रिजर्व बैंक आफ इण्डिया को ऐसी

विशेषज्ञता प्राप्त एजेंसियाँ स्थापित करने के लिए तत्काल उपाय करने चाहिए जिससे कि वस्तुओं और सेवाओं के क्रय और विक्रय में लगी पार्टियों की बाजार में प्रतिष्ठा वित्तीय स्थिति, व्यापारिक सम्भावनाओं आदि के बारे में अद्यतन विश्वसनीय जानकारी प्राप्त हो सके।

ग्राहक आपूर्तिकर्ता और फैक्टरिंग संगठनों दोनों से ही वित्तीय सेवाएं प्राप्त कर सकें अत: बैंक और फैक्टर के बीच उचित सम्पर्क की व्यवस्था करना आवश्यक हो जाता है।अत: बैंक और फैक्टर एक से अधिक एजेन्सियों को आवेदन करने वाली पार्टियों के बारे में एक दूसरे को पूरी जानकारी दे। इस त्रिपक्षीय व्यवस्था के अन्तर्गत जिसमें पूर्तिकर्ता ऋण को फैक्टर को अन्तरित कर देगा तथा फैक्टर बैंकों से उधार लेगा या फिर आपूर्ति कर्ता बैंको से उधार लेगा और ऋण संरक्षण तथा बिक्री खाता रखने से सम्बन्धित सेवाएं किसी फैक्टर से प्राप्त करेगा।

लघु उद्योग यूनिटों को अपनी आपूर्ति भुगतान विलम्ब से मिलने के कारण उनकी कार्यकारी पूँजी कम हो जाती है जिससे उनके परिचालन में बाधा आती है। ऐसे यूनिटों का कोई संगठनात्मक ढाँचा नहीं होता और नही ऋण। व्यवस्था के क्षेत्र में कोई विशेषज्ञता नहीं होती जिससे वे क्रेताओं से प्राप्त राशि के लिए अनुवर्ती कार्यवाही तथा वसूली कर सके। अत: फैक्टर अपनी कार्यपद्धति क्रमबद्ध विशेषज्ञता युक्त और व्यवसायिक कार्य पद्धति होने के कारण ऋण वसूली में उनकी सहायता कर सकेंगे।

प्राप्त बिलो के लिए वित्त व्यवस्था के बारे में फैक्टर से लघु उद्योग यूनिटों को जहाँ वित्त का एक अन्य साधन प्राप्त होगा, वहीं वे रियायती ब्याजदर पर ऋण नहीं उपलब्ध करवाएगें'।

1 अप्रैल, 1991 से "स्टेट बैंक आफ इण्डिया फैक्टरिंग एण्ड कामर्शियल सर्विसेज लिमिटेड" ने विशेष रूप से लघु और मध्यम क्षेत्र को अल्पकालीन वित्तीयन के लिए कए नए स्रोत की स्थापना की। बाघुल समिति की सिफारिशों के अनुसार मुद्रा बाजार में गैर वित्तीय निजी संस्थाओं को भी फैक्टरिंग सेवा में वृद्धि करने के लिए अपना योगदान करना चाहिए। रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने 1988 जनवरी में स्टेट बैंक आफ इण्डिया के भूतपूर्व मैनेजिंग डायरेक्टर श्री सी0एम0 कल्याण सुन्दरम् की अध्यक्षता में फैक्टरिंग सेवा का प्रारम्भ करने के लिए एक समिति का गठन किया। इस समिति ने सुझाव दिया कि बैंक को फैक्टरिंग सेवा एक विभाग द्वारा न करके अलग से एक सहायक संस्था के माध्यम से इसका प्रारम्भ करनाचाहिए।

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने फैक्टरिंग सेवाओं द्वारा जनता में लाभदायक वित्तीयन करने के दृष्टिकोण से निम्न निर्देशक सुझाव दिए।

वर्तमान समय मे वाणिज्य बैक प्रत्यक्ष रूप से (विभागीय रूप से) फैक्टरिंग सेवा नहीं कर पाएगी। जबकि कुछ निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत बैंकिंग कम्पनियाँ फैक्टरिंग सेवा में विनियोग कर सकती है।

रिजर्व बैंक से परामर्श लेकर ये फैक्टरिंग कम्पनियों को प्रोत्साहित कर सकती है। बैंक अलग से एक सहायक संस्था के रूप में फैक्टरिंग

कम्पनी की स्थापना कर सकते है जिसका मुख्यालय रिजर्व बैंक आफ इण्डिया का अर्थशास्त्र विभाग होगा ।

- एक फैक्टरिंग सहायक संस्था अथवा संयुक्त उद्यमी फैक्टरिंग कम्पनी फैक्टरिंग व्यवसाय एवं इसके सहयोगी कार्यों को तो कर सकती है लेकिन वे दूसरी ऐसी संस्थाओं जो स्वयं फैक्टरिंग के कार्य मे लगी हो, मे अपने को नही लगाना चाहिए ।

- यदि फैक्टरिंग वाणिज्य बैंक की सहायक संस्था द्वारा किया जाता है तो इनके द्वारा किए जाने वाले फैक्टरिंग सेवा विनियोग कुल बैंक परिसम्पत्तियों का 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए।

- किसी भी बैंक की सहायक संस्था के रूप मे अथवा संयुक्त उद्यम फैक्टरिंग कम्पनी की स्थापना के सम्बन्ध मे पूँजी निर्गम के सम्बन्ध मे निर्णय लेने का पूरा अधिकार रिजर्व बैंक आफ इण्डिया को है ।

- बैंक जो कि सहायक संस्था के रूप मे अथवा संयुक्त साहसी फैक्टरिंग कम्पनी की स्थापना के लिए जो कि फैक्टरिंग सेवाओं को संचालित करने के लिए खोली जा रही है का रिजर्व बैंक आफ इण्डिया को पूर्ण जानकारी देनी चाहिए ।

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने चार राज्यों मे निर्माताओं और पूर्तिकर्ताओं को वस्तुए एवं सेवाएं प्रदान करने के लिए चार अलग से फैक्टरिंग सेवा कम्पनियों की स्थापना की । चार बैंक जो कि फैक्टरिंग सेवा व्यवस्था का कार्य करने के लिए तैयार है वे है- पश्चिमी क्षेत्र की स्टेट बैंक आफ इण्डिया, दक्षिण राज्यों के लिए

कनरा बैंक, उत्तरी राज्यों के लिए पंजाब नेशनल बैंक और पूर्वी राज्यों के लिए इलाहाबाद बैंक ।

फैक्टरिंग वित्तीय संस्थाओं (फैक्टर) और व्यवसायियों के बीच वस्तुओं को खरीदने और व्यापारिक ग्राहकों को सेवा प्रदान करने के बीच की जाने वाली ऐसी सतत व्यवस्था है जिसमें फैक्टर किताबी उधार (खातों से प्राप्तियाँ) के आधार पर अपना व्यवसाय करता है जिसमें ग्राहक की साख के आधार पर ही पूरा व्यवसाय होता है । इसके कार्यों के लिए कहा जाता है -

"आप हमें चुकाइए हम उसे चुका देंगे और वह आपको भुगतान कर देगा ।" यह मुद्रा परिभ्रमण का अधिकतम विकसित रूप है । इस विचार से ही फैक्टरिंग सेवा का जन्म हुआ । छोटी और मध्यम आकार की कम्पनियों के लिए ऋणों का एकत्रण एक समस्या बन गयी थी । विकास शील देशों में कार्यकारी पूँजी पर भी सामान्य ब्याज दर लगने के कारण उन्हें इस पर अत्यधिक ब्याज देना होता था । व्यवसायिक सन्दर्भ में पूँजी की कीमत में वृद्धि से उनके लाभ में कमी होती है । अतः इस स्थिति से निबटने के लिए फैक्टरिंग सेवा की आवश्यकता होती है । इसके अन्तर्गत साख लेने वाले को अपनी कुल वस्तु (बीजक) साख का 80 प्रतिशत तुरन्त चुकाना होता है तथा शेष 20 प्रतिशत भुगतान प्राप्त करने के बाद देना होता है । फैक्टर सेवाकम्पनियाँ 2.9 प्रतिशत से लेकर 3 प्रतिशत तक का सेवा शुल्क खरीदे गए ऋणों पर लेती है ।

फैक्टरिंग सम्बध उपभोक्ता और फैक्टर के बीच फैक्टरिंग सम्बन्ध बनाने के लिए निर्मित किया गया । सामान्य रूप से विक्रेता क्रेता को वस्तुएं बेच देता है.

फैक्टरिंग के अन्तर्गत फैक्टर इसका भुगतान करता है और फैक्टर को क्रेता उसका भुगतान कर देता है । फैक्टर 80% बीजक का भुगतान तुरन्त कर देता है तथा 20 प्रतिशत का भुगतान वह बाद में करता है ।

फैक्टरिंग सेवा के प्रारम्भ के लिए रिजर्व बैंक ने 1987 में कल्यान - सुन्दरम कमेटी की स्थापना की थी जिसकी रिपोर्ट के आधार पर सार्वजनिक क्षेत्र की दो कम्पनियों ने फैक्टरिंग सेवा प्रारम्भ किया । स्टेट बैंक आफ इण्डिया फैक्टर्स एण्ड कामर्शियल सर्विसेज लिमिटेड जो कि अपना फैक्टरिंग पश्चिमी भारत में कर रही है,की कुल निर्गमित पूँजी 25 करोड रूपये है । दक्षिणी क्षेत्र में कार्य के उत्तरदायित्व को वहन करने वाली कैन बैंक फैक्टर्स लिमिटेड की प्रारम्भिक पूँजी 10 करोड़ रूपये है । उत्तरी क्षेत्र के लिए स्थापित पंजाब नेशनल बैंक और पूर्व में तीन सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक जिसमें इलाहाबाद बैंक यूनाइटेड बैंक आफ इण्डिया और यूको बैंक ने संयुक्त रूप से कार्य करना प्रारम्भ किया । आज के वर्तमान बदलते परिदृश्य में आशा की जा रही है कि फैक्टरिंग सेवा बहुत अच्छी प्रकार से सफलता पूर्वक हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति करता रहेगा ।

आवास वित्त

भारत में आवास की समस्या को देखते हुए तथा आवास क्षेत्र में वित्त की कमी को पूरा करने के लिए वाणिज्य बैंकों ने इन नए क्षेत्रों में प्रवेश किया । स्टेट बैंक आफ इण्डिया कनारा बैंक और पंजाब नेशनल बैंक ने अलग से आवास वित्त के लिए सहायक संस्थाओं की स्थापना की । राष्ट्रीय आवास वित्त नामक एक शीर्ष संस्था की स्थापना करके ये बैंक आवास वित्त की आपूर्ति

कर रहे है । हाल ही में अप्रैल 1992 से हुए शेयर बाजार के घोटाले मे राष्ट्रीय हाउसिंग बैंक के शामिल होने से इस संस्था का अस्तित्व संकट में पड़ गया है ।

यात्रा से सम्बन्धित सहायकियाँ

स्टेट बैंक आफ इण्डिया ने हाल मे घोषणा की कि वह भविष्य में यात्रा से सम्बन्धित वित्तीयन के लिए एक अलग से संस्था की स्थापना करेगा । जो अन्य संस्थाओं की ही भाँति कार्य करेगा ।

वैभिन्नीकरण की रणनीति - विभाग बनाम सहायक संस्थाए

वाणिज्य बैंक ने अपनी लाभदायकता में सुधार के लिए वैभिन्नीकरण और नवोन्मेषीकरण के कार्य कलापों मे प्रवेश किया । परन्तु यह कार्य करना उतना सुगम नही है जितना कि प्रतीत होता है । इसके सफलता पूर्वक संचालन के लिए प्रशिक्षित और कुशल कर्मचारियों की आवश्यकता होती है । कर्मचारियों की विशेषता, उनमें विशेष अभिरूचि का विकास, शाखाओं का पूर्ण कम्प्यूटरीकरण, और स्टाफ का लाभ आधारित कार्य, वैभिन्नीकरण के कार्यों की लागत को कम करने का आधारित दृष्टिकोण, और लाभ को अधिकतम करना वैभिनिकरण कार्यों का मुख्य उद्देश्य है । चूँकि वैभिन्नीकरण गिरती लाभदायकता को सुधारने के लिए ही प्रारम्भ किया गया अत: रिजर्व बैंक निर्देशों के अनुसार बिना किसी प्रकार के कानूनी व्यवधान के केवल मौद्रिक अधिकारियों के निर्देशन पर कम से कम लागत पर संचालित किया जाता है ।

वैभिन्नीकरण कार्यों के लिए अलग से सहायिकियाँ

बहुत से क्षेत्र में जैसे पट्टेदारी फैक्टरिंग और म्युच्युअल फण्ड के सम्बध में रिजर्व बैंक ने निर्देश दिया कि वाणिज्य बैंक द्वारा ये कार्य अलग-अलग विभागों और उपविभागों द्वारा न होकर वाणिज्य बैंक को सहायक संस्था के द्वारा प्रारम्भ किया जाए । यह सुझाव विचारणीय है क्योंकि ये सहायक संस्थाएँ बैंक के ट्रेड यूनियनों के दबाव से मुक्त होगीं और भी ये संस्थाएँ बैंकिंग नियमन प्राविधानों से स्वतंत्र होगी । ये सहायक संस्थाए संरचनात्मक रूप से बहुत जटिल है और यह बाजार के विश्वास पर ही पूर्ण रूप से आधारित है । इन सहायक संस्थानों के विकास से बैंकिंग क्षेत्र में अलग संस्कृति का विकास हो रहा है जिसमें विशेषीकरण, कम्प्यूटराइजेशन, विवेकीकरण व व्यवसायीकरण के साथ उच्च लाभ दायकता एवं जोखिम भी है । ये सहायक संस्थाएँ विशेषीकरण पर आधारित हैं अत: इनकी तीव्र गति को बनाए रखने के लिए कम्प्यूटरीकरण अत्यन्त आवश्यक है ।

इस प्रकार से वाणिज्य बैंक को वैभिन्नीकरण कार्य करने की अनुमति तो प्रदान कर दी गयी है किन्तु बैंक को सीधे अर्थात अपने विभाग के माध्यम से यह व्यवसाय करने की अनुमति नही दी गयी है । बैंक को यह अनुमति दी गयी है कि वे रिजर्व बैंक से पूर्व अनुमति लेकर वैभिन्नीकरण कार्यों के लिए अलग अलग सहायक संस्थाए खोले । सहायक संस्था (अर्थात जिसका कम से कम 51 प्रतिशत शेयर बैंक के पास होता है) वैभिन्नीकरण कार्यों और उससे सम्बंधित कार्य कर सकते है । परन्तु यह सहायक संस्था केवल एक ही वैभिन्नीकरण से सम्बंधित कार्य कर सकती है । बैंक इन सहायक संस्थाओं के शेयरों में अपने

संविभाग से निवेश कर सकते है परन्तु स्वयं ऐसी कम्पनियों का प्रवर्तन नही कर सकते । बैंक द्वारा स्थपित सहायक संस्थाओं के शेयर में उनका निवेश और अन्य सम्बन्धित सहायक संस्थाओं के शेयर में उनके निवेश दोनो मिलकर बैंक की प्रदत्त पूँजी और आरक्षित निधि के 10 प्रतिशत से अधिक नही होना चाहिए ।

कुशलतम स्टाफ की आवश्यकता

नवोन्मेषीकरण की आवश्यकता पर आधारित प्रतियोगितात्मक वातावरण में अत्यधिक कुशल संसाधनों वाली नयी सेवाओं का बाजार अत्यन्त सुकोमल है । इस प्रतियोगितात्मक बाजार में सफलता पूर्वक कार्य करने के लिए कुशल कर्मचारियों की अत्यधिक आवश्यकता है । इस प्रतिभूति बाजार में इनके निर्गमन और लाभदायकता के लिए सही गणना अत्यन्त आवश्यक है । पूँजी और प्रतिभूति बाजार के विभिन्न व्यवसायिक पहलुओं पूँजी बाजार की प्रवृत्ति, पोर्ट फोलियो प्रबन्धन इत्यादि का प्रबन्धन कर्मचारियों की कुशलता पर ही पूर्णत: आधारित है । अन्तराष्ट्रीय वित्तीय बाजार कीमत के नए उपकरणों का प्रयोग और इनका विकास बाजार में भाग लेने वालों की पूर्ण समझदारी से करना चाहिए तथा सभी वित्तीय उपकरणों में विद्यमान जोखिम का पूर्वानुमान लगाकर उनकी उपयुक्त कीमत उत्पादन और सेवाओं के अनुसार लगानी चाहिए । बहुत अधिक प्रतियोगितात्मक बाजार में यदि इनकी लागत को नीचा रखा जाएगा, और इसके साथ ही इनकी गति को तीव्र बनाए रखने के लिए कम्प्यूटर का प्रयोग नि:सन्देह रूप से आवश्यक हैं । इससे इनकी गणना की शुद्धता बनी रहेगी । साथ ही इनके लेन देन की लागत भी नीची होगी । वर्तमान समय में वित्तीय सेवा बाजार में यद्यपि वैभिन्नीकरण कार्य

कुशलता पूर्वक और प्रभावशाली ढंग से तीव्र गति से संचालित नही किए जा रहे है । इसके लिए उपयुक्त रणनीति अपनानी होगी ।

वैभिन्नीकरण वित्तीय सेवा बाजार के कार्य कलाप जैसे मर्चेन्ट बैंकिंग इत्यादि के लिए विशेष कुशलता की आवश्यकता होती है इनके लिए बहुत शीघ्रता से निर्णय लिया जाना आवश्यक होता है जिन व्यक्तियो द्वारा ये निर्णय लिए जाए उन्हे पूँजी बाजार और उत्पादन क्षेत्र की गहन जानकारी अवश्य होनी चाहिए । मर्चेन्ट बैंकिंग फैक्टरिंग म्युच्युअल फण्ड पट्टे पर वित्त पोषण इत्यादि कार्यो को सफलता पूर्वक संचालित करने के लिए विशेष कुशलता अत्यन्त आवश्यक है ।

बैंकिंग उद्योग की गिरती हुई लाभदायकता के कारण वैभिन्नीकरण की आवश्यकता उत्पन्न हुई । महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि वैभिन्नीकरण कार्यो के लिए अत्यन्त शक्तिशाली अर्थ व्यवस्था कार्यात्मक कुशलता वित्तीय सेवा - उद्योगो के बीच बढ़ती हुई तीव्र प्रतियोगिता तथा कीमत घटाने के लिए पड़ने वाले दबाव के कारण इसे अत्यन्त कुशलता पूर्वक करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई । इसी क्रम मे देश मे कम्प्यूटर तकनीक के विकास के परिणाम स्वरूप देश मे कम्प्यूटराइज्ड बैंकिंग अथवा इलैक्ट्रानिक बैंकिंग का विकास हुआ । भारत मे विदेशी बैंके भारतीय बैंक की अपेक्षा कम्प्यूटराइजेशन अधिक विस्तृत क्षेत्र मे करने मे समर्थ है । बैंकिंग उद्योग धीरे धीरे गहन सूचना उद्योग मे परिवर्तित होता जा रहा है । कम्प्यूटराइजेशन के परिणाम स्वरूप वित्तीय सेवाओ की कीमत लगातार घटती जा रही है तथा उनके कार्य करने की दशाओ मे निरन्तर सुधार हो रहा है । अत: कम्प्यूटराइजेशन के परिणामस्वरूप देश भर मे जमाओ

और कोषों को निकालने का कार्य अत्यन्त शीघ्रता से तीव्र गति से हो जाता है इससे बैंक सभी उधार कर्ताओं से हमेशा प्रत्यक्ष सम्बन्ध बनाए रख सकती है। कम्प्यूटराइजेशन नए वित्तीय उपकरणों के विकास की सुविधा प्रदान करता है तथा यह बैंक के उपभोक्ताओं की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी उत्तरदायी होता है तथा इससे बैंक को अपने नियमित उपभोक्ताओं को अधिमान प्रदान करने में सुविधा प्राप्त होती है। अन्तर्राष्ट्रीय टेलिकम्यूनिकेशन सुविधा के बैंकिंग क्षेत्र में प्रसार से इलैक्ट्रानिक फण्ड के स्थानान्तरण की सुविधा बैंकिंग उद्योग में भी धीरे-2 विकसित होती जा रही है जो कि विदेशी करेन्सी के हस्तान्तरण की सुविधा को प्रोत्साहित कर रहा है। भारतीय वाणिज्य बैंके तथा नवेमैशीकृत सहायक संस्थाएं भी कम्प्यूटरकरण के क्षेत्र में अत्यन्त तीव्र गति से प्रवेश कर रहे हैं। 70 और 80 के दशक में कम्प्यूटराइजेशन और टेलिकम्यूनिकेशन तकनीकी के प्रवेश के कारण बैंक कर्मचारियों को इनके प्रयोग के लिए प्रशिक्षित करना पड़ा। बैंकिंग क्षेत्र में इस बदलती हुई तकनीकी के क्षेत्र में प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। अत: कम्प्यूटराइजेशन और इलैक्ट्रानिक बैंकिंग की सफलता पूर्ण रूप से कुशल एवं प्रशिक्षित कर्मचारियों पर ही निर्भर है।

वैभिन्नीकरण की रणनीति

वैभिन्नीकरण कार्यक्रम बैंकों के लिए अत्यन्त आवश्यक एवं लाभदायकता के दृष्टिकोण से आकर्षक प्रतीत होता है अत: इसके सफलता पूर्वक कार्यान्वयन के लिए आवश्यक है कि इस क्षेत्र में छोटी व बड़ी दोनों प्रकार की बैंक इस वित्तीय सेवा बाजार में समान रूप से कार्य करें। बड़ी राष्ट्रीय वाणिज्य

बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के बीच अन्तराष्ट्रीय वित्त बाजार में विद्यमान प्रतियोगिता को देखते हुए छोटे देशी वाणिज्य बैंकें अपनी क्षमता के अनुसार अपने क्षेत्र का चुनाव करके बाजार में सक्रिय भूमिका निभा सकते है जैसे छोटी बैंक कुछ विशिष्ट सेवा केन्द्रों में संकेन्द्रित हो सकते है अथवा छोटी औद्योगिक इकाइयों अथवा उपभोक्ता साख बाजार में कार्य कर सकते है । इन कार्यों के अतिरिक्त ये बैंक परम्परागत क्षेत्र के भी कार्य कर सकते है । वास्तव में ये छोटी वित्तीय संस्थाएँ अपनी योग्यता और वित्तीय उत्पादों के अनुसार अपने कार्य क्षेत्र का चुनाव कर सकती है । ये सहायक संस्थाए छोटी और मध्यम वित्तीय इकाईयों और मध्यम व्यवसायिक फर्मों को वित्तीय सेवा से सम्बंधित सलाह देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं । कुछ बैंक अपनी सहायक विशेषज्ञ वित्तीय संस्थाओं का निर्माण भी कर सकते हैं । जैसे मर्चेन्ट बैंकिंग विनियोग बैंकिंग आवास वित्त फैक्टरिंग इत्यादि । वाणिज्य बैंक यह भी कर सकते है कि अपने संसाधनों को एकत्रित करे तथा अपनी सहायक संस्थाओं के कार्यों को प्रोत्साहित करे । परन्तु यदि वाणिज्य बैंक इन सहायक संस्थाओं के लिए पर्याप्त पूँजी अथवा कर्मचारियों व संसाधनों की प्राप्ति में कठिनाई का सामना करते है तो उन्हे यह कार्य अपनी सहायक संस्थाओं के माध्यम से ही करना होगा ।

सहायक वित्तीय संस्थाओं द्वारा किसी भी प्रकार का वैभिन्नीकरण कार्य अपने हाथ मे लेने से पूर्व यह जानकारी आवश्यक है कि जिन क्षेत्रों में वैभिन्नीकरण कार्यक्रम प्रारम्भ किया जा रहा है . बैंकिंग संस्थाओं को उस बाजार का पूरा ज्ञान हो । वास्तव में बाजार के सम्बंध में पूरी जानकारी

होने पर ही वैभिन्नीकरण कार्य अच्छी प्रकार से सुचारू रूप से संचालित किया जा सकता है ।

वाणिज्य बैंक के अलग अलग विभागों द्वारा भी बैंकिंग के नए कार्य-कलाप किए जा सकते है परन्तु विश्व का अनुभव यह बताता है कि जब सभी वैभिन्नीकरण के कार्यों को अलग अलग संगठनों के द्वारा किया जाता है तो यह अधिक सफल तथा अधिक प्रतिस्पर्धात्मक होता है । अत: भारत में भी वैभिन्नीकरण कार्य सहायक संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है इससे बहुत अधिक लाभ होते हैं -

। नए और नवोन्मेषित क्षेत्र को बाजार योग्य समुचित विकास के लिए इनके कर्मचारियों को विशेष कुशलता आवश्यक है । इनकी संरचना और कर्मचारियों के कार्य परम्परागत बैंकर से बिलकुल अलग होते हैं । इसके लिए व्यवसायिक समन्वय कार्य करने का व्यवसायिक दृष्टिकोण इन्हें तीव्र बाजार-प्रतियोगिता में उतरने योग्य बनाते हैं ।

- इसी प्रकार ये सम्पूर्ण बैंकिंग व्यवसाय के वैभिन्नीकरण सम्बन्धी अलग-2 कार्यों को अधिक कुशलता पूर्वक संचालित कर सकेंगे ।

- यदि इन वैभिन्नीकरण कार्यों को अलग सहायक संस्थाओं के द्वारा किया जाएगा तो इनके कार्यों में ट्रेड यूनियन और अनेक कर्मचारी संगठनों का हस्तक्षेप कम से कम होगा ।
- बड़ी और छोटी वाणिज्य बैंक में प्रतियोगिता इन सहायक संस्थाओं की स्थापना से ही हो सकती है अत: इससे इनमें स्वस्थ्य प्रतियोगिता का जन्म होगा और वे अधिक कुशलतापूर्वक कार्य कर सकेंगे ।

अलग से सहायक गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं की स्थापना से वाणिज्य बैंक को अपने कर्मचारियों को बेरोजगार होने का भय नहीं होगा क्योंकि इससे ये संस्थाएँ खुले बाजार से प्रतिभाशाली व्यक्तियों का चुनाव कर सकते हैं ।

इन वैभिन्नीकरण कार्यों को करने वाली सहायक वित्तीय संस्थाओं को बैंकिंग नियमन अधिनियम और रिजर्व बैंक के विनियोगों के अनुसार वैधानिक तरलता अनुपात और रिजर्व नकदी अनुपात अपने पर नहीं रखना होता है तथा न ही इन संस्थाओं को रियायती ब्याज दर ही प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को ऋण देना होता है अतः ये सहायक वित्तीय संस्थाए अधिक लाभदायकता के साथ कार्य कर सकेगी ।

वैभिन्त्रिकरण रणनीति योजना की आवश्यकता

इन वैभिन्नीकरण सम्बन्धी नयी मेधीकरण कार्यों को प्रारम्भ करने के लिए बैंक को अग्रगामी दूरदर्शी रणनीति अपनानी होगी । इन सहायक संस्थाओं को बाजार के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी होनी चाहिए । कर्मचारियों की भर्ती प्रशिक्षित कर्मचारियों का चुनाव जिनमें नवीमेधीकरण कार्यों को संचालित करने की योग्यता हो उन कर्मचारियों को आवश्यकता पड़ने पर और अधिक ज्ञान प्रदान किया जा सके इन्हे कम्प्यूटरीकरण के सम्बन्ध में कम्प्यूटरहार्ड वेयर और कम्प्यूटर साफ्ट वेयर के कार्यों को करने की कुशलता हो तथा उन कर्मचारियों में नए कार्यों को कुशलता पूर्वक संचालित कर सकने की योग्यता होनी आवश्यक है । कुछ समय पूर्व वाणिज्य बैंक की सहायक संस्थाओं द्वारा मर्चेन्ट बैंकिंग का कार्य बिना किसी पूर्ण अनुभव के एवं बिना विशेषज्ञों के परामर्श के अत्यन्त उत्साह पूर्वक प्रारम्भ किया

गया । इनके द्वारा प्रायोजित कार्यक्रमों से अनेक गलत कम्पनियों ने भी ऋण ले लिया । जिससे बैंकिंग संस्थाएं संकट में पड़ गयी । बैंक द्वारा संकट पूर्ण ऋणों में विनियोजन से जनता का बैंक से विश्वास समाप्त हो सकता है । अतः बैंक अपनी सहायक संस्थाओं के माध्यम से वैभिन्नीकरण कार्यकलापों के सफलता पूर्वक संचालन के लिए कुशल एवं अनुभवी स्टाफ तथा कम्प्यूटर सुविधा से युक्त संगठनात्मक आधार रखते हैं ।

वित्तीय बाजार में वैभिन्नीकरण और नवोन्मेषीकरण कार्यों को तीव्र गति से संचालित करने के लिए वित्तीय सेवा बाजार का विकसित होना आवश्यक है । वित्तीय बाजार के विकास में वाणिज्य बैंक महत्वपूर्ण ढंग से सहयोग करते हैं ।

वैभिन्नीकरण प्रक्रिया के इतने गुणों के बावजूद इनकी कुछ सीमाएँ भी हैं । सर्व प्रथम यदि इन सहायक वित्तीय संस्थाओं को किसी अभिभावक बैंक के साथ जोड़ दिया जाए तो भय है कि ये सहायक वित्तीय संस्थाएं इनके आदेशों का उल्लंघन भी कर सकते हैं, दूसरे इन सहायक संस्थाओं द्वारा अधि व्यापार करने का भय है क्योंकि इनकी स्थापना निम्न पूँजी आधार पर होती है । अतः इस सन्दर्भ में सावधानी पूर्वक कार्य करना होता है ।

इस प्रकार से बैंक अब कुछ अनछुए क्षेत्रों जैसे मर्चेन्ट बैंकिंग पट्टेदारी, साहस पूँजी, फैक्टरिंग, पोर्ट फोलियो एवं विनियोग प्रबन्धन उपभोक्ता वित्तीया इत्यादि क्षेत्रों में अपनी सहायक संस्थाओं के माध्यम से प्रवेश कर रहे हैं । इस प्रकार वाणिज्य बैंक अब परम्परागत बैंकिंग से विनियोग बैंकिंग की तरफ जा रहे हैं जिसकी प्रक्रिया सहायक संस्थाओं के माध्यम से प्रारम्भ की गयी है । इस प्रकार से नवी

नियोजन के सन्दर्भ में नरसिम्हम कमेटी का मत है कि पिछले दशक से मुद्रा एवं पूंजी बाजार में वैविध्यीकरण का तेजी से प्रसार हुआ । कमेटी के अनुसार पिछले दशक में पूंजी बाजार के कार्यों में नवीन वित्तीय उपकरणों एवं नवीन वित्तीय सेवा बाजार के प्रारम्भ में बहुत महत्वपूर्ण वृद्धि हुई । पूंजी बाजार के निर्गमों और उनके मूल्यों पर सरकार का कठोर नियंत्रण है । इसकी यह प्रक्रिया भारतीय प्रतिभूति और विनियोग बोर्ड द्वारा संपादित होती है । अत: कमेटी का मत है कि वर्तमान अवरोध पूर्ण वातावरण न तो नवीन आर्थिक बदलाव होता पाएगा और न ही पूंजी बाजार का समुचित विकास हो पाएगा ।

कमेटी पूंजी बाजार में पूर्ण स्वतंत्रता तथा इसके कार्य करने के सन्दर्भ में पूरी छूट देने के पक्ष में है । इसके अन्तर्गत किसी भी संस्था पर भारतीय प्रतिभूति विनियम बोर्ड में निर्गमन के लिए किसी प्रकार की रोक नहीं होनी चाहिए। निर्गमन करने वाले को वित्तीय उपकरण की प्रवृत्ति का निर्णय करने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए । भारतीय प्रतिभूति विनियम बोर्ड विनियोगियों की रक्षा के लिए उपयुक्त निर्देशन प्रदान करता है अत: नियंत्रित पूंजी निर्गमन के स्थान पर स्वतंत्र पूंजी निर्गमन होना चाहिए साथ ही पूंजी बाजार में विदेशी विनियोगियों को भी प्रोत्साहित करना चाहिए साथ ही विदेशी पूंजी को आकर्षित करने के लिए नवोन्मेषीकृत ऋणों की उपकरणों को प्रोत्साहित करना होगा ।

कमेटी ने सहायक वित्तीय संस्थाओं के सन्दर्भ में सुझाव दिया कि इन सहायक वित्तीय संस्थाओं की वित्तीय व्यवस्था रिजर्व बैंक के सहयोग से कुशलता पूर्वक होनी चाहिए । केन्द्रीय बैंक का इन सहायक संस्थाओं पर प्रत्यक्ष नियंत्रण होगा । कमेटी ने सुझाव दिया कि इन संस्थाओं के उपयुक्त निर्देशन पूंजी पर्याप्तता, पूंजी ईक्विटी अनुपात, सन्देहजनक ऋणों के विरुद्ध ऋण उत्पादक परिसम्पत्ति रक्षा, वित्तीय नीतियों और खातों के लिए उपयुक्त नीति तथा इन आवश्यकताओं के पूर्ति करने और परिसम्पत्तियों के मूल्यांकन की व्यवस्था आवश्यक है ।

षष्ठम अध्याय - निष्कर्ष एवं सुझाव

निष्कर्ष एवं सुझाव

बृहत बीस व्यापारिक बैंकों के दो चरणों में राष्ट्रीयकरण के बाद भारतीय बैंकिंग उद्योग का 90 प्रतिशत भाग सार्वजनिक क्षेत्र में आ गया है । वर्तमान समय में बैंक देश की सम्पूर्ण आर्थिक संरचना में प्रविष्ट हो चुके है । देश के सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए बनायी गयी योजनाओं को लागू करने में बैकों का उल्लेखनीय योगदान रहा है । बैंकों ने राष्ट्रीयकरण के उद्देश्यों को न केवल प्राप्त किया है बल्कि लक्ष्यों से अधिक कार्य करके नई ऊँचाइयों को छुआ है । आज बैंकों की लगभग 60 प्रतिशत शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में तथा कुल ऋण का एक चौथाई भाग उपेक्षित क्षेत्रों में है । बैंक जहाँ एक ओर ग्रामीण क्षेत्रों को दूर-दराज इलाकों में पहुँच कर जनता को बैंकिंग से परिचित करा रहे हैं, वहीं आधुनिकबैंकिंग के नए क्षेत्रों में प्रवेश करके देश की आर्थिक गतिविधियों को महत्वपूर्ण सहयोग दे रहे हैं ।

बैंक विगत में मात्र लाभ कमाने के संस्थान के रूप में कार्यरत थे जिस कारण इनकी लाभप्रदता पर विशेष ध्यान दिया जाता था । परन्तु राष्ट्रीयकरण के पश्चात बैंकों के दृष्टिकोण तथा कार्य शैली में परिवर्तन आने से पिछले वर्षों जब बैंकों की लाभ-प्रदता में गिरावट आयी तो यह माना गया कि ऐसा परिचालन लागत में वृद्धि तथा सामाजिक बैंकिंग के कारण हो रहा है । वर्तमान सामाजिक बैंकिंग का उद्देश्य लाभ कमाना नहीं बल्कि जनता को बुनियादी सुविधायें उपलब्ध कराना होता है, इन ऋणों पर अत्यन्त निम्न ब्याज के कारण बैंक के कुल आय में निरन्तर कमी होती जा रही है ।

राष्ट्रीयकरण के बीस वर्ष के अनुभव से सामाजिक आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप बैंकिंग प्रणाली के विकास की नीति की कुछ त्रुटियां और बैंकिंग व्यवस्था पर दबाव सामने आया है । राष्ट्रीयकरण के पहले दशक में मुख्य रूप से बैंक की नयी शाखाएं खोलेन पर ध्यान दिया गया ताकि सभी गाँवों के आस-पास बैंकिंग की सुविधा हो जाए, परन्तु अध्ययन के दौरान पाया गया कि बुनियादी सुविधाओं का प्रबन्ध किए बिना ही प्रारम्भ में नयी शाखाएं खोलने का सिलसिला चलता रहा, जिससे बैंक के स्थापना व्यय में वृद्धि होती गई और उनका पूंजीगत आधार कमजोर होता गया है ।

स्वायत्ता की कमी के कारण बैंक समाजार्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति पर अधिक बल देते हैं और अनेक बार बैंकिंग के मूलभूत सिद्धान्तों से परे हटते जाते हैं । बैंक अपने आंकड़ों का प्रकाशन व्यष्टि स्तर पर न करके समष्टि स्तर पर करते हैं, अत: यह ज्ञात करना अत्यन्त कठिन होता है कि कौन सी शाखा अधिक लाभ में कार्य कर रही है । अत: प्रकाशित आंकड़ों के आधार पर बैंक विशेष की कुशलता एवं लाभदा-यकता का पता लगाना बहुत कठिन कार्य है । इस प्रकार से बैंक की लाभदायकता में निरन्तर गिरावट आने का कारण है बैंकों की अनेक आन्तरिक व बाह्य समस्याएं, जिनके लिए विभिन्न परिस्थितियां उत्तरदायी हैं । अध्ययन के दौरान कुछ तथ्य उभर कर सामने आए हैं, जो बैंक लाभदायकता गिरने के लिए उत्तरदायी है ।

बैंक के पास आवश्यक रूप से कुशल एवं प्रशिक्षित कर्मचारियों की कमी है,

जिससे इनके कार्यों का संचालन समुचित रूप से नहीं हो पा रहा है । ग्रामीण क्षेत्र की बैंकों में अधिकांश कर्मचारी ऐसे हैं जिन्हें कृषि सम्बन्धी गतिविधियों एवं ग्रामीण समस्याओं की जानकारी नहीं है । अन्य क्षेत्र के कर्मचारियों की अपेक्षा बैंकिंग कर्मचारियों को अधिक वेतन तथा अन्य सुविधाएं मिलती हैं, परन्तु बैंक के कर्मचारियों की ग्राहक सेवा में निरन्तर गिरावट आयी है । बैंकों का कार्य भाग उनके कर्मचारियों की संख्या के अनुपात में बहुत अधिक बढ़ गया है । ग्रामीण शाखाओं में तो स्थिति और भी दयनीय है, जहाँ कई स्थानों पर एक कर्मचारी की शाखा है तथा नियन्त्रण को कोई व्यवस्था नहीं है । अधिकारियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण भी बैंकों की कार्य कुशलता बहुत जल्दी-जल्दी पदोन्नतियों ने भी बैंकों में मानव शक्ति की गुणवत्ता को बहुत प्रभावित किया है । बैंक निर्देशकों व प्रबन्धकों की गुणवत्ता में बहुत तेजी से कमी आयी है । सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक अधिकारी अपने निर्णय लेने के लिए पूरी तरह से स्वतन्त्र नहीं होते हैं तथा अपने कार्यों के लिए जवाबदेह भी नहीं होते, जबकि निजी क्षेत्र के बैंक अधिकारी अपने प्रत्येक कार्य के लिए जवाबदेह होते हैं जिससे सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक की लाभदायकता में निरन्तर गिरावट आ रही है ।

पिछले दो दशकों में बैंकिंग कार्य क्षेत्र में तो कई गुना वृद्धि हुई है परन्तु बैंकों के मशीनीकरण एवं कम्प्यूटरीकरण में बहुत धीमी गति से वृद्धि हुई है, जिससे कि बैंक ग्राहक सेवा, सूचनाओं की प्राप्ति आदि कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई हैं । बैंकों में कार्य अत्यन्त धीमी गति से होने के कारण बैंक की उत्पादकता एवं कुशलता प्रभावित

हुई है ।

जिस गति से बैंक शाखाओं का विस्तार हुआ है उस गति से उनकी जमा धनराशि तथा ऋण मात्रा में वृद्धि नहीं हुई है । बैंक का शाखा विस्तार कार्यक्रम अत्यन्त खर्चीला है तथा वहाँ परिचालन लागत भी बहुत आ रही है, जिससे अनेक शाखाएं घाटे में चल रही हैं । कई स्थानों पर बैंक को शाखाएं अनावश्यक रूप से खुली हुई है, जिससे बैंक लागत में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है । बैंकों के कार्य क्षेत्र ग्राहक संख्या में वृद्धि ने बैंकों की परिचालन लागत बहुत अधिक बढ़ा दी है तथा स्टेशनरी, संचार स्थानान्तरण आदि के व्यय बैंकिंग कारोबार के साथ-साथ कई गुना बढ़ गये हैं ।

बैंक के कर्मचारियों के वेतन भत्ते इत्यादि में वृद्धि से बैंक के स्थापना व्यय में तीव्र गति से वृद्धि हुई है । इन व्ययों पर बैंक का कोई नियन्त्रण नहीं होता है, क्योंकि इनसे सम्बन्धित निर्णय बैंकिंग समूह द्वारा लिए जाते हैं । 80 के दशक में बैंक के लाभ में बहुत अधिक उतार-चढ़ाव का मुख्य कारण बैंक कर्मचारियों के वेतन व भत्ते में वृद्धि के कारण स्थापना व्यय में निरन्तर वृद्धि था । 1984 में कुल कार्यकारी कोष के प्रतिशत के रूप में स्थापना व्यय का भाग सबसे अधिक था । लेकिन इसके पश्चात इसमें निरन्तर गिरावट आने लगी ।

भारतीय सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक वर्तमान समय में पूंजी की कमी का सामना कर रहे हैं जिसका मुख्य कारण बैंक परिसम्पत्तियों की रुग्ण स्थिति है । बैंक के

बढ़ते जा रहे ओवर ड्यू तथा खराब ऋणों की क्षतिपूर्ति बैंक को अपने कोष से करनी है, जिससे बैंक की पूँजीगत स्थिति दिन-प्रतिदिन खराब हो गयी है । परन्तु उपरोक्त कारणों से भी अधिक महत्वपूर्ण बैंक परिसम्पत्तियों की संरचना व दयनीय गुणवत्ता उनकी वर्तमान स्थिति के लिए जिम्मेदार दिखायी देते हैं ।

वाणिज्य बैंक जोकि विभिन्न प्रकार की सेवाएं प्रदान करने वाला मूलत: एक व्यवसायिक उद्यम हैं । उसे इस उद्यम को कुशलतापूर्वक चलाते रहने के लिए आवश्यक है कि वह अपने कोषों की प्राप्ति व उनका उपयोग अच्छी प्रकार से करे । बैंक के दीर्घ-काल तक कुशलतापूर्वक संचालन के लिए इस बात की आवश्यकता है कि इन कोषों का प्रयोग इस प्रकार से किया जाए कि बैंक तरलता एवं लाभदायकता में सामन्जस्य स्थापित कर सकें । हाल के वर्षों में वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्ति पोर्टफोलियों की गुणवत्ता में गिरावट आयी है । बैंक द्वारा जुटाई जाने वाली जमाराशियों का 53·5 प्रतिशत संविधि के अन्तर्गत आरक्षित तरलता निधि अनुपात (38·5 प्रतिशत) तथा रिजर्व नकदी अनुपात(15 प्रतिशत) के रूप में पहले से ही ले लिया जाता है । शेष 46·5 प्रतिशत निधि में से भी लगभग 28 प्रतिशत प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को रियायती ब्याज दर पर देना होता है । इसके अतिरिक्त बैंक को अपनी निधियों का एक बड़ा भा खाद्यान्नों, कपास पटसन, उर्वरकों की सार्वजनिक वसूली, निर्यात आदि के वित्त पोषण के लिए भी देना होता है । कृषि व ग्रामीण विकास के लिए वित्त जुटाने का सामाजिक व आर्थिक उद्देश्य व लाभ तो सर्वविदित है ही, परन्तु उनके साथ जुड़ी परिसम्पत्तियों की गुणवत्ता में गिरावट पर प्राय: ध्यान नहीं दिया जाता है । इस प्रकार से बैंक के

पास अपने लाभदायक विनियोगों के लिए बहुत कम क्षेत्र बचता है । वाणिज्य बैंक परि-सम्पत्तियों की वास्तविक स्थिति इस अध्ययन द्वारा इस प्रकार उभर कर आयी है---

नकदी प्रबन्धन

वाणिज्य बैंक के रिजर्व नकदी अनुपात में राष्ट्रीयकरण के पश्चात निरन्तर वृद्धि आती गयी है, क्योंकि सरकार द्वारा रिजर्व नकदी अनुपात कोष का प्रयोग मुद्रा स्फीति नियन्त्रण के एक उपकरण के रूप में किया जाने लगा । रिजर्व नकदी अनुपात जो 1951 में 10•99 प्रतिशत था 1969 में 6•65 प्रतिशत हो गया । राष्ट्रीयकरण के पश्चात् रिजर्व नकदी में वृद्धि आने लगी और यह 6•65 प्रतिशत से बढ़कर 20 वर्षों में अर्थात् 1990 में 15•5 प्रतिशत हो गया । इसका मुख्य कारण रिजर्व बैंक द्वारा रिजर्व नकदी अनुपात में निरन्तर वृद्धि होना है ।

माँग-मुद्रा

भारत में माँग-मुद्रा परिसम्पत्ति का अनुपात आदर्श अनुपात 7 प्रतिशत से 12 प्रतिशत से काफी कम रहा है । 1951 में माँग-मुद्रा परिसम्पत्ति का अनुपात कुल बैंकिंग परिसम्पत्तियों को केवल 1•26 प्रतिशत था, जो 1960 में 2•21 प्रतिशत हो गया । 1970 में यह कम होकर •69 प्रतिशत हो गया । राष्ट्रीयकरण के पश्चात के वर्षों में भी माँग-मुद्रा अनुपात में विशेष वृद्धि नहीं हुई तथा यह 2 प्रतिशत ही रही । माँग-मुद्रा अनुपात में इतनी अधिक कमी का मुख्य कारण हमारी अर्थव्यवस्था की विकास-शील प्रवृत्ति और बढ़ता साख-नियन्त्रण है ।

बिल परिसम्पत्ति

भारत में बिल बाजार के अव्यवस्थित होने के कारण स्वतन्त्रता के पश्चात 1951 में कुल परिसम्पत्तियों में बिलों का प्रतिशत बहुत कम था । 1951 में कुल वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों में बिलों का भाग 2•67 प्रतिशत ही था । इसके पश्चात के वर्षों में बिल परिसम्पत्ति की संरचना में बहुत अधिक परिवर्तन आए हैं । 1956 में कुल परिसम्पत्तियों में बिलों का हिस्सा 15•65 प्रतिशत हो गया, जिसमें से देशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत कुल बिलों का 67•78 प्रतिशत तथा विदेशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 32•22 था । 1970 में वाणिज्य बैंक का बिल परिसम्पत्ति अनुपात बढ़कर 20•75 प्रतिशत हो गया । इसमें से देशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 82•85 तथा विदेशी खरीदे गए एवं भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 17•15 प्रतिशत रहा । बिल बाजार में इतने बड़े परिवर्तन का मुख्य कारण भारत सरकार द्वारा वाणिज्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण एवं बिल बाजार का पूर्णतया संगठित क्षेत्र में प्रवेश करना था । 1980 में कुल परिसम्पत्तियों में बिलों का अनुपात घटकर 8•59 प्रतिशत रह गया, इसमें देशी खरीदे गए बिलों का अनुपात 30•08 प्रतिशत देशी भुनाए गए बिलों का प्रतिशत 18•9 तथा विदेशी खरीदे गए बिलों का प्रतिशत 17•93 व विदेशी भुनाए गए बिलों का प्रतिशत मात्र 6•27 प्रतिशत रहा । इसके पश्चात के वर्षों में बिल परिसम्पत्ति अनुपात में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ । 1970 में कुल परिसम्पत्तियों में बिलों का अनुपात 6•23 प्रतिशत

रहा, इसमें देशी खरीदे गए बिलों का अनुपात 33•02 प्रतिशत देशी भुनाए गए बिलों का अनुपात 28•3 प्रतिशत हो गया व विदेशी खरीदे गए बिलों का प्रतिशत 26•32 तथा विदेशी भुनाए गए बिलों का अनुपात 12•10 प्रतिशत रहा । इस प्रकार से कुल बिलों में देशी खरीदे गए बिलों का प्रतिशत सबसे अधिक रहा है, जिससे बिल परिसम्पत्ति की गुणवत्ताप्रभावित हुई है । इन बिलों में अधिकांश बिल व्यापारिक नहीं है तथा विदेशी बिलों का प्रतिशत कम रहा है ।

निवेश परिसम्पत्ति

वाणिज्य बैंक के निवेश का भाग 1951 में कुल परिसम्पत्तियों का 35•26 प्रतिशत था । 1960 में वैधानिक तरलता अनुपात बढ़कर 40•6 प्रतिशत हो गया । यह परिवर्तन वाणिज्य बैंक द्वारा पूँजी बाजार के विकास में उपयोगी एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के कारण हुआ, परन्तु इसके बाद के वर्षों में निवेश अनुपात में निरन्तर गिरावट आयी और यह 1970 में घटकर मात्र 22•6 प्रतिशत रह गया । 1975 के पश्चात से वाणिज्य बैंक के कुल निवेश अनुपात में काफी तीव्र गति से वृद्धि हुई । 1980 में कुल परिसम्पत्तियों में निवेश का भाग 33•4 प्रतिशत हो गया, जिसमें सरकारीप्रतिभूतियों में निवेश का अनुपात 69•9 प्रतिशत तथा अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों में निवेश अनुपात 30•1 प्रतिशत रहा । 1990 में कुल बैंकिंग परिसम्पत्तियों मे निवेश का भाग 39•1 प्रतिशत रहा । इन निवेशों पर सरकार सहायिकियों जैसी ब्याज दर प्रदान करती है, जिससे कि बैंक की आय में गिरावट आयी है । देश का केन्द्रीय बैंक वैधानिक तरलता अनुपात का प्रयोग मुद्रा स्फीति को नियन्त्रित करने के एक उपकरण के रूप में करने लगा

लगा है, लेकिन वर्तमान समय में इस उपकरण का प्रयोग राजकोषिय नीति के एक वित्तीय उपकरण के रूप में बजट के चालू खाते के घाटे को पूरा करने के लिए किया जाने लगा है, जिससे कि मुद्रा स्फीति में आवश्यक रूप से वृद्धि हो रही है । 1985 में प्रस्तुत सुखमय चक्रवर्ती कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में वैधानिक तरलता अनुपात को कम करने तथा इन पर दी जाने वाली ब्याज दर में वृद्धि की संस्तुति की थी । 1991 में प्रस्तुत नरसिम्हम् कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि इसीवर्ष से शुरूआत करते हुए पाँच वर्षों में चरण बद्ध रूप से बैंकों को वैधानिक तरलता अनुपात को 39 प्रतिशत से घटाकर 25 प्रतिशत पर लाना चाहिए ।

ऋण परिसम्पत्ति

1951 में वाणिज्य बैंक की कुल परिसम्पत्तियों का 49•73 प्रतिशत भाग ऋण परिसम्पत्ति में विनियोजित किया गया । इसमें से कुल ऋणों का 35•5 प्रतिशत उद्योग क्षेत्र को, 52•8 प्रतिशत वाणिज्य क्षेत्र को, 2•2 प्रतिशत कृषि क्षेत्र को, 7•3 प्रतिशत व्यक्तिगत एवं व्यवसायिक क्षेत्र को तथा 4•2 प्रतिशत अन्य दूसरे क्षेत्रों में विनियोजित किया गया । 1961 में कुल बैंकिंग परिसम्पत्तियों का 48•16 प्रतिशत ऋण परिसम्पत्ति में विनियोजित किया गया । इन वर्षों में औद्योगिक क्षेत्र को दिए जाने वाले ऋणों में निरन्तर वृद्धि होती रही, तथा यह बढ़कर 50•8 प्रतिशत हो गया । इस वर्ष कुल ऋणों में वाणिज्य ऋण 28•6 प्रतिशत, कृषि ऋण •4 प्रतिशत, अनुपात मात्र 6•7 प्रतिशत रहा ।

1969 में वाणिज्य बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात प्राथमिकताओं में परिवर्तन से ऋण परिसम्पत्ति की संरचना में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए । 1970 में कुल बैंकिंग परिसम्पत्तियों में ऋण परिसम्पत्ति का भाग 49•9 प्रतिशत था, जिसमें 63•5 प्रतिशत भाग उद्योग क्षेत्र को 17•3 प्रतिशत भाग वाणिज्य क्षेत्र को, 7•1 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र को तथा 12•1 प्रतिशत भाग अन्य दूसरे क्षेत्र को प्रदान किया गया । इस प्रकार से प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को कुल ऋणों का 22•75 प्रतिशत भाग प्रदान किया गया । 1980 में कुल बैंकिंग परिसम्पत्तियों का लगभग 43•99 प्रतिशत भाग ऋण परिसम्पत्ति में विनियोजित किया गया । कुल ऋणों का 48•8 प्रतिशत भाग उद्योग क्षेत्र को, 5•6 प्रतिशत व्यक्तिगत एवं व्यवसायिक क्षेत्र को एवं 10•2 प्रतिशत भाग अन्य क्षेत्रों को विनियोजित किया गया । 1980 में कुल ऋणों का 32•4 प्रतिशत भाग प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को प्रदान किया गया । कुल बैंकिंग परिसम्पत्तियों में ऋणों का [illegible] होता जा रहा है । 1990 में कुल बैंकिंग परिसम्पत्तियों में ऋणों का भाग 36•84 प्रतिशत रह गया, जिसमें से 44 प्रतिशत भाग प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को प्रदान किया गया । प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के ऋण सूचकों का में गत 20 वर्षों में लगभग 40 गुना वृद्धि हुई और इसका सूचकांक 20 वर्षों में बढ़कर 3904 अंक तक पहुँच गया जबकि कुल ऋण सूचकांक में अपेक्षाकृत धीमी गति से वृद्धि हुई तथा यह 1990 में 2969•85 ही रहा ।

वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों की संरचना में आए परिवर्तन का विवेचन करने से स्पष्ट है कि सार्वजनिक क्षेत्र के वाणिज्य बैंक परिसम्पत्तियों की लाभदायकता

में गिरावट का मुख्य कारण बैंक द्वारा धारित की जाने वाली लाभदायक परिसम्पत्तियों की मात्रा में कमी होना है । सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की सबसे लाभदायक ऋण परिसम्पत्ति का भाग जोकि 1970 में 53•77 प्रतिशत था, कम होकर 1990 में 38•88 प्रतिशत हो गया, जबकि विश्व में सबसे अधिक लाभदायकता प्राप्त करने वाले वाणिज्य बैंकों में से 2 जापानी बैंकों की परिसम्पत्तियों में ऋणों का भाग 1988 में 62•8 प्रतिशत था । इसी क्रम में भारतीय वाणिज्य बैंकों को अपने कुल ऋण परिसम्पत्ति का 40 से 45 प्रतिशत भाग प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को रियायती ब्याज दर पर प्रदान किया जा रहा है । इन ऋणों में वसूली की समस्या अत्यन्त गम्भीर है । वसूली न हो पाने से बैंकों के कोष अनुत्पादक परिसम्पत्तियों में फँस जाते हैं तथा उनके संसाधनों के अवरुद्ध हो जाने से उनके विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ता है । समय-समय पर ऋण माफी की घोषणाओं ने बैंकों के भविष्य को खतरे में डाल दिया है । वर्तमान समय में कुल ऋणों का लगभग 13 प्रतिशत ओवर ड्यू है, जिसमें से 53 प्रतिशत भाग प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र का है । वसूली की समस्या कानूनी प्रक्रियाओं की जटिलता के कारण भी और अधिक विषम हुई है, क्योंकि कानूनी प्रक्रिया इतनी लम्बी एवं खर्चीली है कि बैंक कानूनी पचड़ों में पड़ने में अत्यन्त कठिनाई अनुभव करते हैं ।

वर्तमान समय में बैंक को पूँजी बाजार के विकास के कारण तीव्र प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है । बचत कर्ता अब बचत का निवेश करने के लिए कम्पनी के शेयरों तथा सार्वजनिक व निजी क्षेत्र की सावधि जमाओं मे जमा कराना

अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि उसे यहाँ अधिक वित्तीय सुविधाएँ तथा लाभ उपलब्ध है । शेयर तथा सरकारी प्रतिभूतियों पर कर राहत भी दी जाती है । इस कारण व्यक्तिगत जमाओं को बैंक में बनाए रखना कठिन होता जा रहा है । अब यदि बैंक जमाओं को आकर्षित करने के लिए बाजार में प्रतिस्पर्धा के आधार पर ऊँची ब्याज दरें प्रदान करते हैं तो उन्हें अपनी परिसम्पत्तियों की गुणवत्ता व संरचना पर ध्यान देना होगा, जिससे वह सुरक्षित एवं सुदृढ़ आधार बना सकें और इस नयी चुनौती को स्वीकार कर सकने की सामर्थ्य रख सकें ।

मिश्रित जमाओं के लम्बी परिपक्वता अवधि वाली समय जमाओं में परिवर्तित होने से बैंक लागत ऊँची होती गयी है, जबकि आय अर्जित करने वाली परिसम्पत्तियों में निम्न आय देने वाली परिसम्पत्तियों का औसत बढ़ता गया है और रियायती ऋणों के बढ़ते अनुपात के कारण बैंक परिसम्पत्तियों की लाभदायकता प्रभावित हुई है ।

संसाधनों के आवंटन के लिए बैंक के पास कोई व्यवस्थित एवं नियोजित संरचना नहीं है । प्रत्येक बैंक के ऋण पोर्टफोलियों का प्रबन्धन अलग-अलग तरह से है । संसाधनो का आवंटन बैंक के बजट उपलब्धियों के आधार पर निर्धारित किया जाता है । प्रत्येक क्षेत्र में जोखिम के पूर्वानुमान के अभाव के कारण बैंक का साख जोखिम बहुत अधिक हो गया है, जोकि बैंक की आय उत्पादक परिसम्पत्तियो को रुग्ण बनाता है ।

<u>यह परिकल्पना कि वर्तमान समाजार्थिक</u> उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दिए

वाले रियायती ब्याज दर के ऋण से बैंक परिसम्पत्तियों के जोखिम में वृद्धि होती है तथा उनकी लाभदायकता में कमी आती है आंशिक रूप से सत्य है अर्थात् लाभदायकता गिरने का यही एक मात्र कारण नहीं है । यह बात इस तथ्य से स्पष्ट होती है कि निजी क्षेत्र के बैंक भी प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को ऋण प्रदान कर रहे हैं, परन्तु उनकी लाभदायकता इतनी प्रभावित नहीं हुई है ।

यह परिकल्पना कि बैंक की खराब होती वित्तीय स्थिति के लिए निरन्तर बढ़ते रिजर्व नकदी अनुपात एवं वैधानिक तरलता अनुपात जिम्मेदार है, बहुत हद तक सत्य है क्योंकि इन परिसम्पत्तियों से बैंक को बहुत कम आय प्राप्त होती है । परन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण है उनकी परिसम्पत्तियों की रूग्ण स्थिति ।

बैंक परिसम्पत्तियों में सबसे लाभदायक ऋण परिसम्पत्तियों का अधिकांश भाग रूग्ण स्थिति में है जिसका मुख्य कारण ऋणों की अदायगी न होना, बैंक कर्मचारियों द्वारा की जाने वाली धोखा-धड़ी प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के ऋणों के पीछे पर्याप्त धरोहर न रखा जाना, वैभिन्नित ब्याज दर योजना के अर्न्तगत 4 प्रतिशत की न्यूनतम ब्याज दर पर कुल ऋणों का 1 प्रतिशत देना इत्यादि है । वर्तमान समय में कुल ऋणों का लगभग 13 प्रतिशत ओवर ड्यू है जिसमें से 53 प्रतिशत ऋण प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के हैं । इस प्रकार से वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों की लाभदायकता में गिरावट का मुख्य कारण है ऋण परिसम्पत्ति की रूग्ण स्थिति ।

वाणिज्य बैंकिंग परिसम्पत्तियों की संरचना में सुधार के लिए कुछ सुझाव

यदि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक विकास की भूमिका को अच्छी प्रकार से निभाते है तो उनके लिए लाभदायक विनियोग बहुत आवश्यक है, क्योंकि तभी वे विकास कार्यों के लिए संसाधनों का संव्यूहन व दिशा निर्देशन कर सकेंगे।

1- निजी क्षेत्र के बैंक की भाँति सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक को भी अपनी श्रेष्ठ ग्राहक सेवा देकर क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप ऋण उपलब्ध करवा कर बैंक अधिकारियों को अपने कार्यों के लिए अपने अंश धारियों के प्रति जिम्मेदार ठहराकर स्वयं जबाबदेह होकर एवं प्रभावशाली बाजारणीय रणनीति अपना कर अपनी लाभदायकता में वृद्धि करनी चाहिए। इसी प्रकार से सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको को भी वसूली कार्य में सुधार करके, ऋण आवंटन से पूर्व ऋण लेने वाले व्यक्ति के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करके ही ऋणों का आवंटन करके बैंक ऋण के वितरण में विद्यमान भ्रष्टाचार को समाप्त करके इन समस्याओं को हल करना चाहिए। इसी प्रकार से निजी क्षेत्र के बैंक की भाँति ही सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको में भी जो अधिकारी या कर्मचारी भ्रष्टाचार में लिप्त पाए जाए उनके खिलाफ तुरन्त कठोर कार्यवाही होनी चाहिए। यह बहुत दृढ़ता से लागू करने की आवश्यकता है कि भ्रष्ट कर्मचारियों को किसी प्रकार का संरक्षण न प्राप्त हो।

2---- वाणिज्य बैंक अपने ऋण पोर्टफोलियों में सुधार करके लाभदायकता में वृद्धि कर सकते है। ऋण पोर्ट फोलियो में परिमाणात्मक एवं परिणामात्मक दोनो प्रकार की रूकावटे है। इसमें प्रशासनिक ब्याज दर संरचना में कुछ ढील देने की आवश्यकता है। सुखमय चक्रवर्ती कमेटी [1985] की सिफारिशों को लागू करना समय की माँग बन गयी है। नरसिम्हम कमेटी [1991] ने भी अपनी सिफारिशों में कहा है कि वर्तमान ब्याज दर संरचना का विवेकीकरण होना चाहिए तथा ब्याज दरों का इस प्रकार से नियमन करना चाहिए कि वे बाजार स्थितियों को परिलक्षित कर सकें।

1- See- "The Financial System" Report by M. Narasimham- A NABHI PUBLICATION NEW DELHI-1992, Page- 38-39.

----- वैधानिक तरलता अनुपात एवं रिजर्व नकदी अनुपात में कमी लानी चाहिए, जिससे बैंक की लाभदायक परिसम्पत्तियों की मात्रा में वृद्धि हो सके । नरसिम्हम् कमेटी ने भी अपनी संस्तुतियों में कहा है कि इसी वर्ष से शुरूआत करते हुए पाँच वर्ष की अवधि में चरण बद्ध रूप से बैंकों के वैधानिक तरलता अनुपात को 38•5 प्रतिशत से घटाकर 25 प्रतिशत एवं आरक्षित नकदी अनुपात को घटाकर 10 प्रतिशत के स्तर पर लाया जाना चाहिए । वैधानिक तरलता अनुपात पर प्रदान की जाने वाली सहायिकियों जैसी ब्याज दर में कुछ वृद्धि की जानी चाहिए, जिससे बैंक के आगम में वृद्धि हो सके ।

4- वित्तीय सेवा बाजार में आए महत्वपूर्ण परिवर्तन से वित्तीय सेवा बाजार में एक ऐसे क्षेत्र का निर्माण हो रहा है, जो वित्तीय मध्यस्थता की प्रवृत्ति को दूर कर रहा है और परम्परागत वित्तीय संस्थानों का विकास बहुसेवा वित्तीय बाजार के रूप में कर रहा है । अत: बैंक को प्रतिस्पर्धा में खरा उतरने के लिए नवोन्मेषीकरण कार्यों जैसे मर्चेन्ट बैंकिंग, म्युच्युअल फण्ड स्कीम, वाणिज्य पत्र फैक्टरिंग जोखिम पूँजी में वृद्धि, आवास वित्त , आफ बैलेन्स शीट बैंकिंग, पट्टेदारी आदि कार्यों को अपनाना चाहिए । परन्तु यदि संचालन व संगठन के दृष्टिकोण से इन कार्यों को एक संस्था में ही मूल रूप से मिला दिया जाये तो वाणिज्य बैंक के मूलभूत सिद्धान्तों से परे हटना होगा और बैंकिंग अपनी मौलिक मूलधारा खो बैठेगें । ऐसी स्थिति में उनकी सुरक्षा व लाभदायकता का सन्तुलन अलग-अलग करके जानना व निर्धारित करना अत्यन्त कठिन हो जाएगा । अत: मेरा सुझाव है कि बैंक इन कार्यों को सहायक संस्थाओं के माध्यम से करें ।

5- अधिक मजबूत संगठनात्मक नियन्त्रण श्रम शक्ति का अधिकाधिक प्रभावकारी उपयोग तथा सेवा क्षेत्र दृष्टिकोण अपनाकर श्रम की उच्चतर उत्पादकता को सुनिश्चित किया जा सकता है । इसी प्रकार से बैंक आय एवं अग्रिमों से सम्बन्धित सभी

प्रकार के झगड़ो के फैसले के लिए एक अलग न्यायालय की स्थापना की जानी चाहिए । तथा सभी निलम्बित मामलों का फैसला अगले दो वर्षों में कर लेना चाहिए । इसी प्रकार से नरसिम्हम कमेटी ने भी अपनी संस्तुतियो में कहा कि ऋणों की शीघ्र वसूली के लिए एक विशेष प्राधिकरण बनाया जाना चाहिए । बैंको तथा वित्तीय संस्थानों के अशोध्य तथा संदिग्ध ऋणों के अधिग्रहण हेतु परिसम्पत्ति पुर्नगठन निधि बनायी जानी चाहिए ।

6.----- बैंकिंग नियमन अधिनियम में संशोधन किया जाय तथा यह प्राविधान बनाया जाए कि कृषि क्षेत्र को एवं सन्देहजनक ऋण पूरी जाँच एवं पूर्ण रूप से सुरक्षा आधार पर प्रदान किए जाने चाहिए । इस सन्दर्भ में नरसिम्हम कमेटी ने अपनी संस्तुतियों में कहा है कि वित्तीय संस्थाओं के स्वास्थ के लिए बैंकिंग परिसम्पत्तियों को चार भागों में बाँटा जाना चाहिए -----

(अ) स्तरीय परिसम्पत्तियाँ
(ब) उप-स्तरीय परिसम्पत्तियाँ
(स) सन्देहजनक परिसम्पत्तियाँ
(द) हानि देने वाली परिसम्पत्तियाँ

इस प्रकार के सन्देहजनक परिसम्पत्तियों को 100 प्रतिशत सुरक्षा आधार पर देना चाहिए ।

7- ----- भारतीय वाणिज्य बैंक की लाभप्रदता में सुधार के लिए सुझाव दिया जा

See- The Financial Express, New Delhi, April-5,1991 "Privatisation will not help" by R.C. Agrawal, Page-7.

सकता है कि बैंकिंग उद्योग को राष्ट्रीय स्तर पर पुर्नसंरचनों की जाए । पुर्नसंरचना की प्रक्रिया में बैंकिंग उद्योग को दो प्रकार के निगमों में विभाजित किया जाए -----

1- भारतीय वाणिज्य बैंकिंग निगम

2- भारतीय विकास बैंकिंग निगम

भारतीय वाणिज्य बैंकिंग निगम पूरे शहरी क्षेत्र तथा सभी अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की शाखाओं से सम्बन्धित होगा । यह निगम 5 विभागों में विभाजित किया जाए । इसमें से कुछ अन्तर्राष्ट्रीय बैंकिंग उद्योग को विशेषीकृत ढंग से संचालित करेंगे । उन्हें वाणिज्यिक स्तर पर कार्य करने की आज्ञा देनी चाहिए तथा इस पर किसी प्रकार का राजनैतिक या प्रशासनिक दबाव नहीं होना चाहिए । इन्हें,प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को ऋण देने की कोई आवश्यकता नहीं है। इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य बैंकिंग से प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार करना होगा ।

भारतीय विकास बैंकिंग निगम छोटे पैमाने के उद्योगों कृषि,विभिन्न सरकारी कार्यक्रम, आवास विकास इत्यादि क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त बैंक होगी । इसका कार्यक्रम ग्रामीण और अर्द्धशहरी क्षेत्रो तक सीमित होना चाहिए । इसे देश के समाजार्थिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र की विशेष मशीनरी के रूप में कार्य करना चाहिए और प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों को ध्यान में रखना चाहिए । इस निगम से सरकार को किसी विशेष आगम की सम्भावना नहीं है, अत: यह अत्यधिक घाटे के कारण समाप्त हो सकता है । सरकार को इन कार्यों के लिए आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था करनी चाहिए ।

इसी प्रकार से नरसिम्हम् कमेटी ने भी अपनी सिफारिशों में बैंकिंग प्रणाली के पुर्नगठन का सुझाव दिया । समिति ने चार स्तरीय बैंकिंग प्रणाली की सिफारिश की है ------

1- 3 या 4 बड़े बैंको को जिनमें स्टेट बैंक आफ इण्डिया शामिल हो, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर प्राप्त होना चाहिए ।

2- 8 से 10 राष्ट्रीय स्तर के बैंक हों जिनकी शाखाएं देश भर में स्थापित की जाये ।

3- स्थानीय स्तर के बैंक

4- ग्रामीण बैंक ग्रामीण क्षेत्रों के लिए ।

6 ---- कुछ अर्थशास्त्रियों का सुझाव है कि बैंकिंग उधोग को लाभदायक बनाने के लिए उसे निजी क्षेत्र को दे दिया जाना चाहिए क्योंकि निजी क्षेत्र के बैंक अधिक कुशलता पूर्वक कार्य कर रहे हैं । परन्तु हम बैंकों के पूर्णत: निजीकरण की सिफारिश नहीं कर सकते हैं, क्योंकि 1969 से पूर्व जिन कारणों से बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया, उन प्रवृत्तियों के दुबारा उभरने की सम्भावना है । अत: सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र के बैंकों में स्वस्थ प्रतियोगिता होनी चाहिए । निजी क्षेत्र के वाणिज्य बैंक द्वारा समाज को प्रदान की जाने वाली सुविधाओं के कारण एवं सरकार द्वारा मिलने वाले समर्थन के कारण जनता का इसमें विश्वास बढ़ा है । कुल बैंकिंग जमाओं का मात्र 5 प्रतिशत निजी क्षेत्र में होने से उनका प्रभाव नगण्य है । नि:सन्देह रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के कुछ बैंक लाभदायकता पूर्वक कार्य कर रहें है । सार्वजनिक क्षेत्र की कुछ बैंक

शाखाएं भी निजी क्षेत्र के बैंक की भाँति क्षेत्रीय स्तर पर कुशलता पूर्वक कार्य कर रहे हैं इस प्रकार हम यह सुझाव दे सकते हैं कि इन दोनों क्षेत्रों को कम या अधिक एक बराबर आकार का होना चाहिए, जिससे उनमें स्वस्थ प्रतियोगिता हो सके और दोनों ही कुशलता पूर्वक कार्य कर सके ।

9 ------- नरसिम्हम् कमेटी ने अपनी सिफारिशों में कहा कि कृषि तथा उद्योग को बराबर माना जाए तथा कृषि क्षेत्र से भी आधार ब्याज दर अदा करने की सिफारिश की गयी है । चूँकि कृषि से विशेषकर खाधान्नों से प्रतिफल काफी कम है, अत: यह क्षेत्र अधिक ब्याज देने में समर्थ नहीं है, यही वह विशिष्ट कारण है जिसकी वजह से बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया । यदि उधार देने की दर को बढ़ाया जाता है तो और कम ब्याज दर पर औपचारिक साख की पूर्ति को सीमित कर दिया गया तो मजदूरी वस्तुओं की सर्वाधिक महत्वपूर्ण मद कृषि कीमत बढ़ जाएगी, जो अन्तत: मुद्रा-स्फीति को बढ़ाएगी । अत: कृषि क्षेत्र को प्रदान किए जाने वाले रियायती ब्याज दर के ऋणों को जारी रखना चाहिए । कृषि एवं उद्योग में भेद की अपेक्षा कृषि में छोटे व बड़े किसान में भी भेद किया जाना चाहिए ।

0 ------ शाखा प्रसारण नीति और शाखाओं का पुर्नमूल्यांकन करके जिन स्थानों पर अधिक शाखाएं हो, उन्हें बन्द कर दिया जाना चाहिए और कमजोर शाखाओं का विलयन किया जाना चाहिए ।

11 ------ ऋण वितरण के कार्य को केवल ऋण वितरण तक सीमित न करके उसके पर्याप्त अनुवर्तन की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि ऋण उपभोग पर पर्याप्त नियन्त्रण रखा जा

सके ।

----- सबसे महत्वपूर्ण तथ्य बैंक के पूंजी परिसम्पत्ति अनुपात को मजबूत बनाना होगा । इसके लिए सार्वजनिक क्षेत्र को 1900 करोड़ रूपये की पूंजी की आवश्यकता है । इस समस्या का सबसे अच्छा हल होगा कि बैंक को निजी क्षेत्र के बड़े व्यवसायिक घरानों की शेयर पूंजी को आमंत्रित करना चाहिए । इन बड़े औद्योगिक घरानों को बैंक को पूंजी का 51 प्रतिशत शेयर प्राप्त करने को अनुमति प्रदान की जानी चाहिए नरसिम्हम् कमेटी ने भी अपनी संस्तुतियों में इन निजी क्षेत्र के व्यवसायिक घरानों व व्यक्तियों की पूंजी को आमंत्रित करने का सुझाव दिया है ।

---

1. Also See. " Financial Express" 20 May, 1992. Wed. page. 7 "Reneissance of Indian Banking" by H.Y. Kulkarni. Banking Economist.

BIBLIOGRAPHY

BOOKS

A.G. Sharma, " State in Relation to Commercial Banking in Developing Economy of India." Sterling Publishers (pvt) Ltd., Delhi-6, Ist Edition 1968.

A Panal of Experts in Banking," Banking Law and Practices" Oswal Printers and Publishers, Agra.

"Banking Institutions and Indian Economy, 1967" Four Economists Repo

Banking commission studies Group," Costly Borrowing Mar Banks Profit' Financial Express. Saturday. 5 January 1991, page-7 New Delhi.

Basu C.R.," Central Banking in a planned Economy." The Indian Experiment." New Delhi Tata Mc. Graw-Hill Publishing Company Ltd., 1978.

Bata K. Dey, " Performance appraisal management. The absent Minded Dimentions." in Joshi, M.G. and Kesary, Wheeler & Company Pvt. Ltd., 1980.

Benjamin Haggott Bechhart, " Banking system" the Times of India Press, Bombay 1938.

Birla Institute of Scientific research, " Banks since Nationalisatic Allied Publication Pvt. Ltd., 1981, New Delhi.

B.P. Sharma, " The Role of Commercial Banking in India's Developing Economy" published by S. Chandra & Co. New Delhi. 1974.

" Commercial Banking" Volume I, II, III, published by Vora & Co. publishers Pvt. Ltd., Indian Institute of Bankers (ed). 1980.

C.Rangrajan, " Banking and Profitability" Arthshastry April 1991. p. 22, New Delhi.

Desai Basant, " Indian Banking nature and Problems" Himalaya Publishing House, Bombay. 1979.

Devatia V.V. and Venkatachalam T.R., " Operational Efficiency and Profitability of public sector Banks," Reserve staff occasional paper June, 1978.

Devid Williams, " Commercial Banking in the far East," the Banker, Vol. C XIII No. 448, June, 1963, P. 419.

Edward W. Reed, " Commercial Bank Management" published by Harker and Raw publishers, New York. 1963.

Edward W. Reed, Rechard V. Cotter, Edward K. Gill, Richard K. Smith, " Commercial Banking" published by Prentice wall Inc Englewood Cliffs New Jersey, 1976.

Francois Craizet, " Capital Formation in Industrial Revolution". London. 1972.

Ghosh, D.N. " Banking in India", New Delhi Allied Publishers Pvt. Ltd. 1979.

Gupta, L.C.,"Banking and Working Capital Finance" Bombay MacMillan-1978

G. Crowther," An Outline of money" Universal Book stall Delhi, by special Arrangement with thomes Nelson and sons Ltd., 38 Park Street London WI- 1972.

G.A. Welsh, " Budgeting; Profit Planning and control" Published by Prentic Hall of India Pvt. Ltd. New Delhi-1981.

Harishchandra Sharma, "Money and Banking" published by Sahitya Bhawan Agra-1989.

H.R. Suneja, " Practice and Law of Banking" Himalaya publishing house first Edition-1990. Bombay.

H.Sharma, " Nationalisation of Banks in India: Restrospect and Prospect, " Published by Sahitya Bhawan, Agra-1970.

J.A Scheumpeter, " The Theory of Economic Development" Horward University press Crambridge.1949.

Kabra K N. and Suresh R.P. public sector Banking New Delhi, pople's publishing House 1970.

K.K. Ammanya, " Landing to priority sector Hurts Banks profit." Financial express, 8 Dec. 1990, Saturday page-4, New Delhi.

Kamal Nayan, " Commercial Banks in India," performance Evolution," published by deep & Deep publishing House, New Delhi 1985.

Kellogg Marions, " What to Do about performance evolution" published by Taraporewala publishing house Pvt. Ltd, Bombay-197

- Khan Gangadher, " Nationalised Banking and economic development" published by Vora & Co. Bombay. 1978.

- K.N. Kabra and R.R. Suresh, " Public sector Banking" published by people's publication House New Delhi-1970.

-Lingray Mahapatra, " Off Balance sheet Banking" financial Express, 3 Jul 1991, Wed. page.7 New Delhi.

- M.A. Zahir and Joshi M.G. Keshary V.D., " Transfer price mechanism for performance evolution with special reference to its application in commercial Banks" (ed) Readings in the Management (Allahabad A.H. wheeler and company Pvt. Ltd., 1980).

- Neil V. Sunderland ,"Bank Planning Models, some Quantitative Methods Applied to Bank plannings problems," Publication Verlong Paul Haupi Bern. Stuttgart. 1977.

- N.N. Mathur K.N. Badhana and R.L. Mehra, "International Banking" Sri Publication New Market, Ajmer 1980.

- Oliver G. Wood, " Commercial Banking" Jr. University of South Corolina D.Van Nartrand company. New York.1979.

- P.D. Hajela, " Problems of Monetory policy in Underdeveloped countries, 1969. page-134.

- Panandikar S. and Mithani D.M., " Banking in India" 12th Edition 1975. Orient Longman Ltd. Bombay.

- P. Sampat Singh, " Bank Lending" Edited by National Institute of Bank Management, Bombay. 1976.

- Rangrajan C. and Mampilly. Paul, " Economies of scale in Banking" in (ed)" Technical Studies prepared for the Banking Commission" Vol.I, Bombay. Reserve Bank Of India-1978.

- R.C. Agrawal, " Privatisation will not help" Financial Express 5 April, Friday, 1991, page 7 New Delhi.
- R.K. Talwar, " The purpose of Bank Nationalisation public Expectations and praspects" 26th Guru- Nasthra Ogalo Memorial Lecture 1971, Maharashtra Chamber of Commerce and Industries-1971.
- R.C. Bhatanagar, " Quality circles : Genesis and Relavance to Banking" Financial Express 6 August, Tuesday, 1991, New Delhi.
- R. Krishanan, " The Law Relating to Loans and Advances in Banks" 6th Edition-1986.
- R.M. Chidambaram and Mr. K. Amamalu, " Privatisation in Banking Industry' Financial Express, Wed. June, 26, page-7, 1991.
- R.M. Saxena, " Development Banking in India"(ed) Vora & Co. Bombay-1970.
- R.M. Srivastava, " Management of Banks" Publication, Pragati Prakashan Me Meerut 1979.
- R.S. Sayers, " Modern Banking" 7th Edition 1967, Printed in India by Rakesh Bajai at Rakesh Press, New Delhi-28.
- R. Singh and B. Kumar, " Financial Analysis for Business Decisions" published by Allied publishers Bombay. 1970
- Rando Concern (ed) " Banking and Economic Development, New York 1972.
- Rudra Datta & K.P.M. Sunderam, " Indian Economy" S.C. Chandra & Co. Pvt. Ltd. New Delhi. 1989.
- S.B. Gupta, " Commercial Banking" S. Chandra and Co, New Delhi.
- S.B. Gupta , " Monetary Economics, Institutions Theory and policy" publised by S. Chandra & Co. New Delhi.

S.C. Patnaik, " Supply and Demand for money, an Equilibrium analysis" 1984, Pragati Prakashan, Meerut.

- S.C. Shah, " Working and Profitability of Banks" published by Indian Banks Association-1977.

- S.D. Varade, S.M. Palav and M. Sita, " Branch Expansion planning of Banking Industry" published by National Institute of Bankers, Bombay-1975.

- S.G. Shah, " Bank Profitability, the real Issue" the journal of the Indiai Institute of Banker. So. 3 (July to Sept. 1979) p.131-13:

- S.K. Basu, " A review of Current Banking theory and practice" published by Mc. Millan & Co. Ltd. Bombay. 1971.

- S.L. Shetty, " Framework for the National credit plan" (ed) National Institute of Bank Management, Bombay. 1979.

- S.L.N. Sinha, " Reform of the Indian Banking system" Institute of financial Management & Research, Madras-1973.

- S. Singh, " performance Budgeting for commercial Banks in India" publish by Mc. Millan & Co. Delhi. 1972.

- "Technical Studies prepared for the Banking Commission" Volume I, II. Reserve Bank of India, Bombay. 1971.

- Tantry P.S. " Cash Management of Branches" in Varado S.D. (ed), " Management studies in Banks" National Institute of Bank Management Bombay. 1976.

- Van Horne, " Financial Management and Policy." published by Prentice Hall, New Delhi, India, 1978.

- V.K. Mutalik Desai, " Banking Development in India" Rawat publicatior 1978, Jaipur.

- William J. Frazer Jr. William P. Voke, " Introduction to the Analytic: and Institutions of money and Banking" (ed) Affiliated East West Press Private Ltd. New Delhi. 1971.

-=W.J. Goode and P.K. Hatt, " Methods in social Research" International student edition, Mc. Graw Hill Book company 24th printing 1985.

REPORTS & JOURNALS

- Customers service in Banks : Interim Report (New Delhi, Talwal Committee Government of India).

- Functioning of Public sector Banks: Report of the Committee (Bombay, Reserve Bank of India, 1978.).

- Report of Banking Commission (Delhi, Government of India-1972).

- Report of the All India Credit Review Committee (Bombay, R.B.I. 1969).

- Report on the Committee to Review the working of the Monetory system Chairman, Sukhomoy Chakravorti (Bombay R.B.I., 1985).

- Report of the Study group to frame guidelines for follow up of Bank credit, Chairman, Sri Prakash Tondon, R.B.I. Bombay,1975

-"Report of the working group to Review the system of cash credit" Chairman Sri K.B. Chore, Reserve Bank of India, 1979.

- "Report of the working group on the role of Banks in Implimentation of New 20 point Programme" Chairman Sri A. Ghose, R.B.I. Bombay. 1982.

- "Report of the Committee to Review the working of the credit Authorisat scheme" Chairman Sri S.S. Marathe R.B.I. 1983.

-"The Financial system" A Report by M. Marsimham, A Nabhi publication, New Delhi. 1992.

- "Report on Currency and Finance"(R.B.I. Bombay) various Issues.
- "Report of Trend and Progress of Banking in India" (R.B.I. Bombay) various issues.
- Reserve Bank of India Bulletin R.B.I. Bombay, Various issues.
- Statistical Tables Retaling to Banks in India. R.B.I. Bombay, Various Issues.
- The Journal of Indian Institute of Bankers. Various Issues.
- The Commerce. Various Issues.
- Finanical express, New Delhi, Various Issues.
- The Economic Times, New Delhi. Various Issues.
- Economic and Political Weekly. Various Issues.
- Economist. Various Issues.
- Fedral Reserve Bank Bulletin. Various Issues.
- Prajnan. Various Issues.